पीजीडीजीसी - 04

# वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

# निर्देशन एवं परामर्श : मनोवैज्ञानिक आधार

## पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

**अध्यक्ष**

**प्रो. विनय कुमार पाठक**

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

## संयोजक/ समन्वयक एवं सदस्य

**संयोजक**

**डॉ. रजनी रंजन सिंह**

**निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ**

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**समन्वयक**

**डॉ. कीर्ति सिंह**

सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**सदस्य**

**1. प्रो. जे. के. जोशी**
निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

**2. प्रो. दिव्य प्रभा नागर**
पूर्व कुलपति
ज.रा. नागर राजस्थान विद्यापीठ
विश्वविद्यालय, उदयपुर

**3. प्रो. (डॉ) एल.आर. गुर्जर**
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**4. प्रो. एच. बी. नंदवाना**
निदेशक, सतत शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**5. प्रो. दामिना चौधरी**
आचार्य,शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**6. डॉ. रजनी रंजन सिंह**
निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**7. डॉ. अनिल कुमार जैन**
सह आचार्य,शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**8. डॉ. कीर्ति सिंह**
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

9. **डॉ. पतंजलि मिश्र**
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

10. **डॉ. अखिलेश कुमार**
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

## संपादन एवं पाठ्यक्रम लेखन

**सम्पादक**

**डॉ. अनिल कुमार जैन**
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**पाठ्यक्रम लेखन**

1 **डॉ. सारिका मोहता (इकाई 9 एवं 16)**
सहायक आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
एम.आई.टी.एस., लक्ष्मणगढ़ (सीकर) राजस्थान

2 **डॉ. प्रीति सिंह (इकाई 1,8 एवं 15)**
वरिष्ठ व्याख्याता, एस.ओ.ई.,
जे.एन.यू., जयपुर

3 **श्रीमती अंजलि सक्सेना (इकाई -5)**
गैस्ट फैकैल्टी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

4 **डॉ. सुषमा सिंह (इकाई -3)**
रीडर, जे.एल.एन.टी.टी. कॉलेज
कोटा

5 **डॉ. मीनू सिंह(इकाई -11)**
व्याख्याता, एस.ओ.ई.,
जे.एन.यू., जयपुर

6 **डॉ. रजनी रंजन सिंह (इकाई -12)**
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

7 **डॉ. अंशु भाटिया(इकाई -7)**
व्याख्याता, एस.ओ.ई.,
जे.एन.यू., जयपुर

8 **डॉ. रेनू राय (इकाई -4)**
जी.जी.आई.सी.
बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश

9 **डॉ. पी.एस. पांडे (इकाई -14)**
निदेशक, ज्ञानदेव
इंस्टीटूयूट ऑफ मेनेजमेन्ट एंड साइंस
सागर, मध्य प्रदेश

10 **प्रो. शुभा व्यास(इकाई -10)**
एस.ओ.ई., जे.एन.यू.
जयपुर

11 **डॉ. कीर्ति सिंह(इकाई 2, 6 एवं 13)**
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था**

**प्रो. विनय कुमार पाठक**
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**प्रो. एल.आर. गुर्जर**
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**प्रो. करण सिंह**
निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन
एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**डॉ. अनिल कुमार जैन**
अतिरिक्त निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन
एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

**उत्पादन ISBN**

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि.वि., कोटा ,की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। व .म.खु.वि.वि., कोटा के लिए कुलसचिव, व.म.खु.वि.वि., कोटा (राजस्थान) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

# वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

## अनुक्रमणिका


| इकाई सं. | इकाई का नाम | पृ.सं. |
|---|---|---|
| इकाई 1 - | वृद्धि एवं विकास | 5 |
| इकाई -2 | व्यक्तित्व | 19 |
| इकाई -3 | अधिगम | 38 |
| इकाई -4 | अभियोग्यता | 53 |
| इकाई -5 | अभिप्रेरणा | 67 |
| इकाई -6 | समायोजन | 78 |
| इकाई -7 | तनाव प्रबंधन | 94 |
| इकाई -8 | विशिष्ट बालक | 108 |
| इकाई -9 | सृजनात्मकता | 121 |
| इकाई 10 | रूचि, आदत और व्यवहार | 141 |
| इकाई 11 | मानसिक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता | 155 |
| इकाई 12 | निर्देशन एवं परामर्श में सांख्यिकी | 172 |
| इकाई -१3 | वैयक्तिक भेद | 211 |
| इकाई 14 | मनोचिकित्सा और संशोधन व्यवहार | 224 |
| इकाई 15 | मनोवैज्ञानिक परीक्षण के विशेषतायें और प्रयोग | 236 |
| इकाई 16 | बुद्धि | 245 |

# इकाई - 1

# वृद्धि एवं विकास

**इकाई की रूपरेखा**


1.0 उद्देश्य
1.1 वृद्धि एवं विकास
1.2 वृद्धि और विकास की अवस्थायें
1.3 वृद्धि और विकास के विभिन्न आयाम
1.4 वृद्धि और विकास के सिद्धान्त
1.5 वृद्धि एवं विकास कार्य में निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता की भूमिका
1.6 बोध प्रश्न
1.7 संदर्भसूची


## 1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी -

- वृद्धि एवं विकास का अर्थ एवं सम्प्रत्य समझ सकेंगें।
- वृद्धि एवं विकास की अवस्थाओं को बता सकेंगे।
- वृद्धि एवं विकास के विभिन्न आयामों जैसे शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक एवं भाषा सम्बन्धी के विषय में विस्तारपूर्वक बता सकेगें।
- वृद्धि एवं विकास के सिद्धान्तों का विश्लेषण कर सकेगें।
- वृद्धि एवं विकास कार्य में निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता की भूमिका का निर्वहन कर सकेगे।

## 1.1 वृद्धि एवं विकास

### (वृद्धि)

1. वृद्धि विकास का एक आवश्यक तत्व है। बिना वृद्धि के विकास संभव नहीं है। इसलिये वृद्धि विकास के लिए परिस्थितियां उत्पन्न करने वाली एक आवश्यक तत्व भी कही जाती है।
2. वृद्धि व्यक्ति के शारीरिक विकास की द्योतक भी मानी जाती हैं। इसके द्वारा व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के गुणों का समावेश होता है। वृद्धि का होना व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।
3. इस प्रकार वृद्धि मनुष्य में हाने वाली उन्नति का एक पक्ष मात्र भी कही जा सकती है।
4. मनुष्य के अन्दर होने वाली वृद्धि के परिणामस्वरूप परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप से देखा भी जा सकता है।

5. वृद्धि एक प्रकार की ऐसी प्रक्रिया है जो संपूर्ण जीवन भर न चलकर एक विशेष काल अवधि में ही चलती है। अर्थात् यह मनुष्य के विकास एक अंश मात्र होती है। जो उसके विकास को प्रभावित करने वाला एक अंश मात्र होती है। जो उसके विकास को प्रभावित करने वाला एक आवश्यक तत्व भी मानी जाती है।

6. वृद्धि बहुत विस्तृत न होकर सीमित है। यह किसी भी व्यक्ति के विकास का वह काल माना जाता है। जिसमें व्यक्ति अपना सर्वांगीण विकास के लिए प्रयत्न करता है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति के द्वारा किए जाने वाले प्रयत्न उसकी वृद्धि कहलाते हैं।

**(विकास)**

1. व्यक्ति के व्यक्तित्व से पूर्ण रूप से संबंधरखने वली प्रक्रिया का संबंधविकास माना जाता है। व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते हैं, वह सभी परिवर्तन उसके जीवन को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले होते हैं। इन सभी के आधार पर मनुष्य अपना सर्वांगीण विकास करने में भी सक्षमता प्राप्त करता है।

2. विकास व्यक्ति के संयुक्त रूप से होने वाले परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप से दर्शाता है। विकास के आधार पर ही किसी व्यक्ति में किसी सीमा तक परिवर्तन हुआ है यह भी आंका जा सकता है। इस प्रकार विकास व्यक्ति कं संपूर्ण विकास के लिए एक आवश्यक तत्व माना जाता है।

3. किसी व्यक्ति में किस प्रकार से तथा कितना विकास हुआ है यह उसके व्यक्तित्व पर बहुत प्रभावित करता है। जैसा व्यक्ति का व्यक्तित्व होता है वैसा ही वह व्यवहार करता है। व्यक्ति के व्यवहार का उसके जीवन के प्रत्येक पहलु पर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

4. वृद्धि को विकास का ही एक अंग कहा जाता है। वृद्धि विकास का एक आवश्यक अंग है जो व्यक्ति विशेष के लिए उसके जीवन की उपयुक्त स्थितियों को दर्शाती है। विकास एक विस्तृत शब्द माना जाता है। विकास व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का लेखा-जोखा माना जाता है। व्यक्ति के द्वारा जो भी कार्य अपने संपूर्ण जीवन में किया जाता है, विकास उसका फल माना जाता है।

## 1.2 वृद्धि और विकास की अवस्थायें

बच्चे की जीवन यात्रा और वृद्धि एवं विकास की कहानी मां के गर्भ में आने के साथ-साथ ही शुरू हो जाती है। वह भी मां के गर्भ में पौधे की तरह छोटे से अंकुर के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ करता है तथा धीरे-धीरे वृद्धि और विकास को प्राप्त होता रहता है। इस वृद्धि और विकास की मंजिल में जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती है उसमें विभिन्न सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक और नैतिक परिवर्तन आते रहते हैं। इन सब के आधार पर उसे क्रमशः शिशु, बालक, किशोर, प्रौढ़ तथा वृद्धि आदि कह कर पुकारा जाता रहा है। ये सभी नाम बच्चों की वृद्धि और विकास की उन सभी अवस्थाओं के द्योतक हैं जिनमें से होकर उन्हें अपनी जीवन यात्रा पूरी करनी होती है।

व्यक्तिगत भेदों (Individual Differences) की कोई सीमा नहीं है। कौन बालक किस आयु में वृद्धि और विकास के किस स्तर को स्पर्श करेगा, इसके लिए कोई सार्वभौमिक (Universal) नियम नहीं है।

अत: वृद्धि और विकास की कोई विशेष अवस्था कितनी आयु और अवधि में मानी जाये इस संदर्भ में काफी कुछ मतभेद देखने को मिल सकते है।

प्रश्न - 1 वृद्धि एवं विकास का अर्थ एवं सम्प्रत्य बताइये ?

प्रश्न - 2 वृद्धि एवं विकास की विभिन्न अवस्थाओं का विस्तारपूर्वक विश्लेषण कीजिये ?

## 1.3 वृद्धि और विकास के विभिन्न आयाम

(a) शारीरिक विकास (Physical Development) - व्यक्ति के शारीरिक विकास में उसके शरीर के बाह्य एवं आंतरिक अवयवों का विकास शामिल होता है।

(b) बौद्धिक या मानसिक विकास (Intellectual or Mental Development) - इसमें सभी प्रकार की मानसिक शक्तियों जैसे सोचने-विचारने की शक्ति, कल्पना शक्ति, निरीक्षण शक्ति, स्मरण शक्ति तथा एकाग्रता (Concentration), सृजनात्मकता (Creativity), संवेदना (Sensation), प्रत्यक्षीकरण (Perception) और सामान्यीकरण (Generalization) आदि से सम्बन्धित शक्तियों का विकास सम्मिलित होता है।

(c) संवेगात्मक विकास (Emotional Development) - इसमें विभिन्न संवेगों (Emotions) की उत्पत्ति, उनका विकास तथा इन संवेगों के आधार पर संवेगात्मक व्यवहार का विकास सम्मिलित होता है।

(d) नैतिक अथवा चारित्रिक विकास (Moral or Character Development) - इसके अन्तर्गत नैतिक भावनाओं, मूल्यों तथा चरित्र सम्बन्धी विशेषताओं का विकास सम्मिलित होता है।

(e) सामाजिक विकास (Social Development) - बच्चा प्रारम्भ में एक असामाजिक प्राणी होता है। उसमें उचित सामाजिक गुणों का विकास कर समाज के मूल्यों एवं मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करना सिखाना सामाजिक विकास के अन्तर्गत आता है।

(f) भाषात्मक विकास (Language Development) - भाषात्मक विकास में बालक के अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिये भाषा का जानना और उसके प्रयोग से सम्बन्धित योग्यताओं का विकास शामिल होता है।

## 1.4 वृद्धि और विकास के सिद्धान्त

व्यक्ति विशेष में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन कुछ विशेष सिद्धान्तों पर ढले हुए प्रतीत होते हैं। इन सिद्धान्तों को वृद्धि एवं विकास के सिद्धान्त कहा जाता है।

1. **निरन्तरता का सिद्धान्त** (Principle of Continuity) - यह सिद्धान्त बताता है कि विकास एक न रुकने वाली प्रक्रिया है। मां के गर्भ से ही यह प्रारम्भ हो जाती है तथा मृत्यु पर्यन्त निरन्तर चलती है। एक छोटे से नगण्य आकार से अपना जीवन प्रारम्भ करके हम सबके व्यक्तित्व के सभी पक्षों - शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि का संपूर्ण विकास इसी निरन्तरता के गुण के कारण भली-भांति सम्पन्न होता रहता है।

2. **वृद्धि और विकास की गति की दर एक सी नहीं रहती** (Rate of growth and development is not uniform) - यद्यपि विकास बराबर होता रहता है, परन्तु इसकी गति सब अवस्थाओं में एक जैसी नहीं रहती। शैशवावस्था के शुरू के वर्षों में यह गति कुछ तीव्र होती है, परन्तु बाद के वर्षों में यह मन्द पड़ जाती है। पुन: किशोरावस्था के प्रारम्भ में इस गति में तेजी से वृद्धि होती है परन्तु यह अधिक समय तक नहीं बनी रहती। इस प्रकार वृद्धि और विकास की गति में उतार-चढ़ाव आते ही रहते हैं। किसी भी अवस्था में यह एक जैसी नहीं रह पाती।
3. **वैयक्तिक विभिन्नता का सिद्धान्त -** इस सिद्धान्त के अनुसार बालकों का विकास और वृद्धि उनकी अपनी वैयक्तिकता (individuality) के अनुरूप होती है। वे अपनी स्वाभाविक गति से ही वृद्धि और विकास के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ते रहते हैं और इसी कारण उनमें पर्याप्त विभिन्नताएं देखने को मिलती हैं। कोई भी एक बालक वृद्धि और विकास की दृष्टि से किसी अन्य बालक के समरूप नहीं होता।
4. **विकास क्रम की एकरूपता** (Uniformity of pattern) - विकास की गति एक जैसी न होने तथा पर्याप्त वैयक्तिक अन्तर पाए जाने पर भी विकास क्रम में कुछ एकरूपता के दर्शन होते हैं। इस क्रम में एक ही जाति विशेष के सभी सदस्यों में कुछ एक जैसी विशेषताएं देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए मनुष्य जाति के सभी बालकों की वृद्धि सिर की ओर से प्रारम्भ होती है। इसी तरह बालकों के गत्यात्मक और भाषा विकास में भी एक निश्चित प्रतिमान (pattern) और क्रम के दर्शन किए जा सकते हैं।
5. **विकास सामान्य से विशेष की ओर चलता है** (Development proceeds from general to specific responses) - विकास और वृद्धि की सभी दिशाओं में विशिष्ट क्रियाओं से पहले उनके सामान्य रूप के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए अपने हाथों से कुछ चीज़ पकड़ने से पहले बालक इधर उधर यूं ही हाथ मारने या फैलाने की चेष्टा करता है। इसी तरह शुरू में एक नवजात शिशु के रोने और चिल्लाने में उसके सभी अंग प्रत्यंग भाग लेते हैं परन्तु बाद में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप यह क्रियाएं उसके आंखों और वाक तन्त्र तक सीमित हो जाती हैं। भाषा विकास में भी बालक विशेष शब्दों से पहले सामान्य शब्द ही सीखता है। पहले वह सभी व्यक्तियों को 'पापा' कह कर ही सम्बोधित करता है, इसके पश्चात् ही वह केवल अपने पिता को 'पापा' कह कर सम्बोधित करना सीखता है।
6. **एकीकरण का सिद्धान्त** (Principle of Integration) - विकास की प्रक्रिया एकीकरण के सिद्धान्त का पालन करती है। इसके अनुसार बालक पहले संपूर्ण अंग को और अंग के भागों को चलाना सीखता है। इसके बाद वह उन भागों में एकीकरण करना सीखता है। सामान्य से विशेष की ओर बदलते हुए प्रतिक्रियाओं तथा चेष्टाओं को इकट्ठे रूप में प्रयोग में लाना सीखता है। उदाहरण के लिए एक बालक पहले पूरे हाथ को, फिर उंगलियों को और फिर हाथ एवं उंगलियों को एक साथ चलाना सीखता है।

7. **परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त** (Principle of Inter-relation) - विकास की सभी दिशाएं- शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि - एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं। इनमें से किसी भी एक दिशा में होने वाला विकास अन्य सभी दिशाओं में होने वाले विकास को पूरी तरह प्रभावित करने की क्षमता रखता है। उदाहरण के लिए जिन बच्चों में औसत से अधिक बुद्धि होती है, वे शारीरिक और सामाजिक विकास की दृष्टि से भी काफी आगे बढ़े हुए पाए जाते हैं। दूसरी ओर एक क्षेत्र में पाई जाने वाली न्यूनता दूसरे क्षेत्र में हो रही प्रगति में बाधक सिद्ध होती है। यही कारण है कि शारीरिक विकास की दृष्टि से पिछड़े बालक संवेगात्मक, सामाजिक और बौद्धिक विकास में भी उतने ही पीछे रह जाते हैं।

8. **विकास की भविष्यवाणी की जा सकती है** (Development is Predictable) - एक बालक की अपनी वृद्धि और विकास की गति को ध्यान मे ंरखकर उसके आगे बढ़ने की दिशा और स्वरूप के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है। उदाहरण के लिए एक बालक की कलाई की हड्डियों का एक्स किरणों (X-ray) से लिया जाने वाला चित्र यह बता सकता है कि उसका आकार प्रकार आगे जाकर किस प्रकार का होगा। इसी बालक की इस समय की मानसिक योग्यताओं के ज्ञान के सहारे उसके आगे के मानसिक विकास के बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

9. **विकास की दशा का सिद्धान्त** (Principle of Developmental Direction) - इस सिद्धान्त के अनुसार विकास की प्रक्रिया पूर्व निश्चित दिशा में आगे बढ़ती है। कुप्पूस्वामी ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि विकास Cephalo-caudal और Proximo-distal क्रम में होता है।

   Cephalo-caudal क्रम का विकास लम्बवत रूप में (longitudinal direction) सिर से पैर की ओर होता है। सबसे पहले बालक अपने सिर और भुजाओं की गति पर नियन्त्रण करना सीखता है और उसके बाद फिर टांगोंको। इसके बाद ही वह अच्छी तरह बिना सहारे खड़ा होना और चलना सीखता है।

   Proximo-distal क्रम के अनुसार विकास का क्रम केन्द्र से प्रारम्भ होता है, फिर बाहरी विकास होता है और इसके बाद संपूर्ण विकास। उदाहरण के लिए, पहले रीढ़ की हड्डी का विकास होता है और उसके बाद भुजाओं, हाथ तथा हाथ की उंगलियों का तथा तत्पश्चात् इन सबका पूर्ण रूप से संयुक्त विकास होता है।

10. विकास लम्बवत् सीधा न होकर वर्तुलाकार होता है (Development is spiral and not linear) - बालक का विकास लम्बवत् सीधा (Linear) न होकर वर्तुलाकार (Spiral) होता है। वह एक सी गति से सीधा चलकर विकास को प्राप्त नहीं होता, बल्कि बढ़ते हुए पीछे हटकर अपने विकास को परिपक्व और स्थयी बनाते हुए (वर्तुलाकार आकृति की तरह) आगे बढ़ता है। किसी एक अवस्था में वह तेजी से आगे बढ़ते हुए उसी गति से आगे नहीं जाता, बल्कि अपनी विकास की गति को धीमा करते हुए आगे के वर्षों में विश्राम लेता हुआ प्रतीत होता है ताकि

प्राप्त वृद्धि और विकास को स्थायी रूप दिया जा सके। यह सब करने के पश्चात् ही वह आगामी वर्षों में फिर कुछ आगे बढ़ने की चेष्टा करता है।

**11 वृद्धि और विकास की क्रिया वंशानुक्रम और वातावरण का संयुक्त परिणाम है** (Growth and development is a joint product of both heredity and environment) - बालक की वृद्धि और विकास को किसी स्तर पर वंशानुक्रम और वातावरण की संयुक्त देन माना जाता है। दूसरे शब्दों में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया में वंशानुक्रम जहां बुनियाद का कार्य करता है वहां वातावरण इस बुनियाद पर बनाए जाने वाले व्यक्तित्व सम्बन्धी भवन के लिए आवश्यक सामग्री एवं वातावरण जुटाने में सहयोग देता है। अत: वृद्धि और विकास की प्रक्रियाओं में इन दोनों को समान महत्त्व दिया जाना आवश्यक हो जाता है।

प्रश्न – 1 वृद्धि एवं विकास के विभिन्न आयामों जैसे शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक एवं भाषा सम्बन्धी के विषय में अपने विचार प्रकट कीजिये ?

प्रश्न - 2 वृद्धि एवं विकास के सिद्धान्तों की जानकारी एक अध्यापक, निर्देशनकर्ता एवं परामर्शदाता के लिये क्यों आवश्यक है ?

## 1.5 वृद्धि एवं विकास कार्य में निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता की भूमिका

हमारा उद्देश्य बालकों में व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना होता है। इस दृष्टि से उसके वृद्धि और विकास के सभी पक्षों और आयामों शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक या चारित्रिक में संतुलित विकास करने की आवश्यकता होती है। यह बात भी सही है कि वह बालक ही है जिसमें व्यक्तित्व के सभी आयामों में संतुलित विकास करने की आवश्यकता होती है और यह तभी हो सकता है जब बालक पूरे दिल और मन से ऐसा करने के लिए तैयार रहे तथा इस कार्य हेतु आगे कदम बढ़ाये। बालक के विकास कार्य में इस तरह एक निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता की भूमि एक अच्छे पथ प्रदर्शक तथा ऐसे सहायक और शुभचिन्तक की होती है जो बालक के विकास के लिये आवश्यक सभी प्रकार के संसाधनों तथा उपयुक्त परिस्थितियों में आयोजन में पूरी तरह सहायता करता है। प्रश्न उठता है कि व्यक्तित्व के सभी पक्षों और आयामों में अपने विद्यार्थियों का वांछित विकास करने हेतु आवश्यक विकास कार्यों में निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता द्वारा उपयुक्त सहायता किस प्रकार प्रदान की जाए।

1. **योग्यता और क्षमताओं का निदान** (Diagnosis of The Potentialities) - निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को अपने विद्यार्थियों की योग्यताओं और क्षमताओं के बारे में उपयुक्त जानकारी लेने की कोशिश करनी चाहिए ताकि उसके द्वारा यह निर्णय लिया जा सके कि विद्यार्थियों के विकास में उसके द्वारा किस प्रकार का मार्ग दर्शन और आवश्यक सहायता प्रदान की जा सकती है।
2. **उचित उद्देश्यों के निर्माण में सहायता प्रदान करना** (Helping in the setting of proper goals) - विद्यार्थियों की योग्यताओं, क्षमताओं तथा उपलब्धि अभिप्रेरणा स्तर आदि के संदर्भ में निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को अपने विद्यार्थियों को उनके विकास से सम्बन्धित समुचित

लक्ष्य स्थापित करने में मदद करनी चाहिए। विकास के लक्ष्य और उपलब्धि प्रेरणा का स्तर न तो अधिक ऊंचे होने चाहिए और न बहुत कम। उनकी योग्यता और क्षमताओं के संदर्भ में ये जितने वास्तविक हों उतने ही अच्छे रहते हैं क्योंकि ऐसा करने से उन्हें व्यर्थ की असफलताओं और निराशाओं से उत्पन्न कुंठाओं से बचाया जा सकता है।

3. **उपयुक्त विकास हेतु आवश्यक साधन उपलब्ध कराना** (Arranging needed facilities for their adequate development) - व्यक्तित्व के सभी आयामों में अपने निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता के संतुलित विकास हेतु जिस प्रकार के मानव एवं भौतिक संसाधनों की आवश्यकता हो उन सभी की उचित रूप से उपलब्धि के लिए निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता द्वारा अधिक से अधिक प्रयत्न किए जाने चाहिए। इस तरह से भौतिक, शैक्षणिक, पाठ्य एवं सहपाठ्य क्रियाओं, औपचारिक तथा अनौपचारिक, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अनुभवों आदि विभिन्न रूपों में जिस प्रकार की क्रियाओं और अनुभवों की विद्यार्थियों के उचित विकास के लिए आवश्यक हो उस सभी को जुटाने का प्रयत्न निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता द्वारा अवश्य किए जाने चाहिए।

4. विद्यार्थियों के उचित विकास हेतु स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करना (Providing his own example for their proper development) - 'प्रवचनों से उदाहरण सदैव ही अधिक प्रभावशाली होते है। यह उक्ति बालकों के विकास कार्य में सहायता पहुँचाने से पूरी तरह खरी उतरती है। अपने बालकों में जिस प्रकार के विकास को निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता देखना चाहता है उसे उनके इस विकास प्रयत्नों में सहायता पहुंचाने हेतु एक अच्छे उदाहरण के रूप में उसे आपने आपको प्रस्तुत करना चाहिए। वह इस कार्य में ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक महापुरुषों या दूसरे शब्दों में जिस प्रकार के विकास का ध्येय बालकों के सामने है, उससे सम्बन्धित ऐतिहासिक या जीवन व्यक्तियों को अनुकरणीय उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु जितना प्रभाव विद्यार्थियों के ऊपर उसके अपने व्यक्तित्व, व्यवहार और कार्यशैली का पड़ता है उतना किसी अन्य अनुकरणीय मॉडल का नहीं इसलिए निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को अपने व्यवहार एवं कार्यों द्वारा अपने विद्यार्थियों के समुचित विकास हेतु अपने आपको ही एक अच्छा अनुकरणीय मॉडल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

5. उचित प्रोत्साहन एवं पुनर्बलन प्रदान करना (Providing due encouragement and reenforcement) - निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को अपने विद्यार्थियों को उनकी सभी अच्छाई बुराईयों तथा क्षमता-अक्षमताओं के रूप में स्वीकार करने की चेष्टा करनी चाहिये। जब भी विद्यार्थियों के किसी भी व्यक्तित्व आयाम में विकास का प्रश्न उठे तो उसे उन्हें उनके द्वारा किये जाने वाले प्रयत्नों का उचित निरीक्षण और लेखा-जोखा रखने का प्रयत्न करना चाहिये तथा उनके प्रत्येक वांछित कदम को उचित प्रोत्साहन तथा पुनर्बलन प्रदान करने का प्रयत्न करना चाहिये। उनकी कमियों तथा गलतियों के लिये उन्हें भूल से भी डांट फटकार पिलाने, उनकी हँसी उड़ाने तथा छींटाकशी करने के प्रयत्न नहीं किये जाने चाहिये। हाँ जब भी जरूरत हो

उनकी भूल सुधारने तथा उपचारात्मक शिक्षण के लिए उचित कदम उठाने के प्रयत्न करने चाहियें। इस प्रकार के प्रोत्साहन तथा पुनर्बलन प्रयत्नों के माध्यम से ही बालकों को उनके विकास कार्य में उपयुक्त सहायता प्रदान की जा सकती है।

6. निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को विकासात्मक मनोविज्ञान का पूरा ज्ञान होना (Teacher must has a proper knowledge of development psychology) - एक निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को विकासात्मक कार्यों में अपने विद्यार्थियों की उचित सहायता करने के उद्देश्य से उनके विकास सम्बन्धी मनोविज्ञान की पूरी जानकारी लेने के प्रयत्न करने चाहिए। उसे यह पता होना चाहिए कि किस विशेष आयु तथा अवस्था में बालकों के व्यक्तित्व आयामों में सामान्य रूप से किस प्रकार की वृद्धि तथा विकास होना चाहिए। विकास की इन विभिन्न अवस्थाओं में किस प्रकार के विकासात्मक कार्यों की बालकों से अपेक्षा की जाती है तथा किस प्रकार की समस्याओं का इन कार्यों के संपादन में उन्हें सामना करना पड़ता है इन बातों की अच्छी जानकारी निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को अवश्य होनी चाहिये। इन सब बातों के संदर्भ में निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता द्वारा विद्यार्थियों के मार्गदर्शन और उपयुक्त सहायता प्रदान करने में क्या कुछ दिया जाना ठीक रहेगा। इसी बात की उपयुक्त जानकारी बाल विकास मनोविज्ञान के द्वारा प्राप्त करने की उसे चेष्टा करनी चाहिए तथा फिर उसी के अनुरूप विद्यार्थियों को मार्गदर्शन तथा सहायता उसके द्वारा प्रदान की जानी चाहिए।

इस प्रकार से एक समझदार निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को उपलब्ध संसाधनों, अपने ज्ञान और प्रशिक्षण तथा व्यक्तित्व गुणों एवं व्यवहार को इस तरह छात्र-अनुकूल बनाने के प्रयत्न करने चाहिये जिससे उन्हें उनके सर्वांगीण विकास कार्यों में यथोचित सहायता उपलब्ध होती रहे।

वृद्धि एवं विकास में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका को मुख्यत: चार भागों में विभाजित किया जा सकता है -

### (I) बच्चे के शारीरिक विकास में परामर्शदाता की भूमिका

इस प्रकार से शारीरिक विकास व्यक्तित्व के सभी पक्षों के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अत: इस पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाना आवश्यक है। बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। बच्चों की शारीरिक वृद्धि और विकास निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को इस उद्देश्य की पूर्ति में पूरा सहयोग दे सकते हैं। इसलिये निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को शारीरिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया से अपने आपको परिचित करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। विशेष तौर पर इस प्रकार का ज्ञान उसे निम्न रूप में सहायक सिद्ध हो सकता है -

(i) शारीरिक रूप से असामान्य बच्चों से वह परिचित हो सकता है। उनके मनोविज्ञान और समायोजन सम्बन्धी समस्याओं से भी वह अवगत हो सकता है। इस प्रकार के ज्ञान द्वारा वह ऐसे बच्चों को उचित सामाजिक एवं संवेगात्मक समायोजन तथा शिक्षा ग्रहण करने में सहायता कर सकता है।

(ii) बालकों के समुचित विकास के लिए उनके शारीरिक स्वास्थ्य और विकास का ध्यान रखना भी निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता का परम कर्त्तव्य होता है। शारीरिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया से परिचित होने से उसे इस कार्य में सहायता मिल सकती है।

(iii) बच्चों की रुचियां, आवश्यकताएं, इच्छायें, दृष्टिकोण और एक तरह से उसका सम्पूर्ण व्यवहार शारीरिक वृद्धि और विकास पर निर्भर करता है। इस दृष्टिकोण से एक बच्चा वृद्धि और विकास की विभिन्न अवस्थाओं के किसी भी वर्ग विशेष में किस प्रकार का व्यवहार करेगा, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए बाल्यावस्था में होने वाले शारीरिक विकास से परिचित हो जाने के बाद उनकी शारीरिक, संवेगात्मक और सामाजिक आवश्यकताओं को समझने में बहुत सहायता मिलती है। इस प्रकार के ज्ञान द्वारा निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता के लिए बालकों को उनके भली-भाँति समायोजित होने, उनकी समस्याओं को सुलझाने और आवश्यकताओं को पूरा करने में आसानी हो सकती है।

(iv) बच्चों की शारीरिक वृद्धि और विकास के सामान्य ढांचे से परिचित होकर निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता यह जान सकता है कि एक विशेष आयु स्तर पर बच्चों से क्या आशा की जा सकती है ? इस प्रकार के ज्ञान द्वारा निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को विद्यालय की पाठान्तर क्रियाओं, समय विभाग चक्र, पढ़ाने की विधियों, पाठ्य पुस्तक, सहायक सामग्री और पढ़ने के लिए उपयुक्त स्थान, फर्नीचर और वातावरण आदि का चुनाव करने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

इस प्रकार से शारीरिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया का ज्ञान निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को अपने उद्देश्यों की पूर्ति में बहुत अधिक सहयोग दे सकता है। इस ज्ञान द्वारा न केवल वह अपने कार्य को विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुसार ढाल सकता है बल्कि वह उन्हें अपने स्वास्थ्य को बनाए रखने और शारीरिक योग्यताओं और क्षमताओं को पर्याप्त विकसित करने में भी भरपूर सहयोग दे सकता है।

### (II) मानसिक विकास

वास्तव में संवेदना (Sensation), प्रत्यक्षीकरण (Perception), कल्पना (Imagination), स्मरण शक्ति, तर्क शक्ति, विचारशक्ति, निरीक्षण, परीक्षण और सामान्यीकरण शक्ति, बुद्धि और भाषा सम्बन्धी योग्यता, समस्या समाधान योग्यता (Problem Solving Ability) और निर्णय लेने की क्षमता आदि सभी प्रकार की मानसिक और बौद्धिक शक्तियां, योग्यतायें और क्षमतायें हमारी मानसिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया द्वारा ही नियन्त्रित होती है। ये सभी मानसिक शक्तियां अथवा योग्यताएं एक दूसरे से बहुत सम्बन्धित हैं। इनमें से किसी का भी अपने आप में अकेले होना किसी दूसरे को प्रभावित किए हुए विकसित होना संभव नहीं है। इसलिये, जब भी किसी स्तर पर किसी बालक के मानसिक विकास की बात करते हैं तो उस समय हमारा तात्पर्य इन सभी योग्यताओं, क्षमताओं और शक्तियों के समन्वित विकास से ही होता है।

विभिन्न अवस्थाओं में मानसिक वृद्धि और विकास के स्वरूप का लाभ और मानसिक योग्यताओं को क्षमताओं में आयु के साथ-साथ होने वाले परिवर्तनों की अमूल्य जानकारी निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

(i) विभिन्न आयु स्तरों पर पाठ्यक्रम सम्बन्धी और सहगामी क्रियाओं तथा अनुभवों के चयन और नियोजन में इससे सहायता मिल सकती है।

(ii) किस विधि और तरीके से पढ़ाया जाये, सहायक सामग्री तथा शिक्षण साधन किस प्रकार प्रयोग में लाए जाएं, शैक्षणिक वातावरण किस प्रकार का हो, यह सब निश्चित करने में भी निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को इससे सहायता मिलती है।

(iii) विभिन्न अवस्थाओं और आयु-स्तर पर बच्चों की मानसिक वृद्धि और विकास को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें तैयार करने में भी इससे सहायता मिल सकती है।

(iv) इसकी सहायता से निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को यह ज्ञात हो जाता है कि एक विशेष प्रकार की पढ़ाई और कार्य जिन्हें करने के लिए कुछ विशेष विकसित मानसिक शक्तियों की आवश्यकता होती है, उपयुक्त समय पर उन शक्तियों के विकसित होने पर ही प्रारम्भ कराने चाहिए। अनावश्यक शीघ्रता और देरी, दोनों ही इस अवस्था में हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं।

(v) इस प्रकार के ज्ञान द्वारा निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता अपने शिष्यों की मानसिक शक्तियों और क्षमताओं के पूर्ण विकास में पूर्ण सहयोग प्रदान कर सकता है। वह उन्हें समाधान और सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण दे सकता है। बिना सोचे समझे तोते की तरह रटने और अन्धों की तरह इधर-उधर हाथ मारकर कार्य में सफल होने के लिए प्रयास करने की अपेक्षा तर्क शक्तियों तथा सूझ-बूझ के आधार पर याद रखने और अन्य कार्य सम्पन्न करने में भी वह उनकी सहायता कर सकता है। उनके निरीक्षण, प्रत्यक्षीकरण, सामान्यीकरण सम्बन्धी योग्यता को विकसित करने में भी उनकी मानसिक शक्तियों की वृद्धि और विकास के स्तर को ध्यान में रखते हुए वह उनकी पूरी मदद कर सकता है। इस तरह से एक अध्यापक मानसिक वृद्धि और विकास के सभी पहलुओं और उनके विभिन्न स्तरों पर होने वाले सामान्य और विशिष्ट परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए अपने शिष्यों को मानसिक वृद्धि और विकास के पथ पर अच्छी तरह से अग्रसर कर सकता है। वह न केवल उनकी मानसिक शक्तियों और योग्यताओं का उसके स्वयं और समाज के लाभ को ध्यान में रखते हए विवेक और बुद्धिमतापूर्ण उपयोग करने में भी समर्थ बना सकता है।

## (III) बच्चों के संवेगात्मक विकास में परामर्शदाता की भूमिका

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले व्यक्तिगत और सामाजिक - दोनों प्रकार के कारकों की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। अगर इन कारकों का भली-भांति ध्यान रखा जाए तो अध्यापक वर्ग बालकों के संतुलित संवेगात्मक विकास में अपनी भूमिका अच्छी तरह निभा सकता है।

(i) संवेगात्मक विकास के लिए जैसा कि पहले कहा जा चुका है, स्वास्थ्य और शारीरिक विकास का पूरा-पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है। स्वस्थ और नीरोग कैसे रहा जाए, इस बात का

बच्चों को भली-भांति ज्ञान कराया जाना चाहिए। माता-पिता और राज्याधिकारियों के सहयोग से बच्चों के संतुलित आहार और खान-पान की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को अभिभावकों के साथ संपर्क स्थापित कर उन्हें उनके बच्चों की शारीरिक कमजोरियों, न्यूनताओं, बीमारियों आदि से अवगत कराना चाहिए तथा उनके निराकरण के लिए घर, विद्यालय और चिकित्सालयों द्वारा उचित प्रबन्ध की व्यवस्था होनी चाहिये।

(ii) बच्चों के संवेगात्मक विकास पर पारिवारिक वातावरण भी बहुत प्रभाव डालता है। अत: निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को उन्हों अनुकूल पारिवारिक वातावरण प्रदान कराने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिये। बच्चों के अधिक निकट आकर निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को उनके संवेगात्मक व्यवहार को उनके पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में समझने का प्रयत्न करना चाहिए तथा इसी को ध्यान में रखते हुए उनके माता-पिता तथा अभिभावक वर्ग को उनके बच्चों के कल्याण के लिए उचित परामर्श देने का प्रयत्न करना चाहिए तथा अपने स्वयं के व्यवहार के द्वारा भी उन्हें संवेगात्मक संतुलन बनाने की पूरी सहायता देनी चाहिए।

(iii) विद्यालय के परिवेश और क्रिया कलापों को उचित प्रकार से संगठित कर निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता बच्चों के संवेगात्मक विकास में भरपूर योगदान दे सकते हैं। इसके लिए उसे निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए -

(a) बच्चों की संवेगात्मक शक्तियों के उचित प्रकाशन और अभिव्यक्ति के लिए उन्हें पाठान्तर क्रियाओं तथा रोचक क्रियाओं (Hobbies) के माध्यम से उचित अवसर प्रदान किये जाने चाहिए।

(b) पाठ्यक्रम और अध्यापन विधियां यथेष्ट रूप में परिवर्तनशील, प्रगतिशील और बाल केन्द्रित होनी चाहिए।

(c) बालकों को अपने निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता से पर्याप्त स्नेह और सहयोग मिलना चाहिए। प्रत्येक अवस्था में बालकों के स्वाभिमान का ध्यान रखा जाना चाहिए तथा भूलकर भी उनका अपमान एवं अवज्ञा नहीं की जानी चाहिए। जहां तक हो सके निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को बच्चे की सभी प्रकार की संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

(d) बालकों के संवेगों को संयमित एवं प्रशिक्षित करने के लिए निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता द्वारा उपयुक्त विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। जैसे भी हो बच्चे के संवेगात्मक तनाव को समाप्त करने की चेष्टा की जानी चाहिए तथा उसके अन्दर किसी भी प्रकार की अनावश्यक मानसिक ग्रन्थियों और विकारों को पनपने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए।

(e) धार्मिक और नैतिक शिक्षा को विद्यालय कार्यक्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। जहां तक हो सके 'सादा जीवन और उच्च विचार' को बच्चों के जीवन का एक मूल-मंत्र बनाया जाना चाहिए।

(f) निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता बच्चों के लिए आदर्श होते हैं। वे उनके हर आचरण का अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं। अत: निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को स्वयं अपना उदाहरण प्रस्तुत कर बालकों को संवेगात्मक रूप से अधिक संतुलित और संयमित बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(g) बच्चों के संतुलित सामाजिक विकास की ओर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्हें अपनी मित्र-मण्डली, वय-समूह तथा सामाजिक परिवेश में उचित स्थान मिलना चाहिए।

(h) निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता द्वारा बालकों का संवेगात्मक व्यवहार सामान्य है या असामान्य है, इस बात का अच्छी तरह से अध्ययन किया जाना चाहिए। अगर उन्हें उसमें कुद असामान्यता का आभास हो तो समय से पहले व्यक्तियों की सहायता लेकर उसके निराकरण और रोकथाम के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

(i) सीखने की प्रक्रिया में संवेगों की रचनात्मक भूमिका की ओर भी अध्यापक का ध्यान रहना आवश्यक है। संतुलित और संयमित संवेगात्मक व्यवहार और भावनाएं न केवल शारीरिक विकास के लिए एक अमूल्य टॉनिक का कार्य करती हैं बल्कि ज्ञान और कौशल अर्जित करने के लिए भी उचित वातावरण का निर्माण करती हैं। अत: निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता को विद्यार्थियों को शिक्षा ग्रहण कराने में संवेगात्मक रूप से सक्रिय साझीदार बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

## (IV) बच्चों के सामाजिक विकास

सामाजिक विकास और चारित्रिक विकास में धनात्मक सहसम्बन्ध (Positive Correlation) है। सामाजिक रूप से विकसित एक बच्चा सदैव ही समाज के आदर्शों और मूल्यों के अनुकूल व्यवहार करने का प्रयत्न करता है और इसलिए वह अपने चरित्र पर कोई भी धब्बा नहीं लगने देना चाहता। इस प्रकार से सामाजिकता का विकास चरित्र निर्माण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कदम माना जा सकता है। इस दृष्टिकोण से सामाजिक विकास की ओर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है। उनके आवश्यक सामाजिक गुणों का समावेश हो सके तथा वे सामाजिक सम्बन्धों का अच्दी तरह निर्वाह कर समाज के उत्तरदायित्वपूर्ण सदस्यों की भांति व्यवहार कर सकें, इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए माता-पिता तथा निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता द्वारा उन्हें पूरा-पूरा सहयोग दिया जाना चाहिये।

## (V) चारित्रिक विकास में परामर्शदाता की भूमिका

शिक्षा के क्षेत्र में चारित्रिक विकास की महत्ता को कभी भी कम नहीं आंका जा सकता। परामर्श तभी सार्थक है जब वह सुयोग्य एवं उत्तरदायित्वों को समझने वाले नागरिकों का निर्माण कर सके और यह कार्य चरित्र निर्माण के बिना सम्पन्न नहीं हो सकता। इसलिए चाहे परामर्श की कोई भी प्रणाली क्यों न हो अथवा कोई स्तर या अवस्था क्यों न हो, चरित्र निर्माण प्रत्येक स्तर और अवस्था में परामर्श का एक मुख्य और आवश्यक उद्देश्य माना जाता है।

(i) मूल प्रवृत्तियां चरित्र की आधारशिलाएं हैं। इसलिए चरित्र निर्माण की दिशा में सबसे पहला कार्य मूलप्रवृत्तियों का शोधन और उन्नयन करना है। व्यवहार को प्रभावित करने वाले विभिन्न संवेग मूलप्रवृत्तियों से ही पोषित होते है। इसलिए सुन्दर और स्वस्थ चरित्र के लिए बच्चे की मूलप्रवृत्तियों और उसके संवेगों के उचित शोधन और प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

(ii) बालकों की इच्छाओं तथा संकल्प शक्ति को दृढ़ बनाने के लिए हर संभव उपाय किये जाने चाहिए।

(iii) व्यक्ति की अपनी मान्यतायें, मूल्य और आदर्श उसके चरित्र को प्रतिबिम्बित करते हैं। किसी एक परिस्थिति में वह जैसा व्यवहार करता है उसके पीछे उसके जीवन के लक्ष्य और आदर्शों की छाप होती है। जितने ऊंचे और अच्छे जीवन और मूल्य आदर्श होंगे उसका चरित्र उतना ही सशक्त और उत्तम होगा।

(iv) चारित्रिक विकास में सुझावों का भी बहुत महत्व है लेकिन जहां तक संभव हो बच्चों के व्यवहार में अनुकूल परिवर्तन लाने के लिए सकारात्मक सुझाव (Positive Suggestions) की ही सहायता ली जानी चाहिए। इसके लिए बच्चों को सुन्दर एवं स्वस्थ कहानियां सुनाई जा सकती हैं तथा महान् व्यक्तियों के संस्मरण और जीवन वृतान्तों से उन्हें परिचित कराया जा सकता है। अध्यापक और माता-पिताओं को स्वयं अपने रहन-सहन और व्यवहार के द्वारा जीते जागते उदाहरण बच्चो के सम्मुख रखने चाहिए।

(v) चरित्र निर्माण में पुरस्कार और दण्ड दोनों का ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(vi) चरित्र निर्माण में नैतिक और धार्मिक शिक्षा की उपयोगिता भी असंदिग्ध है। अत: विद्यालय पाठ्यक्रम में इसे आवश्यक स्थान प्रदान किया जाना चाहिए।

## 1.6 बोध प्रश्न

1 वृद्धि एवं विकास कार्य में निर्देशनकर्त्ता एवं परामर्शदाता की भूमिका का विस्तारपूर्वक विश्लेषण कीजिये।

2 निर्देशनकर्ता एवं परामर्शदाता किस प्रकार किसी विद्यार्थी के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, चारित्रिक और भाषा सम्बन्धी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है ? उदाहरण सहित समझाइये।

## 1.7 संदर्भ सूची


1- शर्मा, एम.के. (2007), अधिगम का मनोसामाजिक आधार एवं शिक्षण, के.एस.के. पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

2- हन्सन, जेम्स सी. (1978), काउंसलिंग प्रोसेस एंड प्रोसिजर्स, मैक्मिलन कम्पनी, न्यूयार्क।

3- मरफी, जी, (1970), एन इन्ट्रोडक्शन टू काउसिंलिंग इन स्कूल्स, हार्पर एंड रो, न्यूयार्क।

4- रॉव नारायणन (1981) काउंसिलिंग साइकोलोजी, मैकग्रो हिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।

5- पसरिचा प्रेम, (1976), गाइडेन्स एंड काउंसिलिंगइन इंडियन एजुकेशन, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
6- श्रीवास्तव के.के. (2006) प्रिसिंपल्स ऑफ गाइडेन्स एंड काउंसिलिंग, कनिष्क पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
7- भार्गव महेश (2003) मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
**8-** मंगल एस.के. (2004), विद्यार्थी विकास एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, टंडन पब्लिकेशन, लुधियाना।

# इकाई - 2

# व्यक्तित्व

**इकाई की संरचना**

2.1 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 व्यक्तित्व का अर्थ एवं महत्व
2.3 व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास
2.4 व्यक्तित्व के अध्ययन के उपागम
2.5 व्यक्तित्व के निर्माण में शिक्षक की भूमिका
2.6 व्यक्ति और परामर्श
2.7 सारांश
2.8 बोध प्रश्न

## 2.1 उद्देश्य

- व्यक्तित्व का अर्थ व परिभाषा समझ सकेंगे।
- व्यक्तित्व के अध्ययन के महत्व को समझ सकेंगे।
- व्यक्तित्व के निर्माण व दिशा के ज्ञान की जानकारी।
- व्यक्तित्व के निर्माण में शिक्षक की भूमिका को समझना।
- व्यक्तित्व में परामर्श का योगदान।

## 2.1 प्रस्तावना

हम अभिवृद्धि, विकास की विभिन्न अवस्थाओं और पक्षो, मानव अधिगम के भिन्न प्रकारों का विवेचन कर चुके है। यह कहा जा सकता है कि विगत हर अध्याय में व्यक्तित्व के किसी न किसी महत्वपूर्ण पक्ष की चर्चा हुई है, क्योंकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि में जो कुछ हम है और जो कुछ हम बनने जा रहे है व जिसकी हमें आकांक्षा है, वही हमारा व्यक्तित्व हैं व्यक्तित्व की ऐसी संकल्पना काफी सरल है, पर व्यक्तित्व के पद का उपयोग व दुरूपयोग इतने विविध और विभिन्न अर्थो और संदर्भो में हुआ है कि एक सुस्पष्ट परिभाषा की बड़ी आवश्यकता है। लोग कहते हुए सुने जाते है ''अमुक'' पुरूश में व्यक्तित्व बहुत है'', व ''कुमारी 'क'- में व्यक्तित्व की कमी है'' जैसे व्यक्तित्व एक द्रव्य हो, जो किसी में हो और किसी में न हो। कुछ लोगों के बारे में कहा जाता है कि उनका व्यक्तित्व बड़ा शानदार हे, पर अभिप्राय केवल उनके

रौबीले डीलडौल व आकर्शक शक्ल-सूरत से होता है। व्यक्ति इसे कहीं का व्यापक शब्द है। इस इकाई में हम व्यक्तित्व व उससे संबंधितविभिन्न आयामों पर पढ़ेगे।

## 2.2 व्यक्तित्व का अर्थ एवं महत्व

मनोविज्ञान में व्यक्तित्व का अर्थ बहुत व्यापक हैं। वास्तव में मनोविज्ञान व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन ही है। साधारणतया जब हम व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग बोलचाल की भाषा में करते हैं तब इसका अर्थ व्यक्ति के बाह्य रंग-रूप, डील-डौल तथा उसकी गत्यात्मकता या उसका दूसरो पर जो प्रभाव पड़ता है उससे लगाते है। व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि से भी इसका यही अर्थ होता है। ''व्यक्तित्व'' शब्द का उद्गम लैटिन भाषा के ''पसोना'' से हुआ है। शब्द का प्रयोग किया गया जिसका अर्थ है मखौटा या नकली चेहरा जिसे पहनकर नाटक के पात्र रंग मंच पर आते हे। इसी से पर्सनालिटी (व्यक्तित्व) शब्द का प्रयोग अपनी बोलचाल, बेशभूशा, रूप रंग व्यवहार आदि से दूसरे को प्रभावित करने के अर्थ में किया जाने लगा। इस प्रकार जो व्यक्ति अपने गुणों को जितन प्रभावित करता है उसका व्यक्तित्व उतना ही प्रभावशाली माना जाता हे। किन्तु मनोविज्ञान के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि व्यक्तित्व व्यक्ति का केवल बाह्य रूप, रंग या प्रभाव नहीं है। व्यक्तित्व व्यक्ति के आन्तरिक एवं बाह्य सभी गुणों एवं अवगुणों का संगम हैं व्यक्ति अंदर बाहर से जो कुछ भी है अर्थात् उसके विचार, भाव इच्छाएँ, आकांक्षाएँ मूल्य दृष्टिकोण, चिन्तन प्रमाणी अर्थात् उसकी सभी ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं मनोगामक प्रवृत्तियों, क्षमताओं तथा विषमताओं सबका योग व्यक्तित्व शब्द में समाहित हो जाता है। व्यक्ति अन्दर तथा बाहर से जो कुछ है सभी कुछ उसका व्यक्तित्व है।

मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तित्व की अनेक परिभाषाएं दी हैं। कुछ परिभाषाएं निम्नलिखित है-

''व्यक्तित्व समाज द्वारा मान्य तथा अमान्य गुणों का संतुलन है''

"Personality is the balancne between socially approved and disapproved traits")

Rex Rock

''व्यक्तित्व व्यक्ति के गुणो का समन्वित प्रतिरूप है''

(Personality is an integrated pattern of traits)

- Guiford, J.P.

'व्यक्ति के व्यवहार के समस्त गुणों को व्यक्तित्व कहते हैं।

(Personality is total quality of an individual's behaviour Wood Worth, R.S.)

गार्डन आल पोर्ट (1937, 1961) की व्यक्तित्व सम्बन्धी परिभाषा सर्वमान्य है इस प्रकार है-

''व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो उसके व्यवहार एवं विचार को निर्धारित करता है।

"Personality is the dynamic organisation within the individual of those psychophysical system that determine his characteristic behaviour and thought."

(Allport.G.W. 1961)

अत: स्पष्ट है कि :-

1. व्यक्तित्व व्यक्ति के सभी गुणों एवं क्षमताओं का गत्यात्मक संगठन है।
2. व्यक्तित्व व्यक्ति का केवल बाह्य रूप, रंग, शारीरिक गठन ही नहीं है। यह उसकी आन्तरिक प्रक्रियाओं, मानसिक एवं भावनात्मक विशिष्टताओं तथा उसके बाह्य रूप रंग के गठन का एकीकरण है।
3. व्यक्तित्व के अन्तर्गत व्यक्ति की विभिन्न भावात्मक, क्रियात्मक तथा ज्ञानात्मक क्षमताएँ एवं विशिष्टताऐं आती हैं जो उसकी रूचि, प्रेरणा, अभिरूचि तथा समस्त सामाजिक एवं व्यक्तिगत व्यवहारों को निर्धारित करती हैं।
4. व्यक्तित्व सामाजिक उत्तेजकों के प्रति व्यक्ति की विशिष्ट अनुक्रिया है अर्थात् उसका विशिष्ट व्यवहार है। साथ ही यह वातावरण तथा समाज के साथ सामजस्य स्थापित करने का गुण या या विशिष्ट क्षमता भी है।
5. मनोवैज्ञानिकक आइजेंक के अनुसार, व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव, बुद्धि तथा शारीरिक गठन का स्वायी संगठन हे जिसके आधार पर वह वातावरण से सामंजस्य स्थापित करता है।
6. व्यक्तित्व गठन पर वंषानुक्रम एवं वातावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है।
7. कभी-कभी व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के किसी विशिष्ट गुण को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है। जैसे अमुक का व्यक्तित्व बहुत शांत है या अमुक बहुत क्रोधी है।
8. मनोविज्ञान में व्यक्तित्व के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य वैयक्तिक विभिन्नता से है अर्थात् एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किन लक्षणों में भिन्न है।
9. व्यक्तित्व को परिभाषित करने की दृष्टि से मनोवैज्ञानिको में मतभेद है किन्तु सरल शब्दों में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के व्यवहार करने के ढ़ंग, चिंतन प्रक्रिया तथा वातावरण में व्यवस्थापन करने के ढ़ंग से हैं व्यक्तित्व के अन्तर्गत व्यक्ति के स्थाई व्यवहार आते है।
10. व्यवहार व्यक्तित्व तथा सामाजिक एवं भौतिक वातावरण तथा परिस्थितियों की प्रतिक्रिया का परिणाम है।

किसी व्यक्ति को भली भांति समझने के लिए उसके व्यक्तित्व के अनेक गुणों तथा लक्षणों को जानना अति आवश्यक है। साथ ही यह जानना भी आवश्यक है कि उस व्यक्ति के विभिन्न गुणों का गत्यात्मक संगठन कैसा है। व्यक्ति का व्यवहार व्यक्तित्व के इन्हीं लक्षणों के सामजस्य तथा एकीकरण पर निर्भर करता है। मानव जीवन में संघर्ष या शांति इस बात पर निर्भर करते है कि उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू किस प्रकार संगठित हैं आधुनिक युग के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आर.बी. कैटल का मत है कि व्यक्तित्व के लक्षणों के अध्ययन से हम व्यक्ति के व्यवहार, का पूर्वाभास कर लेते है तथा व्यवहारों की भविष्यवाणी कर सकते है। शिक्षक को छात्रो के व्यवहार तथा उनके कारणों का अध्ययन करने के लिए छात्रों के व्यक्तित्व की विशेषताओं तथा उनके संगठन का वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में

अनेक अध्ययन एवं शोध कार्य किये गये है। जिसके द्वारा छात्रों तथा अध्यापको के विभिन्न व्यवहारों का सम्बन्ध व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताओं के आधार पर निश्चित किया गया है। बाल शिक्षा तथा बाल व्यवहार की अनेक समस्याओं का निदान व्यक्तित्व अध्ययन के आधार पर किया जा सकता हैं। छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि, अध्यापकों की शिक्षण प्रवीणता, छात्रों की अनुशासनहीनता आदि का व्यकित्तव ही विभिन्न विशेषताओं के साथ संबंध पाया गया है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनेक उपकरण एवं परीक्षण उपलब्ध है जिनके द्वारा व्यक्तित्व का वैज्ञानिक अध्ययन सुगमता से किया जा सकता है।

## 2.3 व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास

व्यक्तित्व के निर्माण में मुख्य रूप से वंशानुक्रम एवं वातावरण तथा इन दोनों के बीच होने वाली अन्त क्रिया का प्रभाव पड़ता है। बालक अपने माता-पिता तथा उनकी वंष परम्परा से जो पैतृक (जीवांष) लेकर जन्म लेता है वे उसकी नैसर्गिक शक्तियो, क्षमताओ, तथा अभिक्षमताओं को निर्धारित करते है, किन्तु व्यक्ति जिस वातावरण में पलता है तथा बड़ा होता है वह वातावरण व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों या प्रकाशित करता है। व्यक्ति का पारिवारिक परिवेश, उसकी शिक्षा, दीक्षा, संस्कृति, संस्कार तथा जीवन के अनुभव एवं जन्मजात शक्तियों या क्षमताओं का उचित विकास अच्छे वातावरण पर निर्भर करता है। विपरीत या अनुचित वातावरण के कारण व्यक्ति की अनेक क्षमताएं कुंठित हो जाती हे या अविकसित रह जाती है। इस प्रकार व्यक्तित्व के अनेक गुणों का विकास अवरूद्ध हो जाता है।

व्यक्ति का शारीरिक गठन, रंग रूप, आकार, बुद्धि, मांसपेशियों, प्रतिभा, भावनात्मक प्रतिक्रियाये आदि किसी सीमा तक जन्मजात है। व्यक्तित्व की ये विशेषताएं वंषार्जित है। किन्तु व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन के अनुभव, वातावरण का प्रभाव आदि उसके व्यक्तित्व के विकास के लिये उत्तरदायी हैं माता पिता अक्सर अपने विभिन्न बच्चों से विभिन्न प्रकार का व्यवहार करते हैं। इसके कारण विभिन्न बच्चों के व्यक्तित्व की अलग-अलग विशिष्टता या गुणों का विकास होता हैं। बच्चो की विभिन्न प्रतिक्रिया या पुनर्बलन भी अक्सर अलग-अलग तरीके से किया जाता है। इससे भी व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पड़ता है।

व्यक्ति की शारीरिक जन्मजात अभिवृत्तियों तथा शक्तियों का विकास उन तमाम अनुभवों द्वारा प्रभावित होते है जो साधारणतया अनेक लोगों में मिलते है जो किसी विशेष संस्कृति में पलते है, किन्तु कुछ अनुभव विशिष्ट होते है जो व्यक्ति को ही प्राप्त होते हैं। इन्हीं सामान्य तथा विशिष्ट अनुभवों के प्रभाव व्यक्तित्व के निर्माण या विकास के लिये उत्तरदायी होते है।

व्यक्तित्व के विकास पर डालने वाले कारक निम्नलिखित है :

1. **शारीरिक (Somatic) प्रभाव :-** शरीर के स्नायुमण्डल और क्रियाओं का व्यक्तित्व के विकास पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। शारीरिक विशेषताओं का मनुष्य के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की बुद्धि तथा मानसिक योग्यता व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती है। दुर्बल व्यक्ति का व्यक्तित्व पूर्णत: विकसित नही होगा।

यद्यपि शरीर का बाह्य रंग, रूप, कद, शरीर गठन आदि व्यक्तित्व को पूर्णतया स्पष्ट नहीं करते किन्तु ये सभी तत्व व्यक्ति के विकास पर प्रभाव डालते है। किसी प्रकार की शारीरिक कमी व्यक्ति के अन्दर हीनभावना पैदा कर सकती है और यह हीनभावना व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में बाधक हो सकती है। इसके विपरीत सुन्दर गठीला शरीर एक प्रभावशाली व्यक्तित्व का कारण बन सकता है। इस प्रकार शारीरिक गठन व्यक्तित्व के भावनात्मक पक्ष को भी प्रभावित करता है तथा पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में सहायक अथवा बाधक सिद्ध हो सकता है। कभी-कभी किसी प्रकार की शारीरिक कमी अपिपूर्तिकरण (Conmpensation) की प्रक्रिया के कारण व्यक्तित्व के किसी दूसरे पक्ष को अधिक विकसित करने का कारण भी बन जाती है।

अनेक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि शरीर रचना का व्यक्तित्व केलक्षणों से सम्बन्ध नहीं के बराबर है या बहुत कम है। लोगों का शारीरिक गठन, वजन, मांसपेशियों की शक्ति, उम्र, आदि खान-पान तथा व्यायाम आदि से परिवर्तित होते रहते है। किन्तु साथ ही कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिकों के अनुसार शारीरिक रचना का व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पड़ता है। मुख्य रूप से उन क्षेत्रों में जहॉ शारीरिक गठन व्यक्ति की क्षमताओं तथा प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करता हे। उदाहरण के लिये मजबूत शक्तिशाली, लम्बे चौड़े बालक इस प्रकार के काम करते है, या खतरा मोल लेते है जिनमें शारीरिक शक्ति तथा लम्बाई आदि की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत शारीरिक दृष्टि से दुर्बल बाल मानसिक क्रियाओं में अधिक यचि लेने लगते है, शारीरिक कार्य या खतरे से कतराते है, लड़ाई झगड़े से दूर रहना चाहते है। इस प्रकार शारीरिक गठन हमारे व्यक्तित्व के विकास की इस दिशा में प्रभाव डालता है कि लोग हमारे साथ किस प्रकार बर्ताव करते है तथा हम दूसरों के साथ कैसी प्रतिक्रिया करते है, या हम किस प्रकार की परिस्थितियों में रहना पसंद करते है या उनसे दूर भागते है।

**2. ग्रन्थि रचना :-** शरीर में अनेक अन्त:श्रावी ग्रंथियां है जिनसे विशेष प्रकार के श्राव (हारमोन) निकलते हैं जिनका प्रभाव व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है। जब तक ये ग्रन्थियां उचित रूप से कार्य करती रहती हैं व्यक्तित्व पर इनका वांछनीय प्रभाव पड़ता है। लेकिन जब कभी ये ग्रन्थियां उचित रूप से कार्य नहीं करती तो उनका अवांछनीय प्रभाव व्यक्ति के व्यवहारों पर तथा उसके समूचे व्यक्तित्व पर पड़ता है। यह प्रभाव निम्नलिखित प्रकार से पड़ता है।

1. इन ग्रन्थियां का थोड़ा सा अधिक श्राव जो आनुपातिक रूप से रक्त नहीं मिश्रित हो पाता तो इसका कुप्रभाव व्यक्तित्व पर भयानक रूप से पड़ता है।
2. ग्रन्थियों का प्रभाव व्यक्तियों की वृद्धि, शक्ति-संचयन, भोजन-मिश्रण तथा विशेष रूप से स्वास्थ्य पर पड़ता है। यही कारण है कि इन ग्रन्थियों को संवेगात्मक ग्रन्थियां या व्यक्तित्व ग्रन्थियां भी कहते है।
3. एड्रिनल ग्रन्थि से प्रवाहित होने वाला एड्रिनिन श्राव व्यक्ति को अधिक शक्ति प्रदान करता है, हृदय को उत्तेजना प्रदान करता है तथा शरीर को गतिमय बनाने में सहायक होता है।

4. गोनाड्य ग्रन्थियों के श्राव से लिंग उत्तेजना होती है। पुरूश की प्रजनन ग्रन्थियां शुक्र ग्रन्थियां तथा स्त्रियों की प्रजनन, ग्रन्थियां, डिम्ब ग्रन्थियां शारीरिक उत्पति तथा व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होता है तथा नर और मादा के गुणों में अन्तर भी स्पष्ट करता है। ये ग्रन्थियां हमारे अन्दर युवा-लैंगिग गुण उत्पन्न करती है जिससे पुरशत्व तथा स्त्रीत्व के लक्ष्यों का विकास होता हैं। स्पष्ट है ये ग्रन्थियों व्यक्ति में काम प्रवृत्ति तथा काम-प्रेरणा को जन्म देकर व्यक्ति के अनेक व्यवहार, रूचियों तथा संवेगों को संचालित करती है। लैंगिक घृणा के कारण बेढ़ंगा, दबे हुये, अविकसित तथा असंतुलित व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

**5.** थायरायड (Thyroid) ग्रन्थि के श्राव जिसे थायराक्सिन (Thyroxin) कहते है, के अधिक श्राव के फलस्वरूप व्यक्ति का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है तथा उसे बैचेनी का अनुभव होता है। उसे घेघा रोग हो जाता है। इसके विपरीत इस ग्रन्थि रस के अभाव में व्यक्ति के अन्दर सुस्ती तथा आलस्य आ जाता है।

थायराइड ग्रन्थि का हमारी बुद्धि तथा व्यक्तित्व के विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस ग्रन्थि रस के अभाव में व्यक्तित्व मानसिक तथा शारीरिक रूप से अविकसित रह जाता है। इसके अभाव में व्यक्ति बौना (Cretins) हो जाता है। मानसिक दृष्टि से व्यक्ति मूर्ख या मन्दबुद्धि रह जाता है। शरीर का विकास भी असंतुलित हो जाता है।

अत: अध्यापक को चाहिये कि बालकों के अन्दर थायराइड ग्रन्थि के श्राव की कमी को दूर करने हेतु चिकित्सक की सलाह दिलवाये। कक्षा में छात्र मे निरूतर रहले अपने आप में खोये रहने का संकेत थायराक्सिन की कमी हो सकती हैं किसी छात्र की बुद्धिमता, उसका शक्तिवान, होना, तथा समझदार होना थायराक्सिन की प्रचरता का संकेत हो सकता है।

6. इसी प्रकार उप थायराइड (Para Thyroid) का श्राव शरीर को शक्तिशाली बनाता है। इसके श्राव की कमी या अभाव के कारण शरीर की बुद्धि का अनुपात नष्ट हो सकता है। शरीर में ऐंठन तथा मरोड़ पैदा होती है जिससे मृत्यु भी हो सकती है।

7. लैंगर हैन्स के आइलेट्स से निकले इन्सुलीन श्राव की कमी के कारण मधुमेह रोग हो जाता है, शरीर में सुस्ती तथा बीमारी होती है जो व्यक्तित्व के संतुलित विकास में बाधक है। ये व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्ष को भी प्रभावित करते हैं।

8. पिट्यूटरी ग्रन्थि के रस के कारण अन्य ग्रन्थि रस भी विकसित होते हे। यह ग्रन्थि रस शारीरिक बृद्धि को प्रभावित करता है। इसकी प्रचुरता व्यक्ति में दावन के लक्षण उत्पन्न कर सकती है। व्यक्ति की लम्बाई अतयधिक बड़ा देती है। इसके विपरीत इसकी कमी के कारण शारीरिक तथा लैंगिक विकास पूर्ण नहीं हो पाता। इसके कारण बौनापन या बचपना उत्पन्न होता है।

9. इस प्रकार थाइमन तथा पिनियल ग्रन्थियों का लैंगिकक विकास और लैंगिक उत्पत्ति में महान योगदान है।

स्पष्ट है कि व्यक्तित्व का शक्तिशाली होना कई शारीरिक तथा रासायनिकक प्रतिक्रियाओं पर निर्भर है। इसमें स्नायुतंत्र, अन्त:श्रावी ग्रन्थियां तथा अनेक दैहिक प्रक्रियाएँ योगदान करती हैं। अभी यह निश्चित कर पाना कठिन है कि इसमें किस सीमा तक वंष परम्परा तथा किस सीमा तक व्यक्ति के अपने अनुभव योगदान करते है।

**3. वंषानुक्रम का प्रभाव** : मनोवैज्ञानिक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्ति के अनेक जन्मजात गुण केवल मां-बाप से ही संक्रमित नहीं होते वरन् माता-पिता के पूर्वजों की पीढ़ियों के गुण भी उसमें संक्रमित होते हैं। यहां तक कि प्राणियों के अर्जित गुण भी संक्रमित होते है। इस प्रकार व्यक्तित्व के विकास में पूर्वजों से संक्रमित गुणों का विशेष योगदान है। ये गुण व्यक्तित्व के आधारभूत सिद्धान्तों के रूप में कार्य करते हैं। वातावरण की क्रिया-प्रतिक्रिया स्वरूप इनमें कुछ परिवर्तन भी आता है, जिसके फलस्वरूप इन गुणों का अधिकतम विकास हो जाता है या विपरीत के कारण उनका विकास अवरूद्ध हो जाता है।

अनेक ब्रिटिष मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्तित्व के गुणों तथा क्षमताओं के निर्धारण में वंषानुक्रम की मुख्य भूमिका हैं किन्तु इसके विपरीत अनेक मनोवैज्ञानिक वातावरण को अधिक महत्वपूर्ण बताते है। स्पष्ट है कि :-

1. व्यक्तित्व के अनेक शारीरिक लक्षण जैसे लम्बाई, चौड़ाई, अस्थिरचना, बाल, आंखों का रंग आदि वंषानुक्रम से निर्धारित होते है।
2. इसी प्रकार अनेक मनोवैज्ञानिक लक्षण जैसें, बुद्धि, स्वभाव, संवेगात्मकता तथा अन्य मानसिक क्षमताएं वंष परम्परा की देन है।
3. वंष परम्परा हमारी क्षमताओं की सीमा निश्चित करती है तथा वातावरण उन क्षमताओं के विकास के लिये उतरदायी है।
4. सामन्जस्य या व्यवस्थापन स्थापित करने वाली क्षमताएं भी जन्मजात या पैतृक मानी जाती हैं। वातावरण के साथ व्यवस्थापन स्थापितकरने की क्षमताएं जन्मपूर्व (गर्भावस्था) की परिस्थितियों से प्रभावित होती है।
5. व्यक्तित्व की भिन्नता का एक कारण वंषानुक्रम की भिन्नता तथा जन्मपूर्व की विभिन्न परिस्थितियों होती हैं। वातावरण का भी इसमें बहुत योगदान होता हैं।
6. जन्म पूर्व अवस्था व्यक्तित्व विकास की एक महत्वपूर्ण अवस्था मानी जाती हे। इसी अवस्था में सामंजस्य स्थापित करने की क्षमताओं का निर्धारण होता है जिनके ऊपर ही जन्मोपरांत का जीवन निर्भर करता हैं।
7. व्यक्ति का स्नायु संस्थान जैविक-रासायनिक एंव शारीरिक संघटन पित्रैक पर ही आधारित होता है। इस प्रकार व्यक्तित्व के आधारभूत तत्व जेसे शारीरिक गठन बुद्धि

तथा स्वभाव वंषानुक्रम द्वारा निर्धारित होते हे। यही आधारभूत तत्व वातावरण के प्रभाव के फलस्वरूप व्यक्तित्व के लक्षणो के रूप में प्रकट होते है।

8. व्यक्ति की वैयक्तिकता भी बहुत कुछ इन्हीं जन्मजात पैतृक क्षमताओं पर आधारित है।

**4. कुटुम्ब का प्रभाव** :- बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर परिवार के वातावरण, लालन, पालन, संस्कार, संस्कृति तथा माता-पिता का बच्चे के प्रति व्यवहार आदि का बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मां-बाप का एक-दूसरे के प्रति व्यवहार, उनका जीवन के प्रति सिद्धान्त या दर्शन, बच्चे के प्रति दृष्टिकोण, घरेलू वातावरण आदि सभी का प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता हे। बच्चे के अनेक गुणों के विकास में तथा उसके वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता पर परिवार का प्रभाव पड़ता है। संक्षेप में व्यक्तित्व के विकास में परिवार का प्रभाव निम्नलिखित प्रकार से पड़ता है।

1. परिवार का प्रभाव केवल बचपन में नही नहीं पड़ता बल्कि जीवन पर्यन्त सभी अवस्थाओं में व्यक्तित्व के विकास पर उसका प्रभाव स्पष्ट पाया जाता है।
2. चूंकि बच्चा अपना अधिक समय परिवार वालो के बीच बिताता है, परिवार के अन्य सदस्य बच्चें के व्यवहारों पर नियंत्रण रखते है, बच्चा परिवार के संवेगात्मक रूप से अधिक जुड़ा होता है तथा परिवार बच्चे को सुरक्षा प्रदान करता है इस कारण व बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर अत्यधिक महत्वूपर्ण प्रभाव डालता है।
3. बच्चे के लालन पालन के तरीके द्वारा बच्चे के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन किया जाता है तथा परिवार द्वारा बच्चे की रूचियों, अभिरूचियों, मूल्यो आदि को विकसित या परिवर्तित किया जाता है इस कारण भी उसके व्यक्तित्व विकास में परिवार का विशेष योगदान होता है।
4. घर का भावनात्मक-वातावरण, विद्यालय के वातावरण की अपेक्षा बच्चों के व्यक्तित्व पर अधिक प्रभाव डालता है। घर का अनुकूल तथा अच्छा भावनात्मक वातावरण बच्चों में दूसरों के प्रति प्रेम, स्नेह, सहानुभूति, सहनशीलता, भाईचारा, तथा मिलजूल कर रहने की भावना पैदा करता है। इसके विपरीत यदि घर वालों के बीच में झगड़ा तनाव ईश्र्या, द्वेश, घृणा आदि का सम्बन्ध रहता हे तो बच्चों के व्यक्तित्व में अनेक अवगुण पैदा हो जाते हे। उनमें भी ईश्र्या, द्वेश घृणा संवेगात्मक असहिश्णुता, संघर्ष की भावना, तथा तनाव प्रवृत्तियाँ पैदा हो जाती है।
5. किसी भी व्यक्ति का अपने परिवार में भाई तथा बहन के बीच कौन सा स्थान है इसका भी प्रभाव उसके व्यक्तित्व के विकास पर स्पष्ट पड़ता हैं
6. परिवार के आकार का प्रभाव परिवार के वातावरण पर तथा परिणामतया बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। साथ ही माता-पिता परिवार के परिवार के आकार के प्रति कैसा अनुभव करते हे इसका प्रभाव भी बच्चों के विकास पर पड़ता है।

**5. वातावरण का प्रभाव :-** व्यक्तित्व निर्माण या व्यक्तित्व के विकास पर सबसे अधिक प्रभाव वातावरण का पड़ता हे। व्यक्तियों को जैसा वातावरण मिलेगा वैसा ही उनके व्यक्तित्व का विकास होगा। घर तथा समाज का आदर्श रीति-रिवाज, बोलचाल आदि सभी बाते बच्चे के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालती है।

1. बच्चे के व्यक्तित्व पर सामाजिक वातावरण का प्रभाव अत्यधिक पड़ता है। डलर्ड महोदय के अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व का समाज के वातावरण में गुथा हुआ है। (Personality is shaped by and interwoven with the social environment).

   इसी प्रकार लारेंस के अनुसार संस्कृति वह आधार भूमि है जिससे व्यक्तित्व विकसित होता है। (Culture is the ground from which personality emerges)
2. मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में उसकी सभ्यता, रहन-सहन का ढ़ंग तथा समाज, वातावरण और व्यक्ति के बीच होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया का विशेष योगदान है।
3. व्यक्तित्व के विकास में वे अनुभव जो दूसरों के सम्पर्क के कारण उसमें उत्पन्न होते है, अपना अमिट तथा स्पष्ट प्रभाव डालते है। इस प्रकार परिवार के अनुभव, विद्यालय के अनुभव तथा समुदायों के अनुभव का गहन प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है।
4. विद्यालय के अनुभव के रूप में यदि पाठशाला में योग्य शिक्षक है, संतोशजनक फर्नीचर है, अच्छी कक्षाओं की व्यवस्था है, अच्छा क्रीडास्थल है, विद्यालय में बालक के सर्वागीण विकास के लिये अनेक सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है तब बच्चों के व्यक्तित्व के अपेक्षित विकास की संभावना की जा सकती है।
5. वातावरण के अन्तर्गत वे सभी नैतिक, सामाजिक, शारीरिक, भौतिक तथा बौद्धिक परिस्थितियाँ आती है जो व्यक्ति के जीवन पर्यन्त अपना प्रभाव डालती है।
6. वंषानुक्रम के पितृगत गुणों का परिमार्जन तथा रूपान्तरण करने एवं उनको विशेष तथा उपयुक्त साँचे में ढ़ालने का काम वातावरण का ही है। इस प्रकार व्यक्तित्व का निर्माण वंषानुक्रम और वातावरण, दोनों के सहयोग से होता है।

**6. बाल्यावस्था के अनुभव** :- बाल्यावस्था के अनुभव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव डालते हैं परिपक्वता (maturation) के पूर्व जब व्यक्तित्व निर्मित होता है, समय बच्चे का मन, तथा शरीर, बहुत कोमल होते है। अत: इस अवस्था के अनुभव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर एक अमिट छाप छोड़ जाते है जिसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व गठन पर स्थायी रूप से पड़ता है। जिन अनुभवों परिस्थितियों तथा वातावरण के बीच व्यक्ति का बचपन गुजरता है उन्हीं का प्रभाव उसके व्यक्तित्व का आधार बनता है। माता-पिता, समाज के अन्य सदस्यों का व्यवहार तथा संस्कृति जिसमें बच्चा पलता है उसका प्रभाव विकासशील व्यक्तित्व पर स्पष्ट रूप में पड़ता है। घर की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति भी अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे के विकास पर प्रभाव डालती है।

**7. विद्यालय का अनुभव :-** विद्यालय का वातावरण, अध्यापको, एवं अन्य विद्यार्थियों का व्यवहार, विद्यालय की पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ आदि तत्व बच्चे के व्यक्तित्व को बनाने में सहयोग देते है। विद्यालय का स्नेहमय, सहानुभूतिपूर्ण वातावरण, मिलजुलकर भ्रातृत्व भाव से कार्य करने के अलवर, अध्यापको तथा शाला-अधिकारियों का स्नेहमय, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, बच्चों की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक समाधान आदि उनके व्यक्तित्व विकास पर अच्छा प्रभाव डालते है। इससे बच्चों में सहयोग प्रेम, भाईचारा, तथा समूह भावना पैदा होती है, उसका हृदय संवेदनशील बनता है तथा उसमें मानवता के प्रति प्रेम एवं त्याग की भावना का जन्म होता है। विद्यालय में बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति, मनोरंजन के साधन, खेलों का प्रबन्ध, उच्चादर्ष, शिक्षा नाटक अन्य सांस्कृति कार्यक्रय, पिकनिक का आयोजन, सुन्दर पुस्तकालय तथा अध्यापको के आदर्श ये सभी बाते बच्चों के अच्छे व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक सिद्ध होती है।

**8. प्रशिक्षण एवं सीखना :-** बच्चों को बचपन में ही जिस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता हे, उनका लालन पालन किया जाता हे तथा उचित दिशा में सीखने के लिये प्रेरित किया जाता है उसका पर्याप्त प्रभाव उनके व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। जिस प्रकार के आदर्श उनके सामने उपस्थित किये जाते है तथा जिन आदर्षो का बच्चे अनुकरण करते है उन्ही के अनुरूप उनके व्यक्तित्व का विकास होता है। प्रत्येक संस्कृति में कुछ विशेष व्यक्तित्व का आदर्शरूप मे अनुकरण किया जाता है। फलस्वरूप उस संस्कृति में पले बच्चों के व्यक्तित्व का विकास तथा संरचना उसी दिशा में होती है।

सीखने के अवसर तथा अभिप्रेरणा स्पष्ट रूप से बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। बच्चों के प्रशिक्षण की प्रभुतावादी, जनतंत्रात्मक तथा उन्मुक्त तीन विधियाँ है जो माता-पिता तथा अध्यापको द्वारा प्रयोग में लाई जाती है। प्रभुतावादी कठोर अनुशासन बच्चों के विकास पर अच्छा प्रभव नहीं डालता। इससे बच्चों की भावनाओं का दमन होता है तथा उनका व्यक्तित्व कुंठित, अर्द्धविकसित या दबा हुआ निर्मित होता है। उन्मुक्तता, पूर्णस्वतन्त्रता तथा अंकुषविहीन व्यवहार बच्चों को गलत मार्ग पर ले जा सकता है, उनको चरित्रहीन बना सकता है। जिससे उनमें अपेक्षित गुणों का अभाव हो जाता है। अत: व्यक्तिगत निर्माण में स्वतंत्रता एवं अनुशासन दोनों में समन्वय होना आवश्यक है। उतनी ही स्वतंत्रता उचित है जो बच्चों के स्वतंत्र विकास के लिये आवश्यक है तथा उतना ही अनुशासन अपेक्षित है जो बच्चों में या कुंठा न पैदा करे। माता-पिता, अभिभावक तथा अध्यापको को बच्चों की मनोभावनाओं तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को समझना चाहिये तथा उनकी पूर्ति यथा संभव करने का प्रयत्न करना चाहिये। बच्चों का व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास के अवसर देने चाहिये तथा उनकी प्रकृतिदत्त क्षमताओं, शक्तियों तथा प्रवृत्तियों को रचनात्मक कार्यो में लगाकर उनके व्यक्तित्व निर्माण में सकारात्मक योगदान करना चाहिये।

## 2.4 व्यक्तित्व के अध्ययन के उपागम

व्यक्तित्व को समझने के लिये अनेक विद्धानों ने अपने पृथक उपाये किये हैं। इन उपायों द्वारा यह ज्ञात करने की चेष्टा की गई है कि व्यक्तित्व किन तत्वों से मिलकर बना है। कुछ विद्धानों व्यक्तित्व के स्वरूप का अध्ययन शीलगुणों के द्वारा करते हैं तो कोई शरीर संरचना के द्वारा और कोई मानसिक प्रक्रिया का विश्लेषण करके, नीचे इसी प्रकार की अध्ययन विधियों की चर्चा है -

### 2.4.1 मनोविश्लेषण उपागम

व्यक्तित्व को समझने की इस विधि का विकास फ्रायड ने किया। फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व के तीन कारक या तत्व होते है

**1** इदम

**2** अहम

**3** परम अहम

प्रत्येक व्यक्ति में इदम की भावना होती है। जिससे वह आवश्यकताओं की शीघ्रातिशीघ्र पर्ति करना चाहता है। इदम् का आधार भौतिक सुख है और इदम सुख का अन्धा बनकर पीछा करती है। इसका संबंधअचेतन मन से होता है। इसीलिए यह कभी भी संवेगात्मक स्तर से उंचा नहीं उठ पाता। एक प्रकार से मनुष्य में यह आसुरीय या राक्षसीय प्रवृति है। कुछ विद्वानों ने इसे आदि मानव या पाष्विक का भी नाम दिया है। संसार की वास्तविकता तथा यर्थाथता से इसका संबध नहीं होता है।

अहम मानवीय प्रवृति है जिसके कारण कोई व्यक्तित्व मानवोचित कार्य करता है। यह मनुष्य की यर्थाथ या वास्तविकता की स्थिति है। अहम का सर्वप्रमुख कार्य स्व रक्षा है। स्व की रक्षार्थ वह वातावरण भौतिक व सामाजिक दोनों का ही ज्ञान प्राप्त करता है। थोथी कल्पनाओं से हटकर वास्तविक जगत में आता है। यह सुख प्राप्त करने के लिए इदम के समान अन्धा नहीं बनता है और प्रत्येक कार्य के परिणामों को पूरी तरह सोच लेता है। अहम अनुभवों से ज्ञान प्राप्त करता है तथा वर्तमान समस्याओं का हल करता है। इसी के अन्तर्गत वह मूल वृति तथा संवेगों पर नियंत्रण तथा दमन करता है।

जहां तक परम अहम का प्रश्न है, इसका विकास वातावरण तथा समाज के नैतिक वातावरण से होता है। यह व्यक्ति के अति मानव की प्रवृति है जो सदैव अच्छे देवीय कार्यों की ओर प्रेरित करती है। फ्रायड के अनुसार इदम का विकास शैशवस्था में हो जाता है। अभिवृद्धि व विकास के साथ साथ अहम का भी विकास होता चलता है। किन्तु बालक देखता है कि समाज कुछ कार्यों को मान्यता नहीं देता है और कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें करने से रोका जाता है। धीरे धीरे कार्यों पर वह नियंत्रण करना सीख जाता है इसके लिए वह सर्वप्रथम अपने माता पिता को प्रारूप मान लेता है। क्योंकि वे ही बालक को असामाजिक तथा अनैतिक कार्यों को करने से उसे डराकर धमकाकर या प्यार से बालक को रोकते है। इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में माता पिता ही परम अहम का ज्ञान प्रदान करते हैं। यह एक प्रकार की नैतिक चेतना हे जिसे हम अन्त:करण या अन्तरात्मा भी कह सकते हैं। इदम मनुष्य को राक्षसी मार्ग पर ले जाता है तो परम अहम आदर्श नैतिकता के मार्ग पर। अहम दोनों के बीच मध्सस्था करके यर्थाथ की ओर ले जाता है।

व्यक्ति में इदम अहम तथा परम अहम में से जो तत्व अधिक शक्तिशाली होगा, व्यक्तित्व वैसा ही होगा। यदि व्यक्ति का इदम "क्तिषली है तो व्यक्ति निम्न कोटी का, कामी क्रोधी तथा सुख के पीछे दीवाना होगा और यदि परम अहम् उंचे है तो वह अत्यधिक आध्यात्मिक, दैवीय शक्तिवाल, नैतिक व आदर्शवादी होगा। व्यक्ति का अहम् शक्तिशाली होगा तो वह यथार्थवादी होगा। अहम के शक्तिहीन होने पर वह इदम व परम अहम के संघर्शों की मध्यस्थता नहीं कर पयेगा। फलत: उसका जीवन संघर्शों, दुविधाओं, असन्तुलन तथा अव्यवहारिक से भरा हुआ होगा।

शीलगुण विधि

आलपोर्ट तथा कैटल आदि ने व्यक्तित्व को समझने के लिए व्यक्तित्व के शीलगुणों का अध्ययन करने पर बल दिया। व्यक्तित्व के शीलगुणों से तात्पर्य के वे गुण हैं जो व्यवहार को निश्चित करते हैं। ये गुण व्यक्ति में एक प्रकार से स्थायी होते हैं। गैरिट ने शीलगुणों के संबंधमें लिखा है

आलपोर्ट ने अंग्रेजी भाषा के शब्दकोश से **17953** विशेषण शब्द तलाश किये जिसमें से उसने पुन: **4500** शब्दों को छांटा। ये **4500** विशेषण शब्द व्यक्तित्व के शीलगुणों से संबंधित थे। ऑलपोर्ट के अलावा केटल ने प्रारम्भ में **171** शीलगुणों की सूची दी, बाद में कैटल ने इन **171** शीलगुणों को **12** समूहों में विभक्त किया।

वुडवर्थ ने इस संबंधमें एक उल्लेखनीय तथ्य कहा कि प्रत्येक शीलगुणके दो पक्ष होते है - सकारात्मक तथा नकारात्मक । इस सिद्धानत के अनुसार प्रसन्न चित व मिलननुसार शीलगुण का सकारात्मक है तो उदासीन तथा झेपूं उसका नकारात्मक पक्ष है। कैटिल ने निम्न **12** प्राथमिक शीलगुण बताया।

**1** चक्रविक्षित - भावुक, स्पष्ट तथा विचारों को बिना परिणामों के सोचे कहने वाली व्यक्ति चक्रविक्षिप्त होता है।

**2** सामान्य मानसिक क्षमता - यह सामान्य मानसिक योग्यताओं वाले व्यक्तित्व होते है।

**3** प्रभुत्वपूर्ण - जो दूसरों पर प्रभुत्व जमाना चाहते हैं, अत्यधिक विश्वसनीय होते हैं, बात बात पर झगड़ा करते हैं वे प्रभुत्वपूर्ण व्यक्तित्व होते है।

**4** प्रसन्नचित - जो व्यक्ति प्राय: प्रसन्नचित रहते है, वे इस श्रेणी में आते हैं। ये आत्मविष्वासी होते है।

**5** सकारात्मक स्थिरता - जो व्यक्ति प्राय: प्रसन्नचित रहते है, वे इस श्रेणी में आते हैं। ये आत्मविष्वासी होते है।

**6** संवेगात्मक स्थिरता - जो व्यक्ति दूसरे की बातों पर अधिक ध्यान देता है, वह इस श्रेणी में आता है।

**7** साहसी चक्रकविक्षिप्त - इस प्रकार के शीलगुण वाले व्यक्ति विषमलिंगी रूचि वाले, आत्म विष्वासी, साहसी तथा सामाजिक होते हैं।

**8** परिपक्वता - जिसमें आत्म - निर्णय, स्वतंत्रता अपने में परिपूर्णता होती है वे इस श्रेणी में आते हैं।

**9** सुसंस्कृत **-** सुसंस्कृत व्यक्ति के होते हैं जो सामाजिक संस्कृति के अनुसार जीवनयापन करते है।

**10** विष्वासी **-** जो दूसरों पर सहसा ही विश्वास कर लेते हैं। वे विष्वासी कहलाते हैं।

**11** अपरम्परागत **-** जो व्यक्ति प्रचलित परम्पराओं के साथ न चलकर अपनी स्वयं की परम्पराऐं अपनाते हैं वे इस श्रेणी में आते है।

**12** विनयशील **-** एकानतप्रिय मदुभाषी शांत स्वभाव के व्यक्ति इस गुण से युक्त होते है।

**वुडवर्थ ने अंग्राकिंत प्रधान गुणों का उनके विपरित गुणों सहित उल्लेख किया है -**

| **क्र.सं.** | **विपरीत गुण** | **क्र.सं.** | **विपरीत गुण** |
|---|---|---|---|
| | प्रसन्नचित, सामाजिक | **1** | डदासीन, झेपू |
| | बुद्धिमान | **2** | मूर्ख |
| | संवेगात्मक स्थिर, यथार्थवादी | **3** | संवेगात्मक अस्थिरता, अयथार्थवादी |
| | अधिकार प्रिय, आत्मगोरव | **4** | आज्ञाकारी, आत्महीनतापूर्ण |
| | समाजिक शांत | **5** | एकान्तप्रिय,झगड़ालू |
| | दयालु, कोमल हृदय | **6** | कठोर, हृदयहीन |
| | शिष्ट, सत्यवादी | **7** | अशिष्ट झूठे |
| | परिश्रमी | **8** | आलसी |
| | सहसी | **9** | डरपोक |
| | चुस्त | **10** | सुस्त |
| | शीघ्र क्रोधी चिडचिड़ा | **11** | शांत, सहनशीलता |
| | मित्रतापूर्ण | **12** | शत्रुतापूर्ण |

**सुविधा की दृष्टि से इन समस्त शीलगुणों को निम्न चार श्रेणियोंमें विभाजित कर सकते हैं -**

1 शारीरिक शीलगुण
2 मानसिक शीलगुण
3 सामाजिक शीलगुण
4 समन्वय शीलगुण

नीचे इन चारों श्रेणियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है

1 शारीरिक सन्तुलन - शारीरिक शीलगुणों में हम व्यक्ति को शरीर संरचना शीलगुणों को सम्मिलित करते हैं - जैसे - उसकी सुन्दरता, सुडौलता, रंग , रूप, स्वास्थ्य, लम्बाई, चौडाई आदि।

2 मनसिक शीलगुण - शारीरिक शीलगुण के तीन पक्ष होत है

1 ज्ञानात्मक अथवा बुद्धि

2 अनुमति अथवा स्वभाव

3 इच्छा अथवा चरित्र

समस्त मानसिक क्रियाऐं इन्हीं तीन पक्षों में निहित होती है जैसे बुद्धि में मानसिक योग्यताएं आ जाती है, स्वभाव में उसके व्यवहार आ जाते हैं जैसे वह निराषवादी है या आशावादी मिलनसार है या एकान्तप्रिय स्थिर है, अथवा अस्थिर, क्रोधी है या शांत तथा चरित्र मे व्यक्ति की समस्त चारित्रिक विशेषताएं सम्मिलित करते है।

3 सामाजिक शीलगुण - सामाजिक शीलगुणों में व्यक्तित्व के गुण सम्मिलित होते है जिनके द्वारा व्यक्ति समाज में सफलता के साथ समायोजन करता है। इन गुणेां के अभाव में समाज के साथ समायोजन नहीं हो पाता है तथा व्यक्ति समाज की परम्परा को नहीं मानता है। सामाजिक के अभाव में व्यक्ति क्रोधी विद्रोही, एकान्तप्रिय, चिड़चिड़े तथा आक्रामक हो जाते है।

4 *समन्वय* शीलगुण - जैसा कि हम अध्ययन कर चुके हैं, व्यक्तित्व अनेक गुणों का समन्वय है। समन्वय करने की शक्ति जितनी अधिक अच्छी होगी, व्यक्तित्व उतना ही सन्तुलित होगा।समन्वय के शीलगुण के कारण व्यक्ति के विभिन्न मानसिक, शारीरिक व सामाजिक शीलगुणों का समन्वय कर एक सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

शीलगुण व्यक्तिगत को समझने के लिये बड़े महत्वपूर्ण होते है। शीलगुण ही वास्तव में व्यक्तित्व के आधार होते है। गार्डनर तथा मर्फी ने शीलगुणों के महत्व के संबंधमें लिखा है कि उपरोक्त शीलगुणों आधार पर हम भविष्यवाणी कर सकते है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति क्या कार्य करेगा।

## 2.5 व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षक की भूमिका

व्यक्तित्व विकास पर विद्यालय के वातावरण तथा पठन-पाठन के योगदान पर उपर्युक्त इकाई में प्रकाश डाला जा चुका है। इसमें शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षक छात्रों के साथ किस प्रकार व्यवहार करते हैं, छात्रों की समस्याओं को किस सीमा तक गंभीरता से लेते है तथा उनका उचित समाधान करते है तथा छात्रों की विभिन्न ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोगामक क्षमताओं को विकसित करने के अवसर प्रदान करते है, उन्हे अभिप्रेरित करते है तथा प्रशिक्षित करते है इन सभी बातों का प्रभाव छात्रों के व्यक्तित्व विकास पर बहुत गहरा पड़ता है। अत: इस दृष्टि से अध्यापकों को निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये।

1. प्रत्येक छात्र की वैयक्तिकता को पहचानने का प्रत्यन करे। छात्रों की व्यक्तिगत विभिन्नता को ध्यान में रखते हुये, उनकी अभिरूचि, क्षमता, आयु, रूचि एवं परिस्थितियों पर ध्यान देते हुए उन्हें कार्य करने के तथा अध्ययन करने के ऐसे अवसर प्रदान करें प्रोत्साहित करे जिससे उन की जन्मजात प्रकृतिदत्त क्षमताओं का यथा संभव अधिकतम विकास हो सके।
2. छात्रों की ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोगत्यात्मक क्षमता तथा प्रतिभा को विकसित करने के अलग-अलग अवसर प्रदान करें। केवल ज्ञानात्मक क्षमता के विकास पर ही बल न दे। बच्चों के भावों को भी परिमार्जन एवं विकास करे तथा उनमें कौशल, अभ्यास तथा प्रशिक्षण को विकसित करने का प्रयत्न करें।
3. छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिये विद्यालय में अनेक पाठ्यक्रमों सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाय जैसे - खेलखूद, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम, पिकनिक तथा सरस्वती भ्रमण, स्काउटिंग, गाइड्स तथा एन.सी.सी. का प्रषिखण, सामाजिक सेवा के कार्य, त्यौहारों एवं उत्सवों का आयोजन आदि।
4. विद्यालय में निर्देशन एवं परामर्श सेवा (Guidance and Conunselling) के द्वारा छात्रो की व्यक्तिगत, शैक्षिक एवं व्यावसायिक समस्याओं के समाधान का प्रयत्न किया जाय।
5. विद्यालय का वातावरण सरल, मधुर शांत, प्रेममय तथा सहानुभूतिपूर्ण बनाया जाय तथा छात्रों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान किये जायें।
6. बच्चों की सृजनात्मकता तथा उनके स्वतंत्रचिन्तन को बढ़ावा दिया जाय। छात्र एवं अध्यापक के बीच मित्रवत् प्रेममय सम्बन्ध हो। व्यर्थ डर की भावना पैदा न की जाय।
7. छात्रों के साथ ऐसे व्यवहार किये जाये जिनमें उनमें नकारात्मक भावों को बढ़ावा न मिले। उन्हें ईश्र्या, द्वेश, घृणा, क्रोध आदि के भावों से बचाया जाय।
8. छात्रों को ऐसे अनुभव दिये जाये जिससे उनमें विश्वास एवं आत्मविश्वास विकसित हो।
9. छात्रों के समक्ष ऐसे गुणों का प्रदर्शन करें जिन्हें आत्मसात कर वे अपने व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाये।
10. छात्रों के चारों ओर एक उचित मानसिक वातावरण का निर्माण किया जाये जैसे पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, परीक्षणषाला, पुस्तकालय, गोश्ठी संघ आदि की उचित व्यवस्था। पाठशालाओं में बच्चों के मनोरंजन या मनोविनोद के लिये भी पर्याप्त सामग्री होनी चाहिये।
11. अध्यापक को इस ओर भी ध्यान देना चाहिये कि बालको के कुटुम्ब का वातावरण भी उनके समुचित विकास के अनुकूल हो। यदि आवश्यकता हो तो छात्रों के माता-पिता तथा परिवार के सदस्यों को उचित मार्गदर्शन एव परामर्श दिया जाये जिससे बच्चों के विकास में सहायता मिले।
12. पाठशाला के कार्यक्रम में वंषानुक्रम और वातावरण दोनों का ही ध्यान रखना चाहिये। सर्वप्रथम बालक की योग्यता, रूचि, सम्मान, प्रवृत्ति, संवेग या भावना और बुद्धि का अध्ययन होना

चाहिये। तदुपरान्त इस प्रकार उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करना चाहिये जिसमें बालक अपनी निहित संभावनाओं को अपने स्वाभाविक रूप में विकसित कर कें।

13. परीक्षा के ढ़ंग तथा छात्रों की विभिन्न उपलब्धियों के मूल्याकंन में इस प्रकार परिवर्तन किया जाये जिससे केवल बौद्धिक क्षमता या स्मृति पर ही बल न पड़े बल्कि छात्रों की विभिन्न क्षमताओं एवं गुणों का मूल्याकंन हो। साथ ही मूल्याकंन के बाद छात्रों की कमियों को दूर करने के सुझाव समय-समय पर अवश्य दिये जाये।

14. अध्यापक को यह ध्यान रहे कि उसका स्वयं का व्यक्तित्व बालके के व्यवहार पर बहुत अधिक प्रभाव डालता है।

15. प्रभावशाली व्यक्तित्व के निर्माण के लिये अति आवश्यक है कि अध्यापक छात्रों का जीवन के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण बनाए। साथ ही छात्रों का स्कूल, शिक्षा तथा अध्यापको के प्रति उचित सकारात्मक दृष्टिकोण निर्मित किया जाय। शिक्षा, अध्यापक तथा विद्यालय के प्रति यदि बालक का नकारात्मक दृष्टिकोण होता है तो वह अपनी क्षमता से कम उपलब्धि प्राप्त करता है तथा उसके विकास में भी बांधा पहुंचती है। अक्सर ऐसे छात्र विद्यालय की आलोचना करते रहते है, विद्यालय में डरते है, उनमें विद्यालय से भाग जाने की आदत पड़ जाती है, परीक्षा में नहीं बैठने या दूसरों के साथ बुरा व्यवहार करने लगते है जो उनका विद्यालय के प्रति एक प्रकार से प्रतिषोधात्मक रूख ही समझा जा सकता है।

16. विद्यालय के प्रति अच्छे दृष्टिकोण का मुख्य कारण विद्यालय का भावात्मक वातावरण होता है। यदि अध्यापको का शिक्षा के प्रति, शिक्षण विधि के प्रति एवं छात्रों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण होता है तब ही उनको अधिक सीखने की प्रेरणा मिलती है।

17. विद्यालय में अध्यापको का छात्रों के साथ तथा छात्रों का आपस में मधुर, स्नेहमय तथा सहयोगपूर्ण सम्बन्ध उनके व्यक्तित्व विकास में बड़ा योगदान करता हैं

    स्पष्ट है कि छात्रों के विकासशील व्यक्तित्व पर विद्यालय एवं अध्यापको का बहुत प्रभाव पड़ता है तथा अध्यापक को अपनी इस भूमिका के प्रति सचेत या सर्तक रहना चाहिये। जिससे वह उनके सर्वांगीण विकस में अधिक से अधिक सहयोग प्रदान कर सके।

## 2.6 व्यक्तित्व और निदेशन की भूमिका

पूर्ववर्ती व्याख्या से मालूम होता है कि बालक व्यक्तित्व का क्या प्रतिरूप विकसित करेगा। यह घर और विद्यालय पर निर्भर करता है। अध्यापक और माता-पिता दोनों पूछ सकते हे कि क्या समाकलित व्यक्तियों के विकास में मनोविज्ञान कोई निर्देशन दे सकता है। किस हद तक दोनों इस प्रक्रिया का का प्रभावकारी ढंग से निर्देशन कर सकते है, यह स्पष्टता कहत सकना आसान नहीं, क्योकि वह बहुत ही विविध प्रकार के प्रभावों पर निर्भर करता है। जैसे परिपक्वता, वंषानुक्रम, संस्कृति स्वास्थ्य, संतोशप्रद अनुभव, ज्ञान, बुद्धि, व्यक्तित्व आवश्यकताओं और समाज की मांगों के बीच सामंजस्यपूर्ण समंजन, अभिवृति और मूल्य तंत्र, पुस्तको और पत्रिकाओं में व्यक्तित्व बनाने और सुधारने के नुस्खे दिये जाते है,

वह बड़ा जरूरी जान पड़ता है कि व्यक्तित्व समाकलन के निर्देशन के लिए कुछ सामान्य नियमों का संकेत दिया जाए।

सर्वप्रथम, युवा लोगों को प्रोस्साहन और सहायता देनी चाहिए कि वे अपने लिए ऐसे सुष्चित लक्ष्य और उद्देश्य निर्धारत करे, जिन्हें सिद्ध करने की उन्हें आशा है। सामान्यत: माता-पिता बालकों के सम्मुख बड़े ऊँचें लक्ष्य रखते है, क्योंकि अनजाने ही वे चाहते है कि जो सफलता जीवन में उन्हे नही मिल सकी उसकी पूर्ति उसकी संतान की चमत्कारपूर्ण सफलत में हो जाए। यह उनके लिए बड़ी प्रतिष्ठा का कारण हो सकता हे। पर ऐसा करने में वे विफलता और कुण्ठा की संभावनाओं में वृद्धि करते है। कुछ माता-पिता और अध्यापक विश्वास करते है कि विफलता और कुण्ठार में अनुभव से युवा लोग कठिन परिश्रम की कड़ी और आवश्यकता और मूल्य को भली-भांति समझ जायेगें। यह विचार बिल्कुल सही नहीं है, सफलता और कुण्ठा के आघातों का सामना करने की योग्यता और शक्ति, सफलता और सिद्धि के अनुभवों से और जो आत्मविश्वास और सुरक्षा की भावना उनसे प्राप्त होती है उसमें अर्जित की जाती हे। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि युवा लोगों को सफलता के अनुभवों के आधार पर बार-बार मिलते रहे, और यह तभी व्यावहारिक हो सकता है यदि माता-पिता और अध्यापक बालको के लिए ऐसे लक्ष्य उद्देश्य निश्चित करे, जो उनकी योग्यता के अनुकूल हो।

दूसरे, घर और स्कूल दोनों में पर्यावरण प्रोत्साहन देने वाला और सुरक्षित होना चाहिए। उसमें कोई कुण्ठा, भय, चिन्ता, और अनिष्चय न रहे। उनके लिए अधिगम और ज्ञानापार्जन एक साहसपूर्ण काम होना चाहिए, जिसमें मजेदार और दिलचस्प स्थितियां हो और अपने आप काम करने, अर्थात् आत्म क्रियाशीलता के भरसक अवसर हो, अधिगम की स्थितियां चुनौती देने वाली हो, पर चुनौती ऐसी हो जो उन्हें और अधिक प्रयाय के लिए उकसाये। इसके अतिरिक्त युवा लोगों को जल्दी की बता देना चाहिए कि उनसे क्या अपेक्षा की जाती है। ऐसा नियमो, व्यवहार के प्रतिमानों, सामाजिक असवीकृतियों आदि के द्वारा किया जा सकता है। स्कूल में छात्रों के निमय बनाने की अपेक्षा करने की प्रथा प्रषंसनीय है, क्योंकि इससे व्यवहार के सामाजिक नियमन की और उनका ध्यान केन्द्रित होता है। फिर घर और स्कूल - दोनां का पर्यावरण ऐसा होना चाहिए कि युवा लोगों को किसी समूह का सदस्य बनने और उस समूह द्वारा स्वीकार किये जाने की उत्सुकता और लालसा बनी रही। अत्यधिक दोष निकालना ठीक नहीं। यदि कभी ऐसी स्थिति उठ खड़ी हो कि सुधार डांट पिलान की जरूरत पड़े तो वह बउे वस्तुगत और अवैयक्तिक ढंग से किया जाना चाहिए, ताकि अनुभव यह हो कि आलोचना का विषय व्यक्ति नहीं, उसका दोष है।

तीसरे, घर और स्कूल दोनों जीवन सुखद और आनन्दमय अनुभवों द्वारा अधिक पूर्ण व समृद्व बनाया चाहिए। जब भी अवसर हो, माता-पिता और अध्यापक अपने संवेगों को उन्मुक्त रूप से व्यक्त करे, खासतौर पर जब वे खुश हो। भारत में छोटे बालक अपने सुखद हर्शमय भावों को बिना संकोच प्रकट करते है पर जैसे ही बालक कुछ हो जाते है ऐसे प्रगटीकरण व प्रदर्शन कम होने जाते है। बालको के किशोरावस्था में प्रवेश करने तक बिलकुल लुप्त हो जाते है। इसमें छोटों और बढ़ो बड़ों के बीच एक दूरी खड़ी हो जाती है, जो परस्पर स्वीकरण और तदीयत्व की भावना के लिए घातक होती है। माता-पिता

और अध्यापक युवा लोगों के साथ ऐसा व्यवहार करते है जेसे वे कोई ही हो, वे बड़ा गंभीर, उपदेशकीय ढंग अपना लेते हैं उनका एक सत्तावादी दृष्टिकोण होता है, जिसे वे अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने और युवा लोगों से कड़ा परिश्रम करवाने के लिए आवश्यक मानते है। युवा लोग इन परिस्थितियों में श्रेष्ठतम प्रयास नहीं कर पाते।

चौथे, युवा लोगों को आत्म सम्मान की भावना विकसित करने और अपने आपको महत्वपूर्ण मानने में उसकी सहायता करनी चाहिए। उनका आत्म प्रत्यय अधिकतया वहीं प्रतिबिम्बल करता है , जो दूसरे उनके विषय में सोचते, महसूस करते और कहते है। व्यक्ति का निर्माण आसपास के महत्वपूर्ण लोगों की अनुक्रियाओं से ही बनता है। हम अपने आपको वैसा ही देखते है, जैसा कि हमें दूसरे देखते है। इसलिए युवा लोगों के प्रति अध्यापको और माता-पिताओं का व्यवहार सम्मान और नम्रतापूर्ण होना चाहिए। और निस्संकोच भाव से युवा लोगों को उनका अधिकार दे। पांचवे, युवा लोगों को सहायता और प्रोत्साहन देना चाहिए कि वे मित्र बनाये, लोगों को पसन्द करे और पति सद्भाव रखे। मित्र उन्हे सौहार्द और घनिष्टता देगे, वे उन्हे उदार और कृपालु, विचारवान् और दूसरों की सुविधा पर ध्यान देने वाले, सुखी और खुशदिक बनायेंगें। दूसरो का भला सोचते, उन्हें पसन्द करने, उसके प्रति सद्भाव रखने और उनके सामान्य अभिरूचियों रखने से समायोजनों में सुधार होता है और यदि रूचियाँ अनेक और बहुपक्षीय हो तो बातचीत और सामाजिक सम्पर्क विविध और अनेक प्रकार के होगें और मित्रों का वर्ग बड़ा होता जायेगा।

अन्त में, युवा लोगों में आत्म ज्ञान, आत्म बोध और आत्म स्वीकरण के विकास को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। उन्हे मालूम होना चाहिए कि किन कार्मो की क्षमता उनमें है और कोन से उनकी पहुंच के बाहर है। उनकी सामथ्र्य और परिसीमाओं, उनके सबल गुणों और निर्बलताओं का अवबोध उन्हे यथार्थवादी लक्ष्य अपनाने में सहायता देगा और वे बड़ी काय हाथ में लेंगे, जो वे सिद्ध कर सकते हैऔर इस प्रकार वे अति उच्च लक्ष्यों और उनकी प्राप्ति में विफलता से उत्पन्न दु:ख और कुण्ठा से बचत सकेगें।

ऐसे सुझावों की संख्या बढ़ाना कठिन नहीं, पर माता-पिता और अध्यापक इस आधार पर यह स्वयं भी कर सकते है।

अत: माता - पिता और विद्यालय में सही निर्देशन के माध्यम से व्यक्तित्व का निर्माण व विकास सही दिशा में हो सकता है। परामर्श का व्यक्तित्व का सीखाने में योगदान स्पष्ट है।

## 2.7 सारांश

शिक्षा जगत में व्यक्तित्व शब्द अपना विशेशष महत्व रखता है। शिक्षा अपने सम्पूर्ण रूप में बालक के व्यक्तित्व सर्वागण विकास से अपना प्रयोजन रखती है। अत: भावी अध्यापकों को व्यक्तित्व के अर्थ, प्रकृति एवं विकास से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। व्यक्तित्व शब्द की उत्पति अंग्रेजी भाषा के शब्द पर्सनल्टी का हिन्दी रूपान्तर है। पर्सनल्टी शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के शब्द परसोना से हुई जिसका अर्थ होता है मुखौटा या आवरण।

व्यक्तित्व एक गतिशील संगठन है जो वातावरण के साथ अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है व्यक्तित्व के विकास में बाह्य एवं आन्तरिक निर्धारकों का बहुत प्रभाव पड़ता है। बालक वंशानुक्रम एवं वातावरण मनोवैज्ञानिक निर्धारण, एवं सामाजिक व सांस्कृतिक निर्धारकों का भी व्यक्तित्व विकास में एक अभूतपूर्व योगदान है। मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास में विभिन्न प्रकार की ग्रंथियों एवं गुणों का वर्णन किया है।

जिसके समुचित स्राव से एक सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

## 2.8 बोध प्रश्न

1 व्यक्तित्व की परिभाषा बताइए। आपके अनुसार व्यक्तित्व की कौन कौन सी परिभाषा सबसे अधिक उपयुक्त है।

2 व्यक्तित्व के निर्माण में शिक्षक की भूमिका है?

3 व्यक्तित्व निर्माण में परामर्शदाता क्या योगदान है?

# इकाई - 3

# अधिगम

**इकाई की रूपरेखा**


3.0 उद्देश्य एवं लक्ष्य

3.1 अधिगम का अर्थ, प्रत्यय व स्वरूप

3.2 अधिगम की विशेषताएँ

3.3 अधिगम की प्रक्रिया

3.4 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

3.5 अधिगम के प्रकार

3.6 निर्देशन में अधिगम की उपयोगिता

3.7 सांराश

3.8 स्वमूल्याकंन

3.9 संदर्भग्रन्थ


## 3.0 उद्देश्य

व्यक्ति का विकास अधिगम पर आधारित है। बालक जैसे जैसे बड़ा होता है उसके आसपास के वातावरण द्वारा अधिगम में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह होना प्रारम्भ हो जाता है। अधिगम मानव के मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार में अनुभवों द्वारा संशोधन है ताकि बालक का व्यवहार व उसकी क्रियांए समाज सम्मत हो सके। अत: इस इकाई की समाप्ति पर आप निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकेगें।

- अधिगम का अर्थ, प्रत्यय व स्वरूप को समझ सकेगें
- अधिगम की विशेषताओं को जान सकेगें
- अधिगम की प्रक्रिया को समझ कर व्याख्या कर सकेगें।
- अधिगम को प्रभावित करने वाले तत्वो को समझ सकेगें।
- अधिगम के प्रकारों की व्याख्या कर सकेगें।
- अधिगम का महत्व समझ निर्देशन में इसकी उपयोगिता बता सकेगें।

## 3.1 अधिगम का अर्थ, प्रत्यय व स्वरूप

मानव व्यवहार को नियामित करने में अधिगम एक आधारभूत प्रक्रिया है। अधिगम मानव व्यवहार के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है। व्यक्ति की आदतें, रूचियाँ, विश्वास तथा रीति-रिवाज सभी अधिगम से प्रभावित रहते हैं भाषा, अभिवृत्ति व संवेगातमक प्रतिक्रियायें सभी सीखी जाती है। प्रदत्त ज्ञान अथवा वातावरण से प्रतिक्रिया करके व्यक्ति अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है। इन अनुभवों के द्वारा उसके विचारों, संर्वगो, कार्यो आदि में किसी न किसी प्रकार का परिवर्तन अवश्य होता है, यह परिवर्तन ही व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया को अविरल गति से संचालित करता हैं व्यक्ति के विकास को दिशा एवं गति देने वाले में परिवर्तन अधिगम की प्रक्रिया, अगिधम की क्षमता और अधिगम की व्यवस्था पर आधारित होते है, इसलिए अन्य शब्दों में अधिगम को व्यवहार परिवर्तन भी कहा जाता है। कुछ न कुछ नवीन की उपलब्धि ही परिवर्तन है और व्यक्ति में यह परिवर्तन ही अधिगम है।

**सीखने की प्रक्रिया की दो मुख्य विशेषताएँ है :-**

**(अ) निरन्तरता** **(ब) सार्वभौमिकता**

यह प्रक्रिया सदैव ओर सर्वत्र चलती रहती है। यह कभी धीमे तो पड़ सकती है, परन्तु बन्द कभी नही होती अर्थात् व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक हमेशा सीखता ही रहता है।

**अधिगम की परिभाषायें (Definitions of Learning)**

**'गेट्स व अय के अनुसार**, ''अनुभव द्वारा व्यवहार में रूपान्तर लाना ही सीखना है।''

"Learning is modification of behaviour through experience Gates & Others."

**हिलगार्ड तथा बोवर**, ''अधिगम का आशय परिस्थिति में बार-बार होने वाले अनुभव के आधार पर व्यक्ति में होने वाले स्थायी परिवर्तन से है, किन्तु यह व्यवहार परिवर्तन उसके मूल प्रवृत्ति परिपक्वता या अस्थायी स्थिति (थकान, दवा) के कारण न हो।''

Learning refers to the change in a subjects behaviour to a given situation brought about by his repeated experiences in that situations, provided that the behaviour change can not be explained on the basis of native response tendencies, maturation or temporary states of the subject eg. fatigue, drugs etc.

Hillgard and Bower, 1975

यह परिभाषा अधिगम को प्राणी तथा वातावरण के मध्य होने वाली प्रतिक्रिया के फलस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन तक ही सीमित करती है, यदि अनुभव से हटकर किसी अन्य कारक के फलस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन होता है तो इसे अधिगम नही कहेगें।

मनोविज्ञान मे सीखने से अभिप्राय केवल उन्ही परिवर्तनो से होता है जो अभ्यास या अनुभव के फलस्वरूप होते है। प्राय: इस तरह के परिवर्तनों का उद्देश्य व्यक्ति को किसी भी प्रकार के वातावरण में समायोजन करने में सहायता प्रदान करने से होता है।

**पील महोदय के अनुसार,** ''सीखना व्यक्ति में एक परिवर्तन है जो उसके वातावरण के परिवर्तनों के अनुसरण से होता है।''

Learning is a change in the individual following upon changes in his environment."

E.A.Peel

उनके अनुसार प्रत्येक वातावरण में परिवर्तन सीखना नही है यदि एक व्यक्ति मोटर दुर्घटना से संज्ञाहीन हो जाता हैं तो यह सीखना नहीं है। पील महोदय सीखने की प्रक्रिया का संक्षेपीकरण निम्न प्रकार से करते है।

- सीखना सहज क्रियात्मक नही हैं इससे तात्पर्य है कि पलक का झपकना या टखने पर चोट लगने पर उसे पीछे हटाना सीखना नही है। ये क्रियाएँ शारीरिक क्रियाएँ है जो व्यक्ति स्वाभाविक रूप से करता है।
- सीखना चेतन उद्देश्य से हो सकता है अथवा वह सामाजिक और जैविक अनुकूलन के लिए हो सकता है।
- सीखने के द्वारा व्यक्ति में स्थायी तथा अस्थायी परिवर्तन आते है।
- यह अनुकूलित हो सकता है। अर्थात् यह कि समाज स्वीकृत व्यक्ति बना सकता है। अथवा प्रतिकूलित हो सकता है जो असामाजिक व्यवहार को जन्म दे सकता है।

**स्किनर के अनुसार,** ''प्रगतिशील व्यवहार व्यवस्थापन की प्रक्रिया को सीखनो कहते है।''

"Learning is a process of progressive behaviour adapation" - Skinner

**क्रो एवं क्रो,** ''सीखना आदतों, ज्ञान व अभिवृत्तियों का अर्जन है।''

"Learning is the acquisition of habits knowledge and attitudes."

- Crow and Crow

**किंग्सले एवं गैरी**, ''अभ्यास एवं प्रशिक्षण के फलस्वरूप नवीन ढंग से व्यवहार (अपने विस्तृत अर्थ में) करने अथवा व्यवहार में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया को सीखना कहते है।''

"Learning is the process by which behaviour (In the broader sense) is originated or changed through practice or training."

-Kingsley. H.L. and Earry R.

अधिगम की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर अधिगम प्रक्रिया को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

1. सीखने या अधिगम की क्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन होता है।
2. अधिगम द्वरा व्यक्ति के व्यवहार में आये परिवर्तन स्थायी व अस्थायी दोनों प्रकार के होते है।
3. व्यवहार में यह परिवर्तन पूर्व अनुभवों पर आधारित होते है। सीखने की प्रक्रिया में दो तत्व निहित होते है- पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता व परिपक्वता, बालक परिपक्वता की ओर बढ़ता हुआ, अपने अनुभवों से लाभ उठाता हुआ वातावरण के प्रति जो उपयुक्त प्रतिक्रियाएँ करता है वही अधिगम है। अधिगम चेतन का अचेतन रूप मे जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। अधिगम की क्रिया पर परिपक्वता का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। परिपक्वता का सम्बन्ध शारीरिक क्षमता के विकास से है। शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक योग्यता का विकास भी होता जाता है। इस विकास के फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में भी परिवर्तन होता है।

व्यवहार में परिवर्तन परिपक्वता व सीखने के कारण होता है। परिपक्वता के कारण सीखने की व समायोजन करने की क्षमता बढ़ती है। परिपक्वता का अर्थ है कि विकास की एक निश्चित अवस्था में बच्चे कार्य करने के योग्य हो जाते हैं जिन्हें वे इससे पूर्व करने में समर्थ नही होते परिपक्वता व अधिगम की क्रिया में घनिष्ठ सम्बन्ध है। अधिगम की क्रिया केन्द्रीय स्नायुमण्डल ज्ञानेन्द्रियों आदि की सहायता से पूर्ण होती है। जैसे-जैसे बालक का शरीर परिपक्वता की ओर बढ़ता जाता है। वह अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने लगता है और उसके व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है।

**हरगेनहान (Hergenhan 1988) ने किम्बल (Kimble)** द्वारा दी गयी परिभाषा में संशोधन करके सीखने की परिभाषा निम्नांकित ढंग से प्रस्तुत की है- ''सीखना व्यवहार या व्यवहारात्मक अन्तःशक्ति में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन है जो अनुभूति के कारण होता है जैसे अस्थायी शारीरिक अवस्थाओं, जैसे वे अवस्थायें जो बीमारी, थकान या औषधि लेने आदि से उत्पन्न होते है, के रूप में आरोपित नही किया जा सकता है।

"Learning is a relatively permanent change in behaviour or in behaviour or in behavioural potentiality that results from experience and can not be attributed to temporary body states such as those induced by illness, fatigue or drugs."

- Hergenhan

उपर्युक्त परिभाषाओं का यदि हम सयुंक्त रूप से विश्लेषण करे तो सीखने का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है और अधिगम की कई विशेषतायें दृष्टिगोचर होती है।

## अधिगम की विशेषताएँ (Characteristics of Learning)

1. अधिगम व्यवहार में परिवर्तन है (Learning is the change in behaviour) : जब हम कुछ सीखते है तो उससे हमारे व्यवहार में परिवर्तन होता है। व्यक्ति अपने तथा दूसरों के अनुभवों के आधार पर अपने व्यवहारों, विचारों, इच्छाओं एवं भावनाओं आदि में परिवर्तन करता है।

2. अधिगम विकास है (Learning is Development) : व्यक्ति हर समय जिन क्रियाओं और पदार्थो के सम्पर्क मे आता है उनसे कुछ न कुछ अनुभवो को प्राप्त करता है और सीखता है परिणामस्वरूप उसमें शारीरिक व मानसिक विकास होता है। इस प्रकार अधिगम ही विकास की आधारशिला है।

3. अधिगम प्रक्रिया सम्पूर्ण जीवन चलती है (Learning is a continuous process) : अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है। बालक जन्म लेते ही अपने परिवार के सदस्यों से सीखना प्रारम्भ करता है और जीवन भर सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं समवयस्क साथियों से कुछ न कुछ सीखता ही रहता है ओर यह सीखने की प्रक्रिया मृत्युपर्यन्त चलती रहती है।

4. अधिगम अनुभवों का संगठन है (Learning is the organization of experiences) : अधिगम नवीन तथा पुराने अनुभवों का संगठन है। जैसे-जैसे व्यक्ति को नवीन अनुभवों की प्राप्ति होती जाती है उनको वह अपने पुरने अनुभवों के साथ संगठित करता जाता है।

5. अधिगम सार्वभौमिक है (Learning is Universal) : अधिगम प्रक्रिया सार्वभौमिक है। सीखने का गुण केवल किसी विशिष्ट स्थान या विशिष्ट मनुष्यों में ही नही पाया जाता है वरन् विश्व के समस्त जीवों मे सीखने का गुण विद्यमान है।

6. अधिगम उद्देश्यपूर्ण है (Learning is Purposive) :- अधिगम सदैव उद्देश्यपूर्ण होता है व्यक्ति किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर ही कार्य को सीखता है। उद्देश्य जितना ही प्रबल होता है सीखने की प्रक्रिया भी उतनी तीव्र होती हैं उद्देश्य के अभाव में अधिगम प्रक्रिया निष्फल होती है।

7. अधिगम विवेकपूर्ण है (Learning is Rational) :- किसी कार्य को विवेकपूर्ण ढंग से करना ही अधिगम है।

8. अधिगम वातावरण की उपज है (Learning is a Product of Environment) : बालक सदैव वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया स्वरूप सीखता है। बालक जिस प्रकार के वातावरण में रहता है उसकी अधिगम प्रक्रिया पर उस वातावरण का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। यही कारण है कि सीखने के लिए उपयुक्त परिस्थितिया, साधन एवं प्रभावशाली वातावरण का होना आवश्यक है।

9. अधिगम सक्रिय है (Learning is Active) : अधिगम प्रक्रिया में बालक का सक्रिय होना अत्यन्त आवश्यक है। बालक उसी स्थिति में कुछ सीख सकता है जब वह सक्रिय होकर सीखने की प्रक्रिया में स्वयं भाग लेता है। आधुनिक युग में करने सीखने की प्रक्रिया पर भी बल दिया जा रहा है।

10. अधिगम खोज करना है (Learning is Discovery) : किसी कार्य को सोच समझकर करना और एक निश्चित परिणाम पर पहुंचना ही सीखना है व्यक्ति में जितनी अधिक क्षमता खोज करने की होती है उतनी ही तीव्रता से वह नई-नई बातें सीखता है।

11. अधिगम अनुकूलन है (Learning is Adjustment) : जन्म से ही बालक किस न किसी रूप में अपने वातावरण से अभियोजन करना प्रारम्भ कर देता है। अभियोजन के लिए उसे अनेक नवीन व्यवहारों क्रियाओं, भाषा रहन सहन, रीति-रिवाज आदि को सीखना पड़ता है।

12. अधिगम व्यक्तिगत व सामाजिक दोनो हैं (Learning is both Individual and Social) : अधिगम क्रिया व्यक्तिगत व सामाजिक दोनो प्रकार से ही सम्भव है। बालक प्राय: प्रयत्न करके स्वयं सीखने का प्रयास करता हैं और बहुत सी क्रियाओं को दूसरों का अनुकरण करके सीखता हैं वह सामाजिक सम्पर्क, बात-चीत की कला, दूसरो के साथ समुचित व्यवहार करने का ढंग एवं परम्पराओं व आदर्श मूल्यों को अपनाने की पद्धति समाज में रहकर ही सीखता है।

## 3.3 अधिगम की प्रक्रिया

अधिगम की प्रक्रिया में कोई अनुप्रेरण (Motive) या अन्तनींद (Drive) एक आकर्षित करने वाला लक्ष्य अथवा लक्ष्य को प्राप्त करने में रूकावट शामिल रहते है। उदाहरण के लिए जैसे एक बालक भूखा हैं भूख यहाँ अन्तनींद हैं वह अलमारी के पास जाता है जिसमे उसकी माता ने मिठाई रखी हैं वह उसे खोलने की चेष्टा करता है,किन्तु चटखनी ऊँचाई पर लगी होती है और वह उस तक पहुँच नही पाता। उसे एक स्टूल दिखाई देता है जिसे वह लेता है और चढ़कर चटखनी खोलता है ओर मिठाई निकाल लेता है। इस उदाहरण में मिठाई प्राप्त करने का लक्ष्य स्पष्ट हैं अब यदि वह प्रारम्भ में ही बिना कठिनाई के अलामारी खोलने में सफल हो जाता है तो उसकी क्रिया वही समाप्त हो जाती हैं और कोई नवीन सीखना नही होता है, किन्तु एक रूकावट है। चटखनी ऊँची है। यह रूकावट उसमें तनाव उत्पन्न कर देती हैं वह बैचेनी महसूस करता है और एक हल खोज करता है। यह हल उसे स्टूल पर चढ़कर चटकनी खोलने के रूप में मिल जाता है। अत एवं उसका सीखना हो गया। इस अनुभव से उसने दो प्रकार से सीखा : (1) उसने प्रस्तुत समस्या को हल करना सीखा, तथा (2) उसने एक विधी सीखली जिसका प्रयोग वह भविष्य में ऐसी समस्याओं को सुलझाने में कर सकेगा।

### 3.3.1 अधिगम की प्रक्रिया का विश्लेषण :

अधिगम की प्रक्रिया का विश्लेषण करने से विभिन्न बिन्दु उभरते है।

- व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए प्रक्रिया करता है।
- प्रक्रिया करने से नई परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है।
- इस नई परिस्थिति के प्रति समायोजन करने के लिए फिर स्वाभाविक प्रक्रिया शुरू होती है।
- कभी-कभी इस समायोजन मे व्यक्ति को असफलता भी मिलती है।
- इस असफलता को सफलता में बदलने के लिए व्यक्ति नवीन मार्गो को अन्वेषित करता है।
- इस अन्वेषण के फलस्वरूप व्यक्ति के स्वाभाविक एवं अतीतकालीन अनुभूतियों एवं व्यवहार में उन्नतिशील परिवर्तन तथा परिमार्जन होता है।

- जब इस समायोजन मे सफलता मिलती है तो व्यक्ति बार-बार प्रयास करता है।
- इस बार-बार के प्रयास से परिमार्जित अनुभवों एवं व्यवहार में स्थायित्व आ जाता हैं इसी स्थायित्व को अधिगम कहा जा सकता है।
- अधिगम प्रक्रिया के आधार पर व्यक्ति की वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता में अभिवृद्धि होती है।

अत: यह स्पष्ट है कि अधिगम नवीन ज्ञान व नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया हैं सीखने में प्रत्यक्षीकरण (Perception) गामक क्रियाएँ (Psycho-Motor Activities) तथा वैचारिक ग्रहण शक्ति (Acquisition of Ideas) पसन्द-नापसन्द (Likes and Dislikes) जीवन व्यतीत करने का ढंग (Life style) ओर इच्छा शक्ति (Will Power) आदि सम्मिलित है। इन प्रक्रियाओं के द्वारा व्यक्ति अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अभ्यास के द्वारा व्यवहार में परिवर्तन एवं संशोधन करता है।

## 3.4 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

अधिगम एक व्यापक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक के व्यवहार और दृष्टिकोण दोनो में ही परिमार्जन होता है। अधिगम की सफलता अनेक सामूहिक कारकों पर निर्भर करती है। इनमें सम्भवत: अभिप्रेरणा का महत्व सर्वाधिक है।

**मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)** :

मनोवैज्ञानिक कारकों के अभाव मे सीखना सम्भव नही है। इनके अभाव में सीखना प्रारम्भ भी नही हो सकता है। मनोवैज्ञानिक कारक के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की प्रेरणाएं कार्य करती है जिनमे पुरस्कार एवं दण्ड, फल का ज्ञान तथा स्पर्धा, सम्मान भी महत्वपूर्ण है। ये निम्न प्रकार है।

**(अ) अभिप्रेरणा (Motivation) :** अधिगम का प्रभावक कारक अभिप्रेरणा है। अभिप्रेरणा विभिन्न प्रेरकों की प्रक्रिया है। यह प्रेरक व्यक्ति की आवश्यकताओं से उत्पन्न होती है। आवश्यकताए दो प्रकार की होती है। पहले प्रकार की आवश्यकताऐं शारीरिक आवश्यकताऐं कहलाती है। जैसे :- भूख, प्यास, नींद तथा दूसरे प्रकार की आवश्यकता सामाजिक तथा मानसिक होती है जैसे सम्मान प्राप्ति, सामाजिक स्वीकृति स्नेह प्राप्ति आदि। व्यक्ति जब आवश्यकता अनुभव करने की स्थिति में होता है। तो उसमें एक प्रकार की अतिरिक्त शक्ति आ जाती है जो उसे आवश्यकता पूर्ति हेतु लक्ष्य की ओर ले जाती है और इसी शक्ति से अवधान क्रिया की पूर्ति मे सहायता मिलती है।

**(ब) पुरस्कार (Reward)** : पुरस्कार भी सीखने को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक कारकों मे से एक है। पुरस्कार तथा अभिप्रेरणा के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। पुरस्कार को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा सीखता हैं मनोवैज्ञानिक ने प्रयोगो के आधार पर यह सिद्ध किया है कि आवश्यकता और उसकी सन्तुष्टि पुरस्कार के रूप में कार्य करती है तथा सीखने को प्रभावित करती है।

**(स) दण्ड (Punishment)** : सीखने के क्षेत्र मे दण्ड का प्रभाव भी होता हैं क्योंकि दण्ड़ देने से त्रुटियाँ शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

**(द) फल का ज्ञान (Knowledge of Results)** : फल का ज्ञान भी सीखने की क्रिया को प्रभावित करता है। सीखने वाले को जब कुछ प्राप्त होने का ज्ञान होता है तो उसकी क्रिया मे तीव्र गति से वृद्धि होती है।

## शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य (Physical and Mental Health)

अधिगम की क्रिया मे शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य भी प्रधान होते है, सीखने वाले की शरीरिक दशाएँ अपना पूर्ण प्रभाव डालती है। दोषपूर्ण इन्द्रियों का स्वरूप ग्रन्थियों की निष्क्रियता, आयु, थकान तथा नशीली वस्तुओं का सेवन आदि शारीरिक तत्वो को प्रभावित करते है जिससे सीखने की क्रिया प्रभावित होती है। शारीरिक अंगो की पूर्णता, सीखने वाले शारीरिक तथा मानसिक क्षमता एवं शारीरिक रूप से निरोगी होना आदि तत्व भी सीखने की क्रिया मे महत्वपूर्ण स्थान रखते है।

ध्यान व अधिगम Attention and Learning ध्यान एक मानसिक प्रक्रिया है। चेतना को किसी वस्तु या विचार मे केन्द्रित करना ही ध्यान कहलाता है। वातावरण में बालक के चारो और विभिन्न उत्ेजक होते है। जैसे-मेज, कुर्सी, शिक्षक, सहपाठी आदि। इन उत्तेजनाओं में किसी एक को चुनकर उस पर चेतना को केन्द्रित करना ही ध्यान है। इस प्रकार ध्यान चयनात्मक व प्रेरणात्मक हैं। अत: ध्यान वह प्रेरणात्मक व चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम किसी उत्तेजना को चुनकर उसे अपने चेतना केन्द्र में लाते है।

अधिगम प्रक्रिया में ध्यान का होना अति आवश्यक है। ध्यान के स्थिर होने से दुर्बल उ ीपन होने पर ही उसकी अनुभूति व्यक्ति को होगी। ध्यान के विकास मे शारीरिक क्षमता, इच्छा शक्ति तथा पर्यावरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। सभी आयु स्तरों पर समान ध्यान की क्षमता नही पाई जाती। छोटी आयु में ध्यान की क्षमता कम होती है और आयु वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती जाती है। अरूचिकर तथा कठिन कार्यो में छात्रों का ध्यान शीघ्रता से भंग हो जाती है।

## रूचि व अधिगम (Interest and Learning) :

रूचि किसी वस्तु के समबन्ध को जोड़ने वाली मानसिक संरचना है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी वस्तु से अपना सम्बन्ध समझता हैं जो वस्तु बालक को अच्छी लगती है, उसके प्रति उसकी रूचि हो जाती है। रूचि का सम्बन्ध आवश्यकताओं, इच्छाओं आदर्शो तथा विचारो से है। रूचिया आवश्यकताओं की द्योतक नही बल्कि वे आवश्यकताओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। रूचियो के विकास मे आवश्यकताओं के साथ-साथ बालक के सम्मुख प्रस्तुत आदर्श एवं विचार, संस्कृति, समाज मे अनुभव एवं अवसर का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

रूचि का सही प्रयोग करने के लिए कक्षा या जहाँ भी अधिगम की प्रक्रिया हो रही है, पर्यावरण ऐसा होना चाहिए जिसमे बालकों की क्रियाशीलता का पर्याप्त अवसर हो ओर वे समझे कि वे इस स्थिति मे भाग ले रहे है। इस प्रकार रूचि के साथ प्राप्त अधिगम तीव्र गति से होता है।

## सीखने की इच्छा व अधिगम (Will to Learn and Learning)

जब बालक किसी कार्य को सीखने की इच्छा रखकर सीखेगा। तभी वह उसमे सफलता प्राप्त कर सकता है। इस ध्येय से सीखा जाये कि हमें यह सीखना है। जब बालक के अन्दर यह भावना होती है तो वह अधिक तेजी से किसी बात को ग्रहण कर लेता है। यदि बालक अनिच्छा के साथ सीखने का कार्य कर रहा है तो सीखने की गति धीमी होगी।

## अभ्यास व अधिगम (Exercise and Learning)

किसी क्रिया को बार-बार करने को ही अभ्यास कहा जाता है। अभ्यास का सीखने की क्रिया पर काफी प्रभाव पड़ता है। अभ्यास के द्वारा किसी कार्य को बार-बार करने से कार्य करने की गति में क्रमशः प्रगति होती है। प्रत्येक प्रयास के बाद अशुद्धियों की संख्या कम हो जाती है।

## आकांक्षा का स्तर व अधिगम (Levels of Aspiration and Learning)

आकांक्षा का स्तर  उस सीमा का संकेत करता है जहाँ तक कोई व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने की इच्छा रखता है। एक ही प्रकार का उद्देश्य रखने वाले दो व्यक्तियों का आकांक्षा स्तर विभिन्न हो सकता है। उदाहरणार्थ दो छात्र जो डॉक्टर बनना चाहते है दोनो ही एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए लालायित है लेकिन उनमें डॉक्टर बनने की सीमाएॅ अलग अलग हो सकती है। एक ही लालसा यह हो सकती है कि वह उच्चतम शिक्षा ग्रहण करके अच्छे कार्य कर अपना आरमदायक जीवन व्यतीत करे लेकिन दूसरे की लालसा हो सकती है कि वह थोड़ी बहुत मात्रा मे सीखकर अपना दैनिक कार्य चलाने लगे। इस प्रकार दो अध्ययनरत छात्रों की आंकाक्षा स्तर में भिन्नता हो सकती है।

आंकाक्षा स्तर पर अधिगम की तीव्रता या मंद गति निर्भर करती है बालक का आंकाक्षा स्तर ऊँचा है व उसमे क्षमता भी है और उसे अवसर भी प्राप्त होने है तो वह जल्दी सीखेगा व अपनी आकांक्षाओ को पूरा करने में सफल होग।

## बुद्धि व अधिगम (Intelligence and learning)

बुद्धि का अधिगम से सीधा सम्बन्ध है जो व्यक्ति जितना अधिक प्रखर बुद्धि का होगा, उसकी सीखने की क्षमता भी उतनी ही अधिक होगी। अधिक बुद्धिमान व्यक्ति किसी कार्य को शीघ्र ही सीख लेते है क्योंकि विषय वस्तु के तथ्यों एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों को शीघ्र समझ लेते है। फलस्वरूप उन्हे सीखने में आसानी होती है। तीव्र बुद्धि बालक को अभिप्रेरणा की अत्यन्त आवश्यकता होती है। अधिगम प्रक्रिया का बुद्धि एक सबसे महत्वपूर्ण घटक है।

## अभिवृत्ति व अधिगम (Aptitude and Learning)

किसी कार्य के प्रति सीखने वाले की अभिवृत्ति बहुत महत्वपूर्ण होती है। यदि किसी कार्य के प्रति छात्र की नकारात्मक अभिवृत्ति है तो कोई कितना भी परिश्रम करे बालक के सीखने की प्रवृत्ति मे उन्नति होने की सम्भावना नही होती हैं इसके विपरीत यदि अधिगमकर्त्ता की किसी कार्य के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति है तो वह सरलता से उस कार्य को सीख लेता है।

## अभिरूचि व अधिगम (Aptitude and Learning)

अभिरूचि बालक की वह क्षमता है जिसके आधार पर हम उसकी भावी उपलब्धियों के विषय में पूर्वकथन करते है। यह वह शक्ति है जिसके आधार पर बालक का किसी कार्य विशेष की ओर झुकाव होता है, अत: अधिगम हेतु यह एक महत्वपूर्ण कारक हैं किसी कार्य मे सफलता प्राप्त करने हेतु अभिरूचि का होना बहुत जरूरी है। अभिरूचि किसी कार्य को सीखे जाने के लिए बालक पर अनुकूल प्रभाव डालती है।

## परिपक्वता व अधिगम (Maturity and Learning)

अधिगम क्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों में परिपक्वता को भी मुख्य कारक माना गया है। प्रत्येक कार्य को सीखने के लिए बालकों मे शारीरिक व मानसिक परिपक्वता आवश्यक होती है। क्योंकि बालक की शारीरिक व मानसिक परिपक्वता ही अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाती है, अधिगम परिपक्वता यह दोनो एक दूसरे के पूरक है।

## विषय सामग्री का स्वरूप अधिगम (Nature of subject matter and Learning)

सीखने वाली विषय सामग्री का स्वरूप भी सीखने की क्रिया को प्रभावित करता है। यदि विषय सामग्री छात्रों के स्तर से अधिक कठिन होती है तो सीखने की क्रिया कठिन होती हैं सीखने की मात्रा कम व गति धीमी होती है। यदि विषय सामग्री के स्तर की, रूचि की उपयोग की होती है तो बालक उसी बालक कार्य को शीघ्र सीख लेते है। इसी प्रकार अर्थहीन विषय सामग्री की अपेक्षा अर्थयुक्त विषय सामग्री सीखने में कम कइिनाई होती है।

## वातावरण का प्रभाव (Effect of Environment)

वंशानुक्रम से बालक केवल अपने पूर्वजों के गुणो को ही प्राप्त करता है लेकिन उन गुणो का समुचित विकास वातावरण द्वारा ही होता है। यदि वातावरण उचित नही है तो उसके गुणो का विकास भी ठीक प्रकार से नही होगा। वातावरण एक बाह्य शक्ति है जो बालक के विकास के सभी पक्षो को प्रभावित करती हैं वातावरण बालक की जनमजात शक्तियों को निर्देशित तथा प्रोत्साहित करता है। वातावरण ही बालक के व्यवहार का निर्धारिण कर उसमे अधिगम क्षमता का उत्तम विकास करता है।

अत: हम कह सकते है कि सीखने को प्रभावित करने वाले अनेक कारक, परिस्थितियां या तत्व होते है जिनको नियन्त्रित करके ही सीखने की उन्नति की जा सकती है।

**एम.एल.बिग्गे -** ''अधिगम क्षमता में वृद्धि से तात्पर्य ऐसी परिस्थितियो के निर्माण से है जिनमे निश्चित समय मे बालक की क्रियाओं में अधिकतम परिवर्तन हो।''

"Improving the efficiency of Learning means establishing situation in which maximum change of insight or behaviour may occur in a given time."

- Biggie, M.L.

## 3.5 अधिगम के प्रकार

अधिगम की विधियाँ विभिन्न मनोवैज्ञानिको द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों पर आधारित है। इन्ही आधारो पर अधिगम के प्रकारों का निर्धारण किया जाता है। व्यक्ति अपने जीवन में कई प्रकार से सीखता है।

- **निरीक्षणात्मक (Observational)**

निरीक्षण वस्तुत: प्रत्यक्षीकरण ही है, निरीक्षण का तात्पर्य किसी वस्तु पर अवधान को केन्द्रित करना होता है। अवधान के केन्द्रीकरण से प्रत्यक्षीकरण और अधिक समृद्ध होता है। बच्चा अपने आस-पास के वातावरण का निरीक्षण करता है ओर धीरे-धीरे उनसे सीखता है। बालकों को निरीक्षण पद्धत्ति से सिखाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग न करके मूर्त्त वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि बालको का ध्यान मूर्त्त वस्तुओं पर शीघ्र केन्द्रित होता है। अमूर्त्त व सूक्ष्म वस्तुओं पर वह अपना ध्यान केन्द्रित नही कर सकते।

- **अनुकरणात्मक (Imitation)**

अनुकरण में दूसरे व्यक्तियो के द्वारा किये गये कार्यो की पुनरावृत्ति की जाती है, सदैव उन व्यक्तियों के कार्यो का अनुकरण किया जाता है। जो अनुकरणकर्त्ता से अधिक श्रेष्ठ होता है। अनुकरण प्राय: जानबुझकर ओर कभी-कभी अनजाने में भी होता है। हम कई बार बिना जाने ही अज्ञात रूप से दूसरे का अनुकरण करते है। शिक्षा में हम चेतन रूप से प्रयास करके किसी कौशल को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जैसे पढ़ना, लिखना, चित्र बनाना सीखना, बालक बड़ो का अनुकरण कर सीखते हैं यदि बालकों को अच्छे वातावरण में रखा जाये तो वे अच्दी बातों को अनुकरण द्वारा सीख जायेगे। बालक प्रारम्भिक शिक्षा अनुकरण के माध्यम से प्राप्त करता है। जैसे-बोलना, हँसना, चलना खाना-पिना, कपड़े पहनना आदि। संगीत, नृत्य, खेल आदि बालक प्रदर्शन और अनुकरण विधि द्वारा ही सीखता है।

- **प्रयत्न एवं त्रुटि से सीखना (Learning by Trial & Error)**

बहुत से मनोवैज्ञानिक प्रयत्न एवं त्रुटि से सीखने की विधि को 'सफल प्रतिक्रियाओं के चुनाव द्वारा सीखना'' भी कहते है। इस विधि का प्रतिपादन थार्नडाइक महोदय ने किया है। इनका विचार है कि जब प्राणी के सम्मुख कोई नवीन समस्या उत्पन्न होती है तो उस समस्या के समाधान हेतु वह किसी न किसी प्रकार की प्रतिक्रिया करता है आरम्भ से ये प्रतिक्रियायें त्रुटिपूर्ण होती है परन्तु निरन्तर करते रहने पर किसी प्रतिक्रिया में संयोगवंशसफलता मिलने पर फलीभूत प्रयास की पुनरावृत्ति की जाती है। जिसके कारण क्रमश: गलतियाँ दूर होती जाती हैं उदाहरण के लिए, यदि एक बालक कागज की नाव बनाता है उसके इस कार्य के लिए यदि उसकी सराहना की जाती है तो वह इस कार्य की पुनरावृत्ति करेगा उसमे सुधार करेगा। इसके विपरीत यदि उसे दूसरो से प्रोत्साहन नही मिलेगा और न उसकी आलोचना की गई तो वह उस कार्य को छोड़ देगा तथा दूसरे कार्यो के करने मे रूचि लेगा।

प्रयत्न एवं त्रुटि द्वारा सीखने से वह प्रक्रियाये जो सीखने वाले को सफल प्रतीत होती है। ओर उसे उत्तेजना देने वाली होती है, दोहराई जाती है। जो प्रतिक्रियाये असफल होती है और बाधा उपस्थित करने

वाली होती है, छोड़ दी जाती है, जब एक प्रयास व्यक्ति को तुष्टि देता है तब सीखने वाला उन प्रतिक्रियाओं को दोहराना चाहता है।

प्रयत्न एवं त्रुटि से सीखने की विधि व्यर्थ की विधि नही है, वरन् सुधार की विधि है।

### थार्नडाइक का प्रयोग (Experiment by Thorndike)

थार्नडाइक ने अपने सभी प्रयोग पशु-मनोविज्ञान के क्षेत्र में किये है। थार्नडाइक ने एक भूखी बिल्ली को एक पिंजरे में बन्द कर दिया। इस पिजड़े को पहेली पेटी (Puzzle Box) कहा गया है। इस पिंजरे के अन्दर एक बटन था जिसे दबाने से पिजरे का दरवाजा खुलता था। पिजरें के बाहर खाना रखा था। भूखी बिल्ली पंजा मार कर बाहर निकलने के लिए उछलने कूदने और छटपटाने लगी। इस उछल कूद मे अचानक किसी प्रकार उसका पंजा बटन पर पड़ गया और दरवाजा खुल गया। बिलली बाहर निकल आई और बाहर रखा अपना भोजन प्राप्त किया। इसी प्रकार बिल्ली को भूखा रखकर अनेक प्रयास किये गये। प्रायोगिक अध्ययन के दौरान पाया गया कि जैसे-जैसे प्रयासों की संख्या बढ़ती गई उसकी व्यर्थ की क्रियाओं में कमी आती गई। धीरे धीरे करके देखा गया कि बिल्ली को जैसे ही पिजड़े में बन्द किया जाता है, वह लीवर दबाकर बाहर आ जाती है और भोजन प्राप्त करती है बिल्ली ने प्रयत्न एवं भूल विधि के आधार पर सीखा।

इसी तरह व्यक्ति भी प्रयत्न ओर भूल द्वारा सीखता है यह विधि विद्यार्थियों को बहुत सहायता पहुंचाती है। निरन्तर परिश्रम व प्रयत्न करने से आत्म-विश्वास, धैर्य और परिश्रम के गुणो का विकास होता है। इस विधि द्वारा सीखा हुआ अधिगम स्थायी होता है।

### सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना (Conditioning)

**पावलव व वॉटसन** आदि मनोवैज्ञानिक के अनुसार स्वाभाविक उत्तेजना का अस्वाभाविक उत्तेजना से सम्बन्ध स्थापित हो जाने और अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक उत्तेजना की तरह प्रतिक्रिया करने के परिणामस्वरूप प्राणी के व्यवहार मे होने वाले परिवर्तन तथा परिमार्जन को सम्बन्धप्रत्यावर्तन द्वारा सीखना कहते है।

पावलव ने अपने प्रयोग मे एक भूखे कुत्ते को सर्वप्रथम घन्टी बजाने (अस्वाभाविक उत्तेजना) के बाद शीघ्र ही भोजन (स्वाभाविक उत्तेजना) दिया। फलस्वरूप कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगी। यह कार्य प्रणाली कई बार दोहरायी गयी। धीरे-धीरे घन्टी की आवाज सुनते ही कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगी। इसे सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना कहते है।

यह विधि पशुओं व बच्चों के सीखने की व्याख्या करती हैं इस विधि द्वारा बच्चों मे अच्छी आदतों का निर्माण किया जा सकता है। जैसे बड़ो के प्रति आदर, सफाई की आदत आदि।

अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया है। सभी अधिगम सामाजिक वातावरण में होता है। सम्बन्ध प्रत्यावर्तन इस सिद्धान्त का प्रयोग करके कुसमायोजित बच्चों मे बुरी आदतों को समाप्त करके अच्छी आदतों का पुनर्निर्माण कर सकते है।

## अनुकूलित अनुक्रिया (Conditioned Response)

धीरे-धीरे स्वभाव बन जाती हैं स्वभाव का मानव जीवन में विशेष महत्व हैं इस अनुक्रिया से समय की बचत होती है, तथा कार्य मे स्पष्टता आती है।

## अन्तदृष्टि अथवा सूझ से सीखना (Learning by Insight)

निरीक्षण की अन्तिम क्रिया सूझ समझी जाती है। निरीक्षण का अर्थ किसी वस्तु विशेष पर अवधान को पूर्णरूपेण केन्द्रित करके उसके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना है। जबकि सूझ का अभिप्राय यह है कि निरीक्षण क्रिया का अन्त सफलतापूर्वक हो गया और वस्तु सम्बन्धी उपयुक्त जानकारी प्राप्त हो गई। वह मानसिक संगठन जिसके द्वारा एक समस्या सहंसा अपने सब सम्बन्धी के साथ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगती हैं। सूझ कहलाती हैं वस्तुत: सूझ अवधान के केन्द्रियकरण की आगे की स्थिति है जिस पर सम्पूर्ण सफलता निर्भर होती है।

सूझ द्वारा सीखना उच्च कोटि का अधिगम है। यह वह मानसिक प्रयास है जिसमे बुद्धि व कल्पना का प्रयोग होता हैं इसमे व्यक्ति उच्च बौद्धिक स्तर पर स्थिति का अवलोकन करके समस्या को पूर्ण रूप से समझकर प्रतिक्रिया करता हैं ओर सीखता है। इस विधि में मस्तिष्क के प्रयोग या बौद्धिक कुशलता पर अधिक बल दियाजात है। यह विधि प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर है। इसमे समस्या का हल आकस्मिक रूप से प्राप्त होता है। इसमें अभ्यास के अभाव में भी समस्यायें सुलझ जाती हैं इस विधि में अचेतन मस्तिष्क अधिक सक्रिय रहता है। चेतन क्रियाये अपेक्षाकृत कम होती है।

**कोहलर द्वारा किये गये प्रयोग (Experiment by Kohler)** :- अन्तदृष्टि की पुष्टि करने के लिए कोहलर ने सुल्तान नामक चिम्पांजी पर प्रयोग किये।

**कोहलर** ने सुल्तान को पिजड़े मे बंद किया पिजड़े के पास दो छड़ियों को रख दिया जो आपस में जोड़े जा सकते हैं पिंजड़े को बाहर कुछ केले रख दिये गये। सुल्तान भूख था इसलिए उसने पिंजड़े के बाहर हाथ फैलाकर केले को पाना चाहा किन्तु केला बहुत दूर था इसलिये उसका हाथ वहाँ तक नहीं पहुँचा। इससे पहले उसे एक छड़ी से खींचकर प्राप्त करना सिखाया गया था। एक छड़ी द्वारा भी उसने खींचने का प्रयास किया पर वह सफल नही हुआ। अनेक प्रयत्नों के पश्चात् उसने खेलते खेलते छड़ियो को जोड़ दिया और उसने लमबी छड़ी से केला खींच लिया। सुल्तान को यह सूझ अचानक मिली। सूझ मिलने से पहले सुल्तान ने केले की दूरी, छड़ी की लम्बाई आदि से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया और सूझ द्वारा सम्बन्ध का समाधान करके लक्ष्य की प्राप्ति की।

सीखने की सभी क्रियाओं मे सूझ की आवश्यकता पड़ती है। सूझ व्यक्ति को उस समय सहायता देती है। जब गन्तव्य तक पहुँचने में विविध बाधायें आती है। सूझ द्वारा व्यक्ति अचानक समस्याके समाधान तक पहुँच जाता हैं अन्तदृष्टि द्वारा सीखने की कई विशेषताएँ है।

- अन्तदृष्टि द्वारा बालकों की कल्पना, तर्क विचार शक्ति के विकास में अवसर प्रदान होते है।
- अन्तदृष्टि से बालको को रचनात्मक कार्यो मे सहायता मिलती है।

- शिक्षा के उच्च स्तर पर सूझ विधि ही (अनुसन्धान कार्य आदि में) उपयोगी व आवश्यक होती है।
- यह विधि अनुभवों के संगठन एवं पूर्णता पर बल देता हैं इसलिए बालकों के अनुभवों पुर्नसंगठित करने पर बल देना चाहिए।

## 3.6 निर्देशन में अधिगम की उपयोगिता

सीखना चाहे साहचर्य अथवा सूझ द्वारा हो, प्रत्येक स्थिति में व्यक्ति प्राय: अन्य से निर्देशित होता है। निर्देशन एवं परामर्श देते समय शिक्षक द्वारा यदि अधिगम का नियम, अधिगम का प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारक है इनको समझकर शिक्षण व्यवस्था या परामर्श दिया जाये तो अधिगम आसान एवं शिक्षण प्रणाली प्रभावी हो सकती है।

स्पष्ट है कि ''अधिगम व्यक्ति के वातावरण मे विचरण के फलस्वरूप विभिन्न परिस्थितियों के प्रति अनुक्रिया करने से प्राप्त अनुभवों के आधार पर व्यवहार में होने वाला परिवर्तन है। निर्देशन एवं शिक्षा के क्षेत्र में अधिगम का महत्व इसके अर्थ से ही सामने आ जाता है। जैसी परिस्थितियों का निर्माण करके शिक्षार्थियों को विचरण हेतु दे सकेंगे। वैसे ही अनुभव शिक्षार्थो ग्रहण करेंगे और उन्ही के अनुरूप शिक्षार्थियों के व्यवहार मे परिवर्तन होगा। अधिगम के द्वारा शिक्षार्थी अपने पूर्व अनुभवों द्वारा वर्तमान मे आने वाली समस्याओं से जूझ कर वातावरण में समायोजित होने का प्रयास करता हैं इन समायोजन के प्रयास में नवीन अनुभवों का संचार होता हैं सीखना वास्तविक रूप से यही हैं कि अधिगमकर्ता भावी जीवन की समस्याओं का सामना करते हुए वातावरण से समायोजन कर सके।

## 3.7 सारांश

अधिगम का अर्थ हे सीखना अथवा व्यवहार पविर्तन। व्यवहार परिवर्तन अनुभव एवं प्रशिक्षण के द्वारा होता है। अधिगम मानव की एक प्रकृत्ति हैं अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों में शारीरिक तथा मानसिक सम्बन्ध, अभिप्रेरण, परिपक्वता कार्य का समय व थकान, इच्छा शक्ति, रूचि, अभ्यास, उचित वातावरण आदि का विशेष प्रभाव पड़ता हैं मनुष्य जीवन पर्यन्त कुछ न कुछ औपचारिक या अनौपचारिक ढंग से सीखता है, परन्तु मुख्यत: व्यक्ति निरीक्षण, अनुकरण, प्रयत्न व त्रुटि, सम्बन्ध प्रत्यावर्तन, सूझ आदि क्रियाओं से अधिगम को सुदृढ़ करता हैं शिक्षक मार्गदर्शन कर अपने विद्यार्थियों को प्रेरित, प्रोत्साहित तथा उत्तेजित करता हैं जिससे सीखने के अनुभवों को सरलता पूर्वक प्राप्त किया जा सके।

## 3.8 बोध प्रश्न

1. अधिगम व्यवहार मे परिवर्तन है ? समझाइये।
2. अधिगम के प्रकार को समझाइये ?
3. अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों को समझाइये ?

4. सूझ द्वारा सीखने में और प्रयत्न और भूल द्वारा सीखने में क्या अन्तर है ?

5. अधिगम प्रक्रिया को समझाईये ?

## 3.9 संदर्भ ग्रन्थ


1. गणपतराय शर्मा एवं हरिशचन्द्र व्यास : अधिगम शिक्षण और विकास मे मनोसामाजिक आधार, राज. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर (2006)
2. माथुर एस.एस.: शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (1981)
3. भटनागर सुरेश : शिक्षा मनोविज्ञान, लायल बुक डिपो, मेरठ-1989
4. गुप्ता महावीर प्रसाद, ममता : शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श, एच.पी. भार्गव, बुक हाऊस, आगरा-2011
5. Sharma R.N. :"Gudidance and Counselling" Surjeet Publication, New Delhi
6. Bhatnagar; R.P.: Guidance and Counselling in Educational Psychology R. Lall Book Depot, Meerat

# इकाई - 4

# अभियोग्यता

**इकाई की रूपरेखा**


4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 अभियोग्यता का अर्थ

4.4 अभियोग्यता की परिभाषाएँ

4.5 अभियोग्यता की विशेषताएँ

4.6 अभियोग्यता व अन्य समान प्रत्यय

4.7 अभियोग्यता की प्रकृति

4.8 अभियोग्यता के घटक

4.9 अभियोग्यता का मापन

4.9.1 अभियोग्यता परीक्षण का अर्थ

4.9.2 अभियोग्यता परीक्षण के प्रकार

4.9.3 अभियोग्यता परीक्षणों का संक्षिप्त विवरण

4.9.4 अभियोग्यता के लाभ

4.9.5 अभियोग्यता की कमियां या दोष

4.10 निर्देशन एवं परामर्श के क्षेत्र में अभियोग्यता परीक्षण का महत्त्व

4.11 सारांश

4.12 बोध प्रश्न

4.13 संदर्भग्रंथ


## 4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि-

- अभियोग्यता का अर्थ व उसकी विभिन्न विद्वानों ने इसे किस प्रकार परिभाषित किया है।
- अभियोग्यता की विशेषताएँ एवं उसकी प्रकृति के बारे में समझ सकेंगे।
- अभियोग्यता व अन्य समान प्रत्यय में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
- अभियोग्यता के मापन के बारे में विस्तृत से समझ सकेंगे
- निर्देशन के क्षेत्र में अभियोग्यता परीक्षण की उपयोगिता को जान सकेंगे।

## 4.1 प्रस्तावना

व्यावसायिक निर्देशन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की योग्यताओं एवं क्षमताओं का रोज़गार विवरण से मिलान करना है जिससे विभिन्न व्यवसायों तथा रोज़गार के लिए कुशल व्यक्तियों का चयन किया जा सके। व्यावसायिक निर्देशन में भावी कुशलताओं का पूर्वानुमान करना होता है। व्यक्ति की वर्तमान योग्यताओं एवं क्षमताओं के आधार पर भावी जीवन में रोजगार की कुशलताओं का पूर्वानुमान किया जाता है, उसी के आधार पर निर्देशन दिया जाता हैं वर्तमान की योग्यताओं का संबंध भावी जीवन के रोज़गार की कुशलताओं से होता है। जिस छात्र की कला के क्षेत्र में अधिक उपलब्धियाँ होती हैं वह कलाकार के रूप में अधिक सफल एवं सक्षम होता है। इसे कला की अभियोग्ता या प्रवणता भी कहते हैं। अभियोग्यता का व्यक्ति के विकास में महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। व्यवसाय तथा रोज़गार का सीधा संबंध अभियोग्ता से होता है। अभियोग्यता भावी जीवन के रोजगार कौशल का पूर्वानुमान करती है इसलिए निर्देशन कार्यकर्ता के लिए बालकों की अभियोग्यता को जानना बहुत आवश्यक है। निर्देशन चाहे शैक्षिक हो या व्यावसायिक, अभियोग्यता परीक्षणों के आधार पर ही बालक का भावी कार्यक्रम निर्भर होता है। विभिन्न व्यवसायों के लिए अभियोग्यता परीक्षणों का निर्माण किया गया है जिनके आधार पर व्यक्ति का चयन विभिन्न व्यवसायों के लिए किया जाता है।

## 4.3 अभियोग्यता का अर्थ

अभियोग्यता किसी एक क्षेत्र अथवा समूह में व्यक्ति की कार्यकुशलता की विशिष्ट योग्यता या विशिष्ट क्षमता है। प्रत्येक शक्ति अथवा योग्यता का विकास अभ्यास पर निर्भर रहता है, किंतु कुछ शक्तियाँ अथवा योग्यताएँ ऐसी भी हैं, जिनका औपचारिक रूप से कोई अभ्यास न किये जाने पर भी प्रस्फुटन होता रहता है। जैसे- हमने चित्रकारी करने, कविता या गायन में भाग लेने का अभ्यास पहले भले ही कभी न किया हो, परन्तु किसी विशेष परिस्थिति में पड़कर उस योग्यता का प्रकाशन अवश्य करने लगतें हैं, जो इन कार्यों के लिए आवश्यक है। इन कार्यों में अनवरत् अवसर या प्रशिक्षण मिलने पर ये योग्यताएँ प्रस्फुटित होने लगती हैं। अत: वे गुप्त योग्यताएँ जो औपचारिक या अनौपचारिक प्रशिक्षण मिलने पर अभ्यास के परिणामस्वरूप प्रस्फुटित होने लगती हैं, उन्हें अभियोग्यताएँ या अभिक्षमताएं कहते हैं।

## 4.4 अभियोग्यता की परिभाषाएँ

अभियोग्यता के संबंध में अलग-अलग मनौवैज्ञानिकों ने अलग-अलग विचार प्रकट किए हैं। अभियोग्यता के संबंधमें कुछ महत्त्वपूर्ण मनौवैज्ञानिको द्वारा दी गई परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

1- **फ्रीमैन** के अनुसार - ''अभियोग्यता एक स्थिति या विशेषताओं का समूह है, जो यह संकेत करता है कि व्यक्ति किस विशेष ज्ञान, योग्यता या प्रतिक्रियाओं के समूह जैसे-भाषा बोलने की योग्यता, संगीतज्ञ बनने, यांत्रिक कार्य करने की योग्यता का विकास करना है'

2- **बिंघम** के शब्दों में, ''अभियोग्यता किसी एक व्यक्ति के प्रशिक्षण के उपरांत उसके ज्ञान, दक्षता

या प्रतिक्रियाओं को सीखने की योग्यता है।''

3- **ब्लम और बैलिंस्की** के अनुसार, ''अभियोग्ता में बुद्धि, रूचियाँ, व्यक्तित्व और प्रशिक्षण तथा अधिगम द्वारा प्राप्त वातावरण का प्रभाव सम्मिलित होता है।''

4- **वारेन** ने अभियोग्ता के संबंधमें कहा है, अभियोग्यता वह स्थिति या विशेषताओं का समूह है जो व्यक्ति को उस योग्यता की ओर संकेत करती जो प्रशिक्षण के बाद ज्ञान,दक्षता या प्रतिक्रियाओं को सीखता है, जैसे-भाषा को बोलने या संगीतोत्पादन की योग्यता।''

5- **ट्रेरक्सलर** के मतानुसार, '' अभियोग्ता एक ऐसी शर्त है जिसका संबंधनौकरी की सफलता से है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अभियोग्यता किसी व्यक्ति की वर्तमान दशा या गुणों का समूह है जो उसकी भविष्य की क्षमताओं की ओर संकेत करती है। यह क्षमता जन्मजात तथा वातावरणज्न्य दोनों प्रकार की परिस्थितियों की अन्त:क्रिया पर निर्भर करती है। साथ ही साथ अभियोग्यता कुछ विशिष्ट कौशल को सीखने और उन योग्यताओं को जो किसी विशेष कार्यक्षेत्र में सफलता के लिए आवश्यक है, उन्हें अर्जित करने की क्षमता है।

## 4.5 अभियोग्ता की विशेषताएँ

**सुपर** (Super) ने अभियोग्यताओं की मुख्य रूप से चार विशेषताएं बताई हैं-

(1) विशिष्टता

(2)एकात्म रचना

(3) सीखने में सुगमता

(4) स्थानीयपन

बिंघम ने अभियोग्यता की निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी हैं-

1- किसी व्यक्ति की अभियोग्ता दशा या गुणों का सम्मिश्रण है जो उसकी क्षमताओं की ओर संकेत करती है। यह क्षमता जन्मजात तथा वातावरण जन्य दोनों ही परिस्थितियों में उस व्यवसाय में उसकी अभियोग्यता नहीं है।

2- अभियोग्ता किसी कार्य में सम्भाव्य योग्यता से भी अधिक है। इसमें किसी क्रिया को पूर्ण करने में उपयुक्तता का भाव भी निहित है। एक व्यक्ति किसी व्यवसाय को यदि पसंद नहीं करता है तो उस व्यवसाय में उसकी अभियोग्ता नहीं हैं।

3- अभियोग्यता एक अमूर्त प्रत्यय है। यह व्यक्ति के गुणों की ओर संकेत करती है। अभियोग्यता व्यक्तित्व का अंग हैं

4- अभियोग्यता वर्तमान वस्तुस्थिति होने पर भी भविष्य की ओर निर्देशन करती है। यह गुणों का एकीकरण है जो क्षमताओं की ओर संकेत करते है। यह परीक्षाएँ सीधे भविष्य की सफलता का मापन नहीं करती है। इन परीक्षाओं के आंकड़े इन क्षमताओं के पूर्वानुमान करने का साधन प्रस्तुत करते हैं।

5- किसी व्यवसाय में प्रवणता प्राप्त करने के लिए उस व्यवसाय में व्यक्ति की अभियोगयता के साथ उस व्यवसाय में रूचि भी होनी चाहिए।

## 4.6 अभियोग्यता व अन्य सामान प्रत्यय

1- सामर्थ- एक सम्भावित योग्यता होती है।
2- प्रवीणता- अर्जित योग्यता की मात्रा की ओर संकेत करती है।
3- क्षमता- विशेष प्रशिक्षण से प्राप्त होने वाली अधिक से अधिक योग्यता।
4- दक्षता-सुसमयोजित कार्यों का रूप जो जटिलता, समन्वय और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप बदलने की योग्यता आदि विशेषताओं से विभूषित होती है।
5- प्रभावशाली- यह एक सर्वोतम योग्यता है, जो कई आविष्कार करती है।

## 4.7 अभियोग्यता की प्रकृति

अभियोग्यता की प्रकृति निम्नांकित तीन मान्यताओं पर निर्भर करती है-

1. किसी व्यक्ति की प्रत्येक कार्य के लिए क्षमता समान रूप से अवरोध नहीं हो सकती है। एक कुछ कार्य को अन्य कार्यों की अपेक्षा कुशलता एवं सरलता से कर लेता है। उसे एक कार्य करने में रूचि होती है, संतोष प्राप्त होती है। जबकि अन्य कार्य में रूचि व संतोष प्राप्त नहीं कर सकता है, उदाहरण के लिए-यदि एक व्यक्ति कुशल वकील है तो आवश्यक नहीं कि वह एक कुशल चिकित्सक भी बन सकता है। व्यक्तियों में भिन्न-कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न मात्रा में क्षमता होती है।

2 एक ही कार्य के लिए व्यक्तियों में भिन्न मात्रा में क्षमता होती है, कहने का तात्पर्य यह है कि कार्य करने के लिए दो व्यक्तियों में समान रूप से कुशलता की मात्रा नहीं होती है।
यहां पर व्यक्तिगत विभिन्नताओं का सिद्धांत लागू नहीं होता है। इसका प्रमुख कारण है कि व्यक्ति में जन्मजात गुण समान रूप से नहीं पाये जाते हैं, उदाहरण के लिए-यदि एक व्यक्ति में कुशल अध्यापक बनने की योग्यता है, तो दूसरे व्यक्ति में इसी क्षमता का अभाव हो सकता है।

3 किसी व्यक्ति की क्षमताएँ सापेक्ष रूप से स्थायी होती हैं। इन क्षमताओं में शीघ्रता से परिवर्तन नहीं होता है, उदाहरण के लिए-यदि एक व्यक्ति में अध्ययन के लिए अभिरूचि हो तथा चिकित्सा में अभिरूचि का अभाव हो तो सम्भव नहीं कि कुछ दिनों बाद वह एक कुशल चिकित्सक बन जाए।

## 4.8 अभियोग्यता के घटक

जिस गुप्त शक्ति के कारण व्यक्ति किसी कार्य या पेशे में सफलता पा सकता है, यदि उनका विश्लेषण किया जाये तो निम्नलिखित तीन तत्व दिखाई देंगें-

1 बुद्धि
2 रूचि

3 पेशेवर विलक्षणताएँ

1- बुद्धि- पेशेवर या शैक्षणिक अभियोग्यताओं का एक महत्त्वपूर्ण घटक है, बुद्धि। किसी शैक्षणिक कार्य में सफलता पाने के लिए व्यक्ति में सामान्य बुद्धि तथा शैक्षणिक अभियोग्यता की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, किसी पेशे में सफलता पाने के लिये भी व्यक्ति में सामान्य बुद्धि तथा पेशेवर अभियोग्यता होने चाहिए।

सामान्य बुद्धि का पेशों की सफलता से विशेष संबंध होता है इसका साक्ष्य है- अलग-अलग देशों में काम करने वाले लोगों की औसत बुद्धि अंक वाले व्यक्तियों को मिलने वाली सफलता की मात्रा की भिन्नता। भिन्न- भिन्न पेशों में सफलता पाने के लिये न केवल भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा की जरूरत होती है बल्कि भिन्न-भिन्न मात्रा में बुद्धि की भी आवश्यकता होती है।

यदि एक ही व्यवसाय को अपनाने वाले व्यक्तियों की बुद्धि का मापन किया जाये तो उन सभी व्यक्तियों के बीच बुद्धिगत विभिन्नताएँ मिलेंगी। अत: परामर्शदाता को अपनी सम्मति देते समय अपने ग्राहक से निम्नलिखित वार्तालाप करनी चाहिए-

क्या तुम ऐसे व्यवसाय में जाना चाहोगे, जिसमें तुम बुद्धि की दृष्टि से अन्य लोगों की तुलना में श्रेष्ठ हो या क्या तुम ऐसे व्यवसाय में जाना पसंद करोगे, जिसमें काम करने वाले अन्य लोगों की अपेक्षा तुम कम बुद्धिमान हो।

2 रूचि- किसी भी व्यवसाय में भावी सफलता पाने के लिये, व्यक्ति में उसके प्रति रूचि या लगाव अथवा सम्मान अवश्य होना चाहिए। यदि अमुक व्यक्ति, अमुक व्यवसाय में लग जाने की प्रवृति ही नहीं रखता तो वह उसमें सफलता कैसे पा सकता है। किसी काम में लग जाने की प्रवृत्ति ही रूचि है। रूचि की प्रबलता ही शैक्षणिक और व्यावसायिक योजनाओं के लिये आवश्यक है।

3 पेशेवर विलक्षणताएँ- किसी पेशे में सफलता प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार, अपेक्षित बौद्धिक योग्यता तथा रूचि अपेक्षित है, ठीक उसी प्रकार, उस पेशे से संबंधित विलक्षणताओं की भी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक समझा जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी व्यवसाय में विशेष सफलता प्राप्त करना चाहता है तो उसमें उस व्यवसाय से संबंधित वांछित विलक्षणताओं का होना अनिवार्य समझा जाता है।

## 4.9 अभियोग्यता का मापन

### 4.9.1 अभियोग्यता परीक्षण का अर्थ

अभियोग्यता परीक्षण में ऐसे कथनों का एक ऐसा न्यादर्श प्रस्तुत किया जाता है जो व्यक्ति की वर्तमान विशेषताओं का मापन करे। इन कथनों के प्रति जैसी अनुक्रियाएँ करता है, उनके आधार पर ही यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि व्यक्ति की भावी योग्यताएँ क्या हो सकती हैं और किन-किन स्थलों पर भविष्य में वह सफलता प्राप्त कर सकता है।

अभियोग्यता परीक्षण व्यक्ति की वर्तमान अवस्था की जाँच करता है। तथा भविष्य के लिए अनुमान लगाता है। व्यक्ति की भावी शक्तियों का आकलन उसकी वर्तमान शक्तियों के आधार पर किया जाता है।

अत: अभियोग्यता परीक्षण में अभियोग्यता का प्रत्यक्ष मापन नहीं होता, उसका आकलन मात्र किया जाता है।

अभियोग्यता परीक्षण में दूसरी मूलभूत बात यह है कि व्यक्ति की वर्तमान योग्यताओं को देखकर उसकी योग्यताओं की तुलना उन लोगों से की जाती है,जो किसी पेशे विशेष से सफलता प्राप्त कर चुके हैं। जैसे यदि हमें कला वर्ग के लिए शैक्षणिक अभियोग्यताओं का परीक्षण करने के लिये कोई परीक्षा तैयार करनी है, तो हम उन योग्यताओं का मापन करेंगे, जो कला में सफलता पाने वाले बालकों द्वारा इसी परीक्षण में प्राप्त अंकों से करेंगे। इस परीक्षा के परीक्षण पद कला की निष्पादन परीक्षा की तरह नहीं होते हैं लेकिन उनके उत्तरों से यह जानकारी अवश्य हासिल की जा सकती है कि व्यक्ति में उस वस्तु को अधिकृत करने की कितनी क्षमता है। व्यक्ति की वर्तमान योग्यता का मूल्यांकन विभिन्न प्रकार से किया जाता है और उस योग्यता के आधार पर ही उसकी तत्परता का अनुमान लगाया जाता है। फ्रीमैन के अनुसार- ''अभियोग्यता परीक्षण वह है, जिसकी रचना किसी प्रकार की क्रिया तथा सीमित क्षेत्र में व्यक्ति की आधार-भूत योग्यता को मापने के लिये की जाती है।''

### 4.9.2 अभियोग्यता परीक्षण के प्रकार

मुख्य रूप से अभियोग्यता परीक्षण निम्नलिखित दो वर्गों में विभक्त किये गये हैं-

क. सामान्य अभियोग्यता परीक्षण

ख. विशिष्ट अभियोग्यता परीक्षण

(क) **सामान्य अभियोग्यता परीक्षण-**

सामान्य अभियोग्यता परीक्षण मुख्यत: माला प्रकार के होते हैं, क्योंकि इनमें अभियोग्यता परीक्षण के आधार पर विभिन्न प्रकार की योग्यताओं का मापन किया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के परीक्षणों में एक ही परीक्षण में अनेक उप-परीक्षण होते हैं तथा प्रत्येक उप-परीक्षण किसी न किसी मात्रा में किसी विशिष्ट अभियोग्यता का मापन करता है। इस प्रकार के परीक्षणों को मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त किया गया है-

1- **दृष्टि एवं श्रवण सम्बन्धी परीक्षण**

(i) दृष्टि परीक्षण

(ii) रंग दृष्टि परीक्षण

(iii) श्रवण परीक्षण

2 **यान्त्रिक योग्यता सम्बन्धी परीक्षण**

मिनिसोटा यान्त्रिक योग्यता सम्बन्धी परीक्षण

(i) बैनेट यान्त्रिक परीक्षण

(ii) मैक्कवेरी यान्त्रिक सम्बोधन

(iii) स्टेनक्विस्ट का सामान्य यान्त्रिक योग्यता संग्रह परीक्षण

(iv) ओ-रोरके यान्त्रिक परीक्षण

(v) मिनिसोटा स्थानगत सम्बन्ध परीक्षण

(vi) मिनिसोटा कागज आकार पटल

**4 पेशिय एवं हस्तश्रम सम्बन्धी परीक्षण**

(i) प्रतिक्रिया काल

(ii) टवीजर निपुणता परीक्षण

(iii) केम्बल मैच-बोर्ड

(iv) अँगुली की शक्ति-मोसो आर्गोग्राफ

(v) ओ. कोनर हस्तश्रम निपुणता परीक्षण

4 **लिपिक अभियोग्यता परीक्षण**

(i) मिनिसोटा लिपिक अभियोग्यता परीक्षण

(ii) विभेद अभियोग्यता परीक्षण

(iii) सामान्य लिपिक परीक्षण

(iv) थर्सटन का प्राथमिक मानसिक योग्यता परीक्षण

(v) फ्लेनागन अभियोग्यता परीक्षण

(vi) सामान्य अभियोग्यता परीक्षण माला;

(ख) **विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण**

विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण वह परीक्षण होता है जिसके द्वारा किसी एक ही तरह की अभिक्षमता की माप की जाती है। ऐसे परीक्षण का एककारक अभिक्षमता परीक्षण; भी कहा जाता है। ऐसे प्रमुख परीक्षण निम्नांकित हैं-

(1) मिनिसोटा यांत्रिक एकत्रिकरण परीक्षण; यह परीक्षण यांत्रिक अभिक्षमता को मापता है तथा इसे मिनिसोटा विश्वविद्यालय में 1930 ई. में बनाया गया था।

(2) यांत्रिक प्रवणता परीक्षण. यह परीक्षण भी यांत्रिक अभिक्षमता को मापता है। इस परीक्षण में 3 उपपरीक्षण हैं जो यांत्रिक अभिक्षमता के ही तीन विभिन्न पहलुओं को मापते हैं।

(3) सीशोर संगीत परीक्षण ;यह परीक्षण छात्रों की संगीत अभिक्षमता मापने का सबसे पहला परीक्षण है। इसके द्वारा चौथे वर्ग के छात्रों से कॉलेज के छात्रों तक की संगीत अभिक्षमता का मापन होता है।

(4) ड्रैक संगीत प्रवणता परीक्षण : यह परीक्षण संगीत अभिक्षमता के दो पहलुओं-संगीत स्मृति तथा लय की माप करता है और इसका प्रयोग आठ वर्ष या इससे ऊपर की आयु पर किया जाता है।

(5) ड्रेटायट लिपिक अभिक्षमता ;लिपिक अभिक्षमता को मापने का यह बहुत प्रमुख परीक्षण है। इसके द्वारा लिपिक अभिक्षमता के निम्नाकिंत पहलुओं का मापन होता है-

(i) हस्तलेखन क्रियात्मक गति एवं शुद्धता

(ii) साधारण अंकगणित, साधारण वाणिज्यिक या व्यापारिक पदों का ज्ञान

(iii) जाँच करना, आनुवर्णिक क्रम से सजाना

5 सामान्य लिपिक परीक्षण; इसमें लिपिक अभिक्षमता के निम्नांकित पहलुओं को मापा जाता है-

(a) अंकगणितीय समस्या;

(b) हिजे
शब्द का अर्थ

(c) भाषा प्रयोग जिसमें व्याकरण भी शामिल हो

(d) पढ़कर समझना

(7) कॉलेज विद्यार्थियों के लिए वैज्ञानिक अभिक्षमता परीक्षण

यह परीक्षण बिहार के ए.के.पी सिंहा एवं एल.एन के. सिन्हा द्वारा निर्मित किया गया। इस परीक्षण द्वारा कालेज के छात्रों की वैज्ञानिक अभिक्षमता को मापा जाता है। इस परीक्षण के एकांश हिंदी भाषा में हैं तथा इसका मानकीकरण कॉलेज के 592 छात्रों पर किया गया है।

### 4.9.3 अभियोग्यता परीक्षणों का संक्षिप्त विवरण

नीचे कुछ प्रमुख सामान्य अभियोग्यता परीक्षणों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है-

1- मिनिसोटा कागज आकार पटल ;इस परीक्षण में 64 परीक्षण पद हैं। इन पदों में ज्यमिति सम्बन्धी आकृतियों के विभिन्न भागों को मिलाकर पूरी आकृति बनानी होती है। इस परीक्षा में आकृतियों के अभिज्ञान की गति का परीक्षण होता है। कोर्इ स्थान समबन्धी समस्याओं को कितनी शीघ्रता से हल कर सकता है, इस योग्यता का परीक्षण करने के लिए ।तउल ठमजं के जयमिती संरचना परीक्षण से परीक्षण पद लिये गये हैं। इसका प्रयोग परीक्षा माला के रूप में किया जाता है। यह परीक्षण व्यावसायिक निर्देशन और परामर्श के लिये अत्यन्त सफल सिद्ध हुए हैं।

2- केम्बल मैच-बोर्ड ;केम्बल मैच-बोर्ड अथवा पैग-बोर्ड परीक्षण में एक पट (तख्ता) पर कुछ छेदों की कतारें तैयार की गई हैं, जिनमें व्यक्ति को खूंटियाँ या दियासलाई की सींके डालनी पड़ती हैं, वह भी कभी दाहिने हाथ से और कभी बायें हाथ से तथा दोनों होथों से अदल-बदल कर। इस कार्य को पूरा करने का समय भी निश्चित कर दिया जाता है।

3- ओ-कोनर चिमटी दक्षता परीक्षण; इस परीक्षण में लकड़ी का एक पटल होता है। पटल के एक ओर दस पंक्तियों में 100 छिद्र होते हैं और दूसरी और 300 पिनें रखी होती हैं। प्रत्येक छिद्र इतना चौड़ा होता है कि उसमें 3-3 पिनें आ सकें। परीक्षार्थी को इस बात का आदेश दिया जाता है कि चिमटी से पिन पकड़कर छिद्र में डालो। सर्वप्रथम, तीन प्रयास अभ्यास के लिए दिये जाते हैं। उसके पश्चात परीक्षण प्रारम्भ होता है। परीक्षार्थी पिनों को छिद्र में डालने में जितना समय लेता है, उस समय का औसत निकाल लिया जाता है।परीक्षार्थी जितना कम समय लेता है उसकी कुशलता उतनी ही अधिक समझी जाती है।

4- मिनिसोटा यांत्रिक एकत्रीकरण परीक्षण मिनिसोटा यान्त्रिक एकत्रीकरण परीक्षण स्टे िन्क्वस्टर परीक्षण का ही एक संशोधित रूप होता है। इस परीक्षण की सामग्री निम्न प्रकार प्रस्तुत की जा रही है-

इस परीक्षण में तीन बक्स होते हैं, जिनमें कुछ यान्त्रिक वस्तुओं में भाग अलग-अलग रखे होते हैं। परीक्षण में इन भागों को मिलाकर उन वस्तुओं को बनाना होता हैं इस परीक्षण के अतिरिक्त यान्त्रिक योग्यताओं के परीक्षणों में यान्त्रिक सूझ का बैनेट परीक्षण तथा यान्त्रिक योग्यता का मैक-क्वैरी परीक्षण;प्रसिद्ध है।

5. स्टेन्किस्ट यान्त्रिक एकत्रीकरण परीक्षण : इस परीक्षण में परीक्षार्थी को कुछ साघारण यान्त्रिक वस्तुयें दी जाती हैं, जिनके हिस्से पुर्जे पृथक-पृथक रखे होते हैं। परीक्षार्थी को क्रम से इन समस्त वस्तुओं को उनके हिस्सों द्वारा पूरा करने को कहा जाता है। इस परीक्षण में प्रयोग की जाने वाली प्रमुख वस्तुयें इस प्रकार हैं- ताला, कपड़ा,दबाने वाली क्लिप, जंजीर, चूहेदानी, साइकिल की घंटी इत्यादी।

6. मेक्कवेरी यान्त्रिक परीक्षण और मशीन सम्बन्धी ;डमबींदपबंसद्ध अभियोग्यताओं का परीक्षण के लिये इस परीक्षण में 7 उप-परीक्षाओं का समावेश किया गया है। इन सात परीक्षाओं में से तीन परीक्षायें, पहले प्रकार की अभियोग्यता का तथा शेष चार परीक्षायें, मशीन संचालन सम्बन्धी बुद्धि ;डमबींदपबंस पदजमससपहमदबमद्ध को मापन करती है। यह परीक्षा वैयक्तिक तथा सामूहिक दोनों रूपों में दी जाती है। प्रत्येक उप-परीक्षा देने से पूर्व अभ्यास कराया जाता है ताकि परीक्षार्थी यह जान ले कि उसे परीक्षा में क्या करना है।

7. मिनिसोटा स्थानगत सम्बन्ध परीक्षण : जिन कार्यों के लिये वस्तुओं को हाथ से उठाने, उन्हें निश्चित स्थान पर रखने की योग्यता की आवश्यकता होती है, उनका मापन करने के लिये मिनिसोटा स्थानगत सम्बन्ध परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। इस परीक्षण में 4 बोर्ड होते हैं, जिनमें से प्रत्येक में 58 विभिन्न आकृतियों वाले टुकड़े होते हैं। इसमें परीक्षार्थी टुकड़ों को बोर्ड के सही स्थान पर रखता है। इससे उसकी गति तथा

परिशुद्धता का मापन किया जाता है। इस परीक्षण को करने में 40-50 मिनट का समय लगता है। यह प्रौढ़ तथा छात्र दोनों के लिये उपयुक्त है।

8. ओ-रोरके यान्त्रिक परीक्षण : जब कोई बच्चा यांत्रिक वस्तुओं को ध्यान से देखता है, तब वह यह जानने की इच्छा प्रकट करता है कि वे किस प्रकार बनती हैं और उनके काम करने की विधि क्या है। ऐसी स्थिति में उसकी क्रियाओं को देखकर यह कहा जा सकता है कि उसमें यांत्रिक अभियोग्यता कितना है। जिस बालक में यह अभियोग्यता विद्यमान है, वह अपने वातावरण से लिये गये सामान्य यन्त्रों का निरीक्षण करता है और उनके विषय में अधिक से अधिक सूचनाएँ एकत्र करता है। इसी सिद्धान्त पर ओ-रोरके यांत्रिक परीक्षण आधारित है।

9. मिनिसोटा लिपिक परीक्षण : वैयक्तिक या सामूहिक रूप से दी जाने वाली यह लिपिक परीक्षा व्यक्तियों में नाम तथा संख्याओं की तुलना कर सकने की क्षमता का मापन करती है। यह परीक्षा उन योग्यताओं का विश्वस्त मापन करती है जिनका प्रयोग व्यक्ति लिपिकिय कार्यों में किया करता है।

   यह परीक्षा लिपिकिय योग्यता का मापन करने के लिये अधिक शुद्ध प्रमाणित हुई है, क्योकि सफल लिपिक वर्ग द्वारा इस परीक्षा में फलांकों का औसत, सामान्य लागों का औसत अंक से कहीं अधिक आया है, इसका तात्पर्य यह है कि इस परीक्षा में प्राप्त फलांक, व्यक्ति के पूर्व अनुभव अथवा पूर्ण प्रशिक्षण पर निर्भर नहीं करता और न अधिक बुद्धिमान व्यक्ति ही इसमें ऊँचे अंक पा सकता है। अत: यह परीक्षा लिपिकीय अभियोग्यता का ही मापन करती है।

10. विभेद अभियोग्यता परीक्षण माला : इस परीक्षा माला में निम्नलिखित उप परीक्षिकाएँ हैं।

    (1) सांख्यिक योग्यता
    (2) स्थानगत प्रतिबोधन
    (3) लिपिकीय वेग और शुद्धि परीक्षा
    (4) भाषा के प्रयोग की परीक्षा-वाक्य
    (5) शाब्दिक चिन्तन
    (6) सूक्ष्म चिन्तन
    (7) मशीनी तर्क
    (8) भाषा के प्रयोग की परीक्षाद्

### 4.9.4 **अभियोग्यता परीक्षणों के लाभ**

निर्देशन से संबंधितकार्यों में अभियोग्यता परीक्षणों के बहुत लाभ हैं। निर्देशन में अभियोग्यता परीक्षणोंके निम्नलिखित उपयोग हैं।

1 भावी सफलता की भविष्यवाणी-अभियोग्यता परीक्षणों की सहायता से व्यक्तियों की योग्यताओं, कुशलताओं और प्रतिभाओं का पता लगाकर व्यक्ति की किसी विशेष व्यवसाय में भावी सफलता की भविष्यवाणी की जा सकती है।

2 कर्मचारियों का चयन-अभियोग्यता परीक्षणों की सहायता से कर्मचारी का चयन सरलता से किया जा सकता है।

3 व्यवसाय का चुनाव- ये परीक्षण व्यक्ति को उनकी योग्यताओं और अभिरूचियों के अनुसार व्यवसाय का चुनाव करने में अत्यंत सहायक होते हैं।

4 स्कूलों में प्रवेश के लिए-ये परीक्षण स्कूलों में प्रवेश के इच्छुक छात्रों का चयन करने में सहायता करते हैं।

5 विद्यार्थियों की विशिष्ट क्षमताओं का ज्ञान- अभियोग्यता परीक्षण छात्रों की विशिष्ट क्षमताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने में सहायता देते हैं।

6 पाठ्य विषयों के चयन में सहायक- अभियोग्यता परीक्षण छात्रों को उनकी योग्यताओं,शक्तियों,प्रतिभाओं और कमियों की जानकारी देकर उचित पाठ्य विषयों के चयन में सहायता करते हैं।

7 पाठ्यक्रम की योजना- अभियोग्यता परीक्षणों के परिणामों के आधार पर पाठ्यक्रम की योजना बनाने में सहायता मिलती है जिससे कि छात्रों की सम्भावनाओं में वृद्धि हो सके।

### 4.9.5 अभियोग्यता परीक्षणों की कमियाँ या दोष

अभियोग्यता परीक्षणों के अनेकों लाभ होने के साथ-साथ इनकी कुछ सीमाएँ भी हैं, जो कि निम्नलिखित हैं।

1- इन परीक्षणों के द्वारा उन सभी प्रकार के अवयवों या तत्वों का मापन नहीं किया जा सकता है जो कि सफलता के लिए अनिवार्य होते हैं।

2 अभियोग्यता परीक्षणों का क्षेत्र संकुचित है।

3 अभियोग्यता परीक्षणों के परिणामों की व्याख्या करने के लिए शिक्षित व्यक्तियों का नितांत अभाव है।

4 इन परीक्षणों के निष्कर्ष अलग-अलग व्यक्तियों के द्वारा अलग-अलग निकाले जाते हैं।

5 ये परीक्षण क्षेत्रिय या प्रादेशिक भिन्नता की अवहेलना करते हैं

6 इन परीक्षणों के द्वारा जो भविष्यवाणी की जाती है उसकी वास्तविकता की जाँच नहीं की जा सकती।

## 4.10 निर्देशन एवं परामर्श के क्षेत्र में अभियोग्यता परीक्षण का महत्व

निर्देशन के क्षेत्र में अभियोग्यता का आर्थिक महत्व हैं। किसी छात्र को व्यवसाय निर्देशन देते समय अभियोग्यता अपना विशेष महत्व रखती है। परामर्शदाता इसी ज्ञान के आधार पर उचित परामर्श देते हैं।

छात्रों को किन-किन व्यवसायों में प्रवेश करना चाहिए यह परामर्श तभी दिया जा सकता है जब छात्रों की क्षमताओं एवं योग्यताओं का ज्ञान हो। विशेष अभियोग्यता परीक्षणों की सहायता से जीविका के लिए व्यक्तियों का चयन करने की सुविधा रहती है। इस प्रकार अभियोग्यता परीक्षण नियुक्ति कर्ताओं की सहायक भी होती हैं। इन परीक्षणों द्वारा असफल कर्मचारियों की संख्या कम की जा सकती है। हमारे देश में व्यक्ति किसी रूचि तथा अभिक्षमता पर ध्यान दिए बिना ही रोजगारों में प्रवेश करते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि इनमें से अधिकांश विभिन्न रोजगारों को बदलते पाये जाते हैं। यह किसी एक जीविका में कुशलता प्राप्त नहीं कर सकते है। शक्ति व समय का अपव्यय होता है। इस अपव्यय को दूर करने के लिए आवश्यक है कि भारत में अभियोग्यता परीक्षणों का उपयोग सर्वप्रिय बनाया जाये। संक्षेप में अभियोग्यता परीक्षणों की उपयोगिता का वर्णन निम्नलिखित है-

1- अभिक्षमता या अभियोग्यता परीक्षण द्वारा अभिक्षमता का मापन करके परामर्शदाता उत्तम अन्त:शक्ति वाले छात्रों का चयन कर लेते हैं। ऐसा करके ऐसे छात्रों के लिए अलग पाठ्यक्रम तैयार करके शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र में सहायता मिल सकती है।

2- अभिक्षमता परीक्षण द्वारा परामर्शदाता छात्रों की समस्याओं का निदान कर सकते हैं। जैसे पठन अभिक्षमता परीक्षण का प्रयोग कर परामर्शदाता आसानी से इस बात की पहचान कर सकते है कि किस छात्र में तथ्यों को पढ़ने की अभिक्षमता की कमी है।

3- अभियोग्यता परीक्षण का प्रयोग स्कूल परामर्शदाताओं द्वारा कुछ विशेष क्षेत्रों जैसे कला,चिकित्साशास्त्र आदि में छात्रों को पुनर्निवेशन प्रदान करने के लिए भी किया जाता है। इस तरह के पुनर्निवेशन कें आधार पर स्वयं ही यह निर्णय ले पाते हैं कि उन्हें अमुक कार्यक्रम में भाग लेना चाहिए या नहीं।

3 ये परीक्षण शैक्षिक निर्देशन में सहायक हैं क्योंकि इसकी सहायता से अमुक विषय या क्षेत्र में छात्रों के निष्पादन के बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

4 अभियोग्यता परीक्षण का प्रयोग कर छात्रों का श्रेणीकरण किया जा सकता है तथा उसी के अनुसार उनका नियोजन करने में मदद मिलती है।

परामर्शदाता के लिए अभियोग्यता परीक्षण निम्नलिखित रूप में सहायक होता है:

1 व्यक्ति की अंतर्निहित शक्तियों को पहचानने में सहायक होता है जिसका ज्ञान व पहचान उसे स्वयं नहीं होती है।

2 परामर्शदाता अभियोग्यता परीक्षणों के आधार पर उन अंतर्निहित शक्तियों के प्रोत्साहन पर बल दे सकता है।

3 अभियोग्यता परीक्षण के आधार पर परामर्शदाता व्यक्ति के शैक्षणिक व व्यावसायिक निर्णयों में उचित जानकारी प्रदान कर सकता है।

4 किसी व्यक्ति की शैक्षणिक व व्यावसायिक सफलता का पूर्वानुमान लगाने में यह परीक्षण अत्यंत सहायक है।

5 विकास व शैक्षिक उद्देश्य की दृष्टि से समान अभियोग्यता या प्रवणता वाले व्यक्तियों का समूह बनाने में यह परीक्षण अत्यंत उपयोगी होते हैं।

## 4.11 सारांश

प्रस्तुत इकाइ्र में अभियोग्यता के अर्थ व परिभाषाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। अभियोग्यता किसी एक क्षेत्र अथवा समूह में व्यक्ति की कार्यकुशलता की विशिष्ट योग्यता या विशिष्ट क्षमता है। कई मनोवैज्ञानिकों जैसे- फ्रीमैन, बिंघम, वारेन द्वारा दी गई परिभाषाओंको प्रस्तुत किया गया है। सुपर व बिंघम द्वारा अभियोग्यता की विशेषताएँ जैसे विशिष्टता, एकात्मक रचना, सीखने में सुगमता, स्थानियपन का विस्तार पूर्वक वर्णन है।

अभियोग्यता के तीन महत्त्वपूर्ण घटक हैं- बुद्धि, रूचि एवं पेशेवर विलक्षणताएँ। इस इकाई में हमने अभियोग्यता की प्रकृति एवं उसके समान प्रत्यय-सामथ्र्य, प्रवीणता, क्षमता एवं दक्षता का भी अध्ययन किया। अभियोग्यता का मापन करने के लिए अभियोग्यता परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है जो मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं-सामान्य अभियोग्यता परीक्षण एवं विशिष्ट अभियोग्यता परीक्षण। निर्देशन के क्षेत्र में अभियोग्यता परीक्षण अत्यंत उपयोगी है चाहे वह व्यक्तियों की भावी सफलता की भविष्यवाणी हो, कर्मचारियों का चयन या व्यवसाय का चुनाव हो।

## 4.12 बोध प्रश्न

**अतिलघुत्तरीय प्रश्न**

1- सुपर द्वारा बताई गई किन्हीं दो विशेषताओं का उल्लेख करें।
2- अभियोग्यता के तीन घटक कौन कौन से है?
3- अभियोग्यता परीक्षण कितने प्रकार के है?
4- अभियोग्यता का मापन कैसे होता है?

**लघु अतिलघुत्तरीय प्रश्न**

1- अभियोग्यता का क्या अर्थ है?
2- अभियोग्यता की प्रकृति स्पष्ट करें।
3- अभियोग्यता परीक्षण के लाभ बताएँ।
4- बिंघम द्वारा प्रस्तुत अभियोग्यता की परिभाषा का वर्णन करें।

**निबंधात्मक प्रश्न**

1- अभियोग्यता परीक्षण के प्रकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
2- निर्देशन के क्षेत्र में अभियोग्यता परीक्षण की उपयोगिता पर प्रकाश डा

## 4.13 संदर्भ ग्रंथ

1. शर्मा.आर.ए. - चतुर्वेदी, शिखा ;2013, ***निर्देशन एवं परामर्श के मूल तत्व*** , आर.लाल पब्लिशर्स, मेरठ

2. वुलफोक, अनिता ;2004, ***एजुकेशनल साइकोलोजी*** पीयरसन एजुकेशन लिमिटेड, दिल्ली
3. सिंह, एक.के. ;2005, ***शिक्षा मनोविज्ञान***, भारतीय भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना
4. भटनागर, अनुराग ;2010, ***मेशेरमेंट एंड इवैल्यूएशेन,*** लाल पब्लिशर्स, मेरठ
5. स्टर्नबर्ग,रोबर्ट;2002, *एजुकेशनल साइकोलोजी*,पियरर्सन एजुकेशन कम्पनी, बास्टन
6. सिंह.आर बी ;2010, *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन,* लक्ष्मी पब्लिकेशन,भिवानी

# इकाई - 5

# अभिप्रेरणा

**इकाई की रूपरेखा**


5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 प्रेरणा का अर्थ

5.3 अभिप्रेरणा की परिभाषा

5.4 अभिप्रेरणा के मूल संप्रत्य

5.5 अभिप्रेरणा के प्रकार

5.6 प्रेरको का वर्गीकरण

5.7 अभिप्रेरणा के गुण

5.8 अभिप्रेरित करने कि विधियाँ

5.9 अभिप्रेरणा के सिद्धांत

5.10 अभिप्रेरणा की विशेषताऐ

5.11 सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा की भूमिका

5.12 बोध प्रश्न

5.13 सन्दर्भ सूची


## 5.1 उद्देश्य

- अभिप्रेरणा का संप्रत्यय समझ पायेगे।
- अभिप्रेरणा क्यों आवश्यक है, समझ पायेंगे।
- अभिप्रेरणा की प्रकृति से परिचित हो सकेंगे
- अभिप्रेरणा किन क्षेत्रों में आवश्यक होता है यह जान पायेंगे
- अभिप्रेरणा के गुणों के बारे मैं जान पाएंगे

## 5.2 प्रस्तावना

प्रेरणा केवल र्वतमान शिक्षाविदो के चिंतन का विषय नहीं है अपितु आदिकाल से ही शिक्षाविद प्रेरणा पैर विचार करते आ रहे है ओपचारिक शिक्षा में प्रेरणा का सञ्चालन और नियंतरण और भी है केवल छात्रों की योग्यता करके उतेजना को जागृत नहीं किया जायेगा तब जाकर आतंरिक अवयव कोई प्रतिक्रिया नहीं करेंगे

## 5.3 प्रेरणा का अर्थ

मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है इसमें मानव के व्यवहार का विज्ञान है फलत: इसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार को जानने का प्रयास किया जाता है कि व्यक्ति अमुक व्यवहार क्यों करता है अभी तक मनोवैज्ञानिको की मान्यता यह थी कि व्यक्ति का व्यवहार मूल प्रर्वतियों से परिचालित होता है किन्तु अब इस मान्यता को अस्वीकार कर दिया गया है और यह मान लिया गया है कि हमारे व्यवहार को परिचालित करने वाली शक्तियाँ प्रेरक है जो की मूल प्रर्वतियों की तरह जन्मजात होते तथा कुछ प्रेरक प्राणी वातावरण में अंजित भी कर देता है

प्रेरणा या अभिप्रेरणा शब्द का प्रचलन अंग्रेजी भाषा के उवजपअंजपवद से हुआ है इस शब्द की उत्पति लेटिन भाषा के मोटम धातु से हुई है जिसका अंथ है मूव या इन साईट टू एक्शन मोटर और मोशन से है अत: प्रेरणा एक संक्रिया है जो जीव को क्रिया के प्रति उतेजित करती है या उकसाती है जबकि मनोवैज्ञानिक अंथ में प्रेरणा से हमारा अभिप्राय केवल आंतरिक उत्तेजनाओ से होता है इसमें बाह् उत्तेजनाओ को कोई महत्व नहीं दिया जाता यह रूचि को पैदा करने बनाये रखने और नियंत्रित करने की प्रक्रिया है मनोवैज्ञानिक केवल आंतरिक प्रेरणा का अध्ययन करता है और इसको ही व्यवहार का आधार मानता है ये प्रेरणा को एक आंतरिक शक्ति मानते है जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए उतेजित करती हैा, रुचियों और विशेषताओं का ज्ञान होना पर्याप्त नहीं है शिक्षण में जब तक लक्ष्य **निंधारित अभिप्रेरणा का व्यापक अंथ**

अभिप्रेरणा के लिए कई शब्दों का प्रयोग किया जाता है अभिप्रेरणा के कई शब्द ऐसे है जो अन्य अन्य अंथ रखते है

१. प्रेरक :यह व्यक्ति के अंदर उपस्थित मनो – शारीरिक दशा को किसी कार्य विशेष के लिए प्रेरित करता है

२. प्रणोंदन: प्रणोंदन का सम्बंध शरीर की आवश्यकताओ से है प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकताऐ उसे कार्य करने की प्रेरणा देती है,मनुष्य को भूख प्यास लगना इसी का संकेत है

३. प्रोत्साहन: निश्चित वस्तुओ को प्राप्त करने के लिए प्रतेयक व्यक्ति प्रयत्न करता है इसका सबंध बाहरी वातावरण से मान जाता है

४. उत्सुकता: उत्सुकता के द्वारा व्यक्ति किसी कार्य को संपन्न करने को अभिप्रेरित होता है बिना उत्सुक हुए किसी कार्य की सम्पन्ता संभव नहीं है उत्सुकता व्यक्ति में अन्वेषण वृति तथा जानने के प्रयास को सफलता की और अग्रसर करती है

५. रूचि : प्रत्येक कार्य में प्रत्येक व्यक्ति की रूचि नहीं होती रूचि सभी की पृथक पृथक होती है अत : रूचि के अनुसार ही व्यक्ति अपनी कार्य की सफलता निश्चित करता है अत : रूचि प्रेरणा का पर्याय बन जाती है

६. लक्ष्य : लक्ष्य व्यक्ति को परिणाम के संबंध में सूचित करता है इसे व्यक्ति को परिणाम के संबंध करता है इसे व्यक्ति चेतनावस्था में प्राप्त करता है

## 5.4 अभिप्रेरणा की परिभाषा

१. वुडर्वथ :- अभिप्रेरणा (प्रेरक ) व्यक्ति की वह अवस्था या तत्परता है जो की उसे किसी व्यवहार को करने के लिए एवं किन्ही उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निंदेशित करता है

२. मेकडूगल :- अभिप्रेरणा वे शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक दशाएं है , जो किसी कार्य को करने के लिये प्रेरित करती है

३. रोफर एवं अन्य के अनुसार :- अभिप्रेरणा एक ऐसी प्रवृति है जो की चालक के द्वारा उत्पन्न हटी है एवं समायोजन द्वारा समाप्त होती है

४. थामसन :-अभिप्रेरणा आरम्भ से लेकर अंत तक मानव व्यवहार के प्रत्येक प्रतिकारक को प्रभावित करती है जैसे अभिवृती, आकार, इच्छा,रूचि , चालक , तीव्र इच्छा, आदि जो उद्देश्यों से संबंधित होती है

५. जोनसन:- अभिप्रेरणा सामान्य क्रिया कलापों का प्रभाव है जो मानव के व्यवहार को उचित मार्ग पर ले जाती है

६. बर्नार्ड :- अभिप्रेरणा द्वारा उन विधियों का विकास किया जाता है जो व्यवहार के पहलूओं को प्रभावित करती है

७. गिलफोंड :-अभिप्रेरणा एक कोई भी विशेष आंतरिक दशा या कारक है जो क्रिया को आरंभ करने तथा बनाये रखने को प्रवृत होती है

उपयुक्त परिभाषाओं का विशलेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते है

१. प्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार को जागृत यो उत्तेजित करती है व्यवहार का संचालन प्रेरणा द्वारा ही होता है

२. प्रेरणा व्यक्ति के अंदर शक्ति परिर्वतन से प्रारम्भ होती है अधिकांश प्रेरको के लिए उत्तरदायी शक्ति परिर्वतनों का र्वणन नहीं किया जा सकता है

३. प्रेरणा क्रियाशीलता की धोतक होती है

४. प्रेरणा एक शक्ति है जो क्रिया को प्रारम्भ करती है तथा निंदेशन करती है

५. प्रेरणा प्राणी की आंतरिक स्थिति या अवस्था है

६. प्रेरणा एक कल्पनात्मक प्रकिया है जो व्यवहारके निंधारण से सम्बन्धित होती है

## 5.4 अभिप्रेरणा के मूल संप्रत्य

अभिप्रेरणा की व्याख्या अधिक स्पष्ट रूप से करने के लिए मनोवैज्ञानिको ने अभिप्रेरणा चक्र के सम्प्रत्य का प्रतिपादन किया इस चक्र के मुख्य तीन तत्व है

१.आवश्यकता

२. प्रणोंद

३. प्रोत्साहन

१. आवश्यकता:- जब प्राणी के शारीर में किसी चीज की कमी या अति की अवस्था किसी कारण उत्पन्न हो जाती है तो इसे हम आवश्यकता की परिभाषा की संज्ञा देते है वुड र्वथ एवं स्कोलसर्बग ने आवश्यकता को इसी र्अथ में परिभाषित करते हुए कहा है श्कमी या अति को शारीरिक अवस्था को आवश्यकता कहा जाता है।

जब मानव शरीर में मलमूत्र जैसे व्र्यथ पर्दाथ जमा हो जाते है यदि उन्हें बाहर नहीं निकला जाये तो मनुष्य जीवन संकट में पड़ सकता है इस तरह की आवश्यकता को निष्कासन आवश्यकता की संज्ञा दी गयी है तथा आवश्यकता से ताव्पय प्राणी के इन दोनों तरह की अवस्थाओ र्अथात कमी या अति से होता है

२. प्रणोंद:-इन्हें चालक भी कहते है जब प्राणी में आवश्यकता उत्पन्न होती है तो इसे स्भावत: उसमे क्रियाशीलता बड जाती है वह पहले से अधिक सक्रिय तथा तनावपर्ण मालूम पड़ता है र्सतिन ने प्रणोंद को परिभाषित करते हुए कहा है श्प्रणोंद वैसे तनाव या क्रियाशीलता की अवस्था को कहा जाता है जो किसी आवश्यकता द्वारा उत्पन्न होता है

जब व्यक्ति में भोजन की आवश्यकता होती है तो भूख प्रणोंद उत्पन्न हटा है वे व्यक्ति को आगे की क्रिया करने हेतु प्रेरित करता है

३. प्रोत्साहन:- यह अभिप्रेरणा चक्र का तीसरा सोपान है जो व्यक्ति को अपनी और आर्कषित कर लेता है तथा जिनकी प्राप्ति से व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति तथा प्रणोंद में कमी हो जाती है दूसरे शब्दों में प्राणी के चालको प्रणोंदो की वृधि करने वाली वस्तुए उद्दीपन अथवा प्रोत्साहन कहलाती है उदाहरण-र्उजा की कमी की पूर्ति हेतु भोजन आवश्यकता,भूख चालक का उद्दीपन या प्रोत्साहन भोजन सामग्री है इस प्रकार -

| आवश्यकता | प्रणोंद | प्रोत्साहन |
|---|---|---|
| शरीर में उर्जा की कमी | - भूख | -भोजन सामग्री |
| शरीर में तरल की कमी | -प्यास | -जल |

आवश्यकता,प्रणोंद, प्रोत्साहन में घनिष्ठ संबंध है आवश्यकताए चालक को जन्म देतीहै प्रणोंद्र एक तनावपूर्ण स्थिति होती है तथा मानव व्यवहार को एक निश्चित दिशा और स्वरूप प्रदान करती है प्रोत्साहन द्वारा आवश्यकता की पूर्ति होती है पूर्ति के पश्चात प्रणोंद की समाप्ति हो जाती है आवश्यकता , प्रणोंद, व उद्दीपन के संबंध व चक्र को इस प्रकार से स्पष्टकर सकता है

आवश्यकता -प्रणोंद -प्राणी में आंतरिक तनाव-उद्दीपन प्रोत्साहन -लक्ष्य प्राप्ति एवं सुख संतोष

## 5.5 अभिप्रेरणा के प्रकार

अभिप्रेरणा के निम्न प्रकार है

(अ) प्राक्रतिक अभिप्रेरणा :-

१. मनोदेहिक अभिप्रेरणा ये अभिप्रेरणा मनुष्य के शरीर और मष्तिष्क से संबंधित है इस प्रकार की प्रेरणाए मनुष्य के जीवित रहने के लिए आवश्यक है जैसे –खाना, पीना , काम,चेतना,आदत एवं भाव एवं संवेगात्मक प्रेरणा आदि

२. सामाजिक प्रेरणा :- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है मनुष्य जिस समाज में रहता है वही समाज व्यक्ति के व्यवहार को र्निधारित करता है सामाजिक प्रेरणाए समाज के व्यवहार को र्निधारित है समाजिक प्रेरणाएँ समाज के वातावरण में सीखी जाती है –जैसे स्नेह , प्रेम ,सम्मान

३. व्यक्ति प्रेरणाएं:-प्रत्येक प्राणी अपने साथ विशेष शक्तियों को लेकर जन्म लेता है ये विशेषताएं उनको माता पिता के पर्ूवजों से हस्तांतरित की गयी होती है इसी के साथ ही र्पयावरण की विशेषताए छात्रों के विकास पर अपना प्रभाव छोडती है र्पयावरण बालको को शारीरिक बनावट को सुडोल और सामान्य बनाने में मदद देता है व्यक्तिगत भिन्नताओ के आधार पर ही व्यक्तिगत प्रेरणाए भिन्न भिन्न होती है इसके अर्ंतगत रुचियां,दृष्टिकोण, स्वर्धम ,नैतिक मूल्य आदि है

**(ब) कृत्रिम प्रेरणा-**

१. दण्ड एवं पुरस्कार :-विद्यालय के कार्यो में विधार्थियों को प्रेरित करने के लिए इसका विशेष महत्व है

अ. दण्ड एक सकारात्मक प्रेरणा है इसमें विद्र्याथियों का हित है

ब.पुरुस्कार एक स्वीकारात्मक प्रेरणा है यह भोतिक सामाजिक और नेतिक भी हो सकता है

२. सहयोग :- यह तीव्र अभिप्रेरक है अतरू इसी के माध्यम से देनी चाहिए प्रयोजना विधि का प्रयोग विद्यार्थियों में सहयोग की भावना जागृत करता है

३ लक्ष्य,आर्दश और सौद्देश्य प्रयत्न :-प्रत्येक कार्य में अभिप्रेरणा उत्पन्न करने के लिए स्पष्ट ,आर्कषक,सजीव ,विस्तृत एवं आर्दश होना चाहिए वह स्पष्ट ,आर्कषक ,सजीव एवं होना चाहिए इन्हें प्राप्त करने के लिए इन्हें सौद्देश्य प्रयत्न की और आर्कषित करना चाहिए

४. अभिप्रेरणा में परिपक्वता :-विद्यार्थियों में प्रेरणा उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है की उनकी शारीरिक एवं र्आथिक सिथ्ती को ध्यान में रखा जाय जिससे की वे शिक्षा गृहण कर ले

५. अभिप्रेरण और फल का ज्ञान :-अभिप्रेरणा को अधिकाधिक वेगवती बनाने के लिए यह आवश्यक है कि समय समय पर विद्यार्थियों को उनके द्वारा किये गए कार्य में हुई प्रगति अवगत कराया जाये ,जिससे वे और अधिक उत्साह से कार्य कर सके

६. पूरे व्यक्तित्व का अवसर देना :-अभिप्रेरणा के द्वारा लक्ष्य कि प्राप्ति से किसी विशेष भावना कि संतुष्टि न होकर पूरे व्यक्तित्व को संतोष प्राप्त होना चाहिए

७. व्यक्तित्व कार्य प्रेरणा एवं सामूहिक कार्य प्रेरणा :-प्राम्भिक स्तर पर व्यक्तिगत प्रेरणा और फिर उसे ही सामूहिक प्रेरणा में परिर्वतित करना चाहिए क्योकि व्यक्तिगत प्रगति होती है

८. भाग लेने का अवसर देना :-विद्यार्थियों में किसी कार्य में सम्मिलित होने की प्रवृति होती है अत उन्हें कम करने का अवसर देना चाहिए

९. प्रभाव के नियम (- मनुष्य का प्रमुख उद्देश्य आनंदानुभूति है अत मनोविज्ञान के प्रभाव के नियम को प्रेरणा हेतु अधिकता में प्रयोग किया जाना चाहिए

## 5.6 प्रेरको का वगीकरण

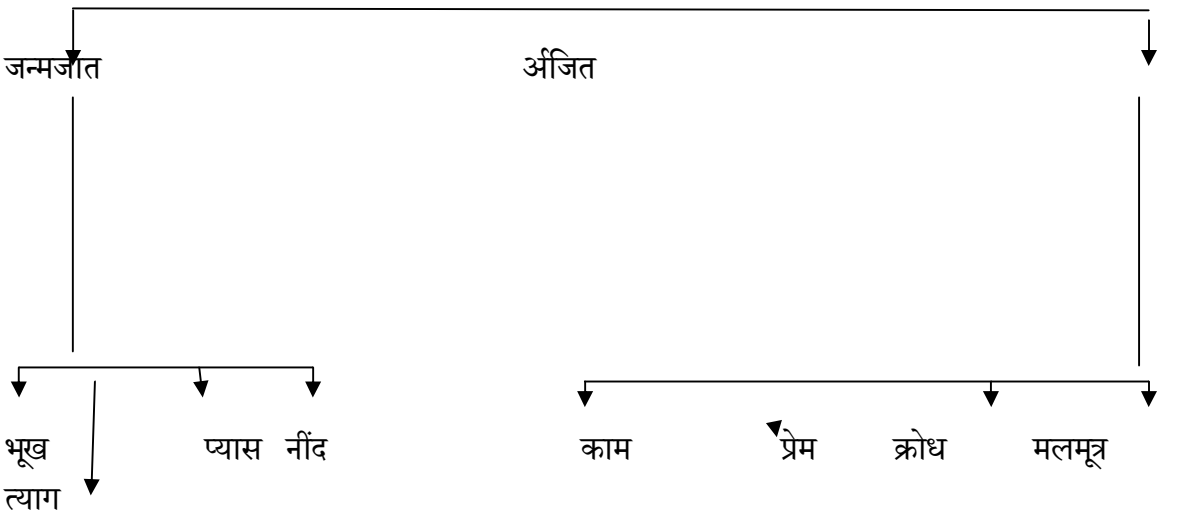


जीवन लक्ष्य आकांशा का स्तर रूचि मधय्व्यसन आदत अचेतन प्रेरणा अभिवृतीया
की विवशता

सामुदयिता आत्मसम्मान अंजनन्त्मक युयुत्सा

प्रेरक किसी व्यक्ति की आंतरिक सिथ्ती है यह सिथ्ती उसे क्रिया करने को प्रेरित करती है प्रेरक अनेक प्प्रकर के होते है इनकी संख्या अत्यधिक है मनोवैज्ञानिक ने प्रेरको का वंगीकरण भिन्न भिन्न प्रकार से किया है

१. गेरिट के अनुसार :- प्रेरक तीन प्रकार के होते है
(अ)जैवकीय (ब) मनोवैज्ञानिक (स) सामाजिक

२. थामसन के अनुसार दो प्रकार के प्रेरक होते है
अ स्भाविक ब.कृत्रिम

३. मासलो के अनुसार प्रेरक दो प्रकार के होते है

अ. जन्मजात ब. अंजित

## 5.7 अभिप्रेरणा के गुण

१. अभिप्रेरणा में क्रियाशीलता होती है

२. अभिप्रेरणा साध्य तक पहुचने का मांग बताती है

३. अभिप्रेरणा साध्य न होकर साधन है

४. अभिप्रेरणा पर  शारीरिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है

५. अभिप्रेरणा से व्यक्ति का व्यवहार प्रभावित होता है

६. अभिप्रेरणा सीखने का मुख्य अंग न होकर सहायक अंग मात्र है

## 5.8 अभिप्रेरित करने की विधिया

कक्षा शिक्षण में प्रेरणा का अत्यंत महत्व है कक्षा में पड़ने के लिए विद्यार्थियों को निरंतर प्रेरित किया जाना चाहिए प्रेरणा की प्रक्रिया में वे अनेक कार्य करते है जिसके फलस्वरूप विभिन्न छात्रों का व्यवहार भिन्न हो जाता है

उदाहरणार्थ :सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाये ,पूर्व अनुभव ,आयु तथा कक्षा का वातावरण

अध्यापक विद्यार्थियों को सिखने तथा अभिप्रेरित करने के लिए निम्नलिखित विधियों और प्रविधियो का प्रयोग कर सकते है

१. संतोष और असंतोष:-हम उन आनंदायक अनुभवो की इच्छा करते है जिससे संतोष प्राप्त हटा है और कष्टदायक अनुभवो से बचने का प्रयत्न करते है ,जिनसे असंतोष प्राप्त होता है शिक्षक को आनन्दायक अनुभव देना चैये जिससे विद्यार्थी का संतोष मिले संतोष प्रेरणा ही विद्यार्थी को अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करेगी

२. उत्साहर्वधन :-शिक्षक को विद्यार्थियों का उत्साहर्वधन करने के लिए उनके कार्य पर पुरुस्कार प्रदान करने चाहिये पुरुस्कार विद्यार्थियों को पड़ने के लिए उत्साहर्वधन में सकारात्मक प्रभाव डालते है शिक्षक को ध्यान रखना चाहिए कि वह पुरूस्कारो का प्रयोग इस प्रकार करें कि अपनी भूमिका पूरी करने के पश्चात वह विद्यार्थियों को इस प्रकार प्रेरित कर सके कि उसकी स्वतन्त्र रूप से घर पर पड़ने की रूचि बनी रहे

३. प्रंशसा को सुद्रढ़ करना :- विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने में प्रशंसा अधिक प्रभावशाली होती है प्रेरणा की यह सुद्रढ़ता  व्यक्तिगत विद्यार्थियों में भिन्न भिन्न होती है उचित अवसर पर ही प्रशंसा का प्रयोग करना चाहिए विद्यार्थियों के प्रत्येक कार्य पर करने की आवश्यकता नहीं इसमें प्रेरणा शिथिल हो जाती है

४. प्रतियोगिता :- पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओ में प्रतियोगिता प्रेरणा एक विशिष्ट साधन है विधालय में अध्यापक विर्थाथियो के मध्य प्रतियोगी कार्यक्रमो के माध्यम से प्रेरणा प्रदान कर सकता है

५. सहयोग :-सहयोग भी प्रेरणा का महत्वपूर्ण साधन है सहयोग की भावना पर ही समूहों का र्निमाण होता है सहयोग द्वारा सम्पूर्ण कक्षा को अध्धयन में व्यस्त रखा जा सकता है

६. नवीनता :-किसी विषय के नवीन तथ्यों का उद्घाटन कर अध्यापक विद्यार्थियों में विषय के प्रति उत्सुकता और रूचि उत्पन्न कर सकता है अध्यापक को नवीनता का लाभ प्राप्त करने के लिए नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से संबद्द कर  पडना चाहिए अध्यापक को विषय की व्याख्या भिन्न

भिन्न प्रकार से करनी चाहिए जिससे शिक्षण में नवीनता बनी रहे नवीनता का संचार होने से रूचि के भाव जागृत हो जाते है

७. लक्ष्य निंधारित करना :-अध्यापक को समस्त कक्षा के लिए ऐसे लक्ष्य निंधारित करने चाहिए जिनकी प्राप्ति सुगमता से हो सके ,सीखने में लक्ष्य का महत्वपूर्ण स्थान होता है यदि विद्यार्थी का लक्ष्य लाभप्रद है तो वह लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होगा और तुरंत मिलने वाले कम लाभ को छोड देगा

८. मानसिक तनाव से मुक्ति :- विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने के लिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनमे मानसिक तनाव उत्पन्न न हो फिर भी विद्यार्थियों के मष्तिष्क में यदि थोड़ी उत्सुकता हो तो वह समस्या समाधान में शीघ्रता करता है इसलिए अध्यापक को विद्यार्थियों में कुछ उत्सुकता उत्पन्न करनी चाहिए जिससे अभिप्रेरणा सरलता से हो सके

९. आर्दश :- विद्यार्थी अवलोकन और अनुकरण द्वारा सुगमता से सीखता है इसलिए विद्यार्थी को प्रेरित करने के लिए अध्यापक को आर्दश प्रस्तुत करना चाहिए जिसको देखकर विद्यार्थी अनुकरण कर सके ऐसे आर्दशो का प्रर्दशन श्रव्य व द्रश्य सामग्री के उपयोग से किया जा सकता है

१०. रूचियाँ :-विद्यार्थी जिस कार्य में अधिक रूचि लेता है उसमे अधिक अभिप्रेरणा होगी और अभिप्रेरणा से वह कार्य शीघ्र एवं भली भांति सिखा जा सकेगा अत शिक्षक को विद्यार्थियों कि रुचियों कि पहचान कर तदनुरूप शिक्षण कार्य करना चाहिए

११. कक्षा को अभिप्रेरित करना :- कक्षा में बाह्य एवं आंतरिक अभिप्रेरणा दोनों ही आवश्यक होती है बाह्य प्रेरणा का संबंध विद्यार्थियों के बाह्य वातावरण से होता है जबकि आंतरिक प्रेरणा का सम्बन्ध उनकी अभिरुचियो ,रुचियो ,दृष्टिकोण और बुधी आदि से होता है यह प्राक्रतिक अभिप्रेरणा होती है इसके लिए शिक्षण विधि कि आवशयकता का ज्ञान , आत्मप्रर्दशन का अवसर योग्यतानुसार देना चाहिए

## 5.9 अभिप्रेरणा के सिद्धांत

अभिप्रेरणा के प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित है

१. सांस्क्रतिक प्रतिमान के सिद्धांत :-इस सम्बन्ध में मनावशास्त्री समाजशास्त्री तथा मनो वेग्यानिको का मत है कि प्रतेयक बालक अपनी समूह संस्क्रति से प्रेरणा लेता है किसी भी प्रकार का प्राणी कही भी रहने पर वहाँ से प्रेरणा ग्रहण करता है समाज या समूह से प्रेरणा ग्रहण करने के पश्चात उसका व्यवहार भी समाज या समूह के अनुरूप रहता है जिन परिवारों में उच्च आर्दश या कठोर अनुशासन है .वहाँ पर स्नेह एवं अनुराग कि भवना अधिक पाई जाती है परन्तु ऐसे परिवार जहा बालको कि उपेक्षा कि जाती है ,उन्हें कठोर अनुशासन में रखा जाता है ,डाटा फटकारा जाता है वहाँ पर उनका स्वभाव चिडचिडा हो जाता है इससे उनमे आत्मविश्वास कि

कमी हो जाती है हर परिवार एवं समाज में मान्यता,आचार विचार आदि सभी प्रेरणा के प्रतिफल का परिडआम है

२. व्यवहार और सीखने का सिद्धांत:-व्यक्ति का व्यवहार उसकी आवश्यकता पर र्निभर करता है और सीखना भी इसी तथ्य पर आधारित है यदि व्यक्ति के व्यवहार द्वारा उसकी आवश्यकताऐ संतुष्ट नहीं होगी तो उसे कुछ सीखने की प्रेरणा नहीं मिलेगी सामाजिक आवश्यकताओ का सम्बन्ध भी उसके अनुभवों से होता है शारीरिक आवशयकताओ की पूर्ति के पश्चात साथ ही साथ सामाजिक आवश्यकताए एवं दायित्व भी जुड जाते है जिन्हें प्रेरणा आगे बढाती है

३. क्षेत्रिय सिद्धांत:- यह सिद्धांत र्कट लेविन (अमेरिका )की देन है उन्होंने स्थान विज्ञान से बड़ी सहायता ली है उनका कथन है की किसी परिस्थती विशेष में व्यक्ति का व्यवहार उन तत्वों द्वारा परिचालित होता है जो आस पास के वातावरण के बीच में कार्यरत रहते है यदि वातावरण के बीच में कार्यरत रहते है यदि वातावरण में उसे उत्साह मिलता है तो वह आश्वान बना रहेगा ,परन्तु भय पूर्ण वातावरण में उसे निराशा ही हाथ लगेगी

४. मूल परर्वती का सिद्धांत :-व्यक्ति के अंदर जो प्रेरक शक्ति कार्य करती है वह मूल परर्वती है मानवीय दृष्टि से यह सिद्धांत महत्वपूर्ण है मेक दूागल के अनुसार समस्त प्राणियों का व्यवहार मूल परर्वतियो द्वारा संचालित होता है उसने कहा है कि संवेगो का व्यक्ति कि मूल परर्वतियो के साथ बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है और मूल परर्वतियो का प्रकटीकरण संवेगो के रूप में होता है संवेगो के आधार परव्यक्ति में स्थायी भाव का र्निमाण होता है और चरित्र का गठन होता है

५. मनोविश्लेषण का सिद्धांत :-इस सिद्धांत के अनुसार मन कि निम्नलिखित तीन अवस्थाये मानी गयी है

अ. चेतन मन

ब.अचेतन मन

स.उपचेतन मन

इस सिद्धांत के प्रर्वतक फ्रयेदे एडलर तथा युंग है मनोविश्लेशन वादियो के अनुसार समस्त मनुष्यों के व्यवहारों का सञ्चालन अचेतन मन द्वारा होता है चेतन अवस्था में होते ही भी संस्कार हमारे अचेतन मन पर पडेंगे उसी के आधार पर ही हमारे चरित्र का र्निमाण होगा फ्रौएदे ने सेक्स को अचेतन मन का आधार माना है एडलर ने आत्म गौरव कि भावना को अचेतन मन का आधार मन है तथा युंग ने जातीय संस्क्रती को अचेतन मन का आधार मन है

## 5.10 अभिप्रेरणा कि विशेषताएं

१. प्रेरणा एक मनो शारीरिक एवं आंतरिक प्रक्रिया है

२. यह आंतरिक प्रक्रिया किसी आवश्यकता कि उपस्थति से उत्पन्न होती है

३. शरीर कि यह आंतरिक प्रक्रिया किसी कार्य कलाप कि और उन्मुख होती है जो आवश्यकता को संतुष्ट करती है

४. ड्रेवर के अनुसार प्रेरणा एक चेतन अथवा अचेतन प्रभावशाली क्रियात्मक तत्व है ,जो व्यक्ति के व्यवहार को किसी उद्देश्य कि और चालित करती है अतः व्यक्ति के अंदर यह एक चेतन अथवा अचेतन प्रभावशाली क्रियात्मक तत्व है जिससे उसके उद्देश्य पूर्ण होते है

५. मार्गन ने प्रेरणा को क्रिया का चयन करना बताया है अथवा निर्दिष्ट दिशा में कार्य करने कि तत्परता बताया

६. प्रेरणा जन्मजात अथवा अर्जित होती है

७. प्रेरणा के अंर्तगत सभी तरह के भीतरी तथा बाहरी उद्दीपक सम्मिलित हते जो प्राणी के व्यवहार को परिचालित करते है

८. प्रेरणा के अंर्तगत चालक का भी समावेश हो जाता है

९. चालक अथवा प्रोत्साहन से प्रेरणा का अधिकाधिक प्रभाव पड़ता है ,फलस्वरूपव्यक्ति सफलता कि और अग्रसर होता है

१०. यह शक्ति भीतर से जाग्रत होती है

११. स्वाभाविक और अर्जित मनोर्वतिया, जो प्राणी के व्यवहार को परिचालित करती है

१२. यह व्यक्ति कि वह अवस्था होती है जो किन्ही उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निर्देशित करती है

## 5.11 सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा की भूमिका

अभिप्रेरणा सीखने कि प्रक्रिया का एक सशक्त माध्यम है इस प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति जीवन के सामाजिक प्राक्रतिक एवं वैयेक्तिक क्षेत्र में अभिप्रेरणा द्वारा ही सफलता कि सीडी तक पहुच जाता है यदि उसके लिए उपयुर्क्त परिस्थितियों का निर्माण नहीं हो पता ,तो अभिप्रेरणा का उत्पन्न होना संदेह्प्रद रह जाता है सीखने कि प्रक्रिया में अभिप्रेरणा कि भूमिका का अध्ययन भी अति आवश्यक है

१. निश्चित उद्देश्य :- शिक्षक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों के समक्ष कार्य से सम्बन्धित समस्त उद्देश्य रख दे ,पुनः उन्हें स्पष्ट कर दे ताकि सीखने कि प्रक्रिया प्रभावशाली बन सके

२. आत्म अभिप्रेरणा :-उच्च आकांक्षाये ,स्पष्ट उद्देश्य तथा परिणामो का ज्ञान ,विद्यार्थी कि आत्म प्रेरणा के लिए प्रोत्साहन का कार्य करते है इनसे उन्हें आंतरिक प्रेरणा मिलती है छात्र ,शिक्षक के मार्गदर्शन में ही चारित्रिक विकास एवं आर्दश नागरिकता का विकास करना सीखते है

३. प्रशंसा और निंदा :-शिक्षक को सीखने कि परिस्थतियो में प्रशंसा और निंदा का प्रयोग बहुत ही बुद्दिमानी से करना चाहिए यहाँ उन्हें प्रशंसा और निंदा हेतु उनकी आयु तथा लिंग का ध्यान रखना चाहिए क्योकि जरा सी असावधानी से विद्यार्थियों का अहित हो सकता है

४. अभिप्रेरणा से ध्यान ,रूचि और उत्साह प्राप्त करना :-कक्षा में अधिगम प्रक्रिया को तीव्र करने के लिए प्राथमिक पूर्ति के रूप में अभिप्रेरणा आवश्यक है शिक्षक छात्रों में रूचि उत्पन्न कर ध्यान को केंद्रित कर देता है इस प्रकार रुचियो के बड़ने से अभिप्रेरणा में वृधि होती है फलस्वरूप नए कौशल ,उत्साह और संतोषप्रद परिणाम दृष्टि गोचर होते है

५. परिपक्वता :-यदि शिक्षक विद्यार्थियों कि आयु तथा मानसिक परिपक्वता के अनुरूप उन्हें कार्य दे तो सीखने कि प्रक्रिया प्रभावित होगी परिपक्वता एवं अभिप्रेरणा में समन्वय बैठाया जाय ओपचारिक अधिगम हेतु विद्यार्थी कि शारीरिक मानसिक ,संवेगात्मक और सांस्क्रतिक रूपसे परिपक्वता को देखा जायेगा

६. अभिप्रेरणा में दृष्टिकोण का महत्व :-अभिप्रेरणा दृष्टि कोण किन्ही विशेष परिस्थतियो में किसी व्यक्ति कि क्रियाओ का समूह होता है ये दृष्टि कोण ही अभिप्रेरणा को भाग देते है ये नए अनुभवो कि केवल तैयारी ही नहीं होते अपितु अनुभव प्राप्त करने के लिए सीमाएं भी र्निधारित करते है

## 5.12 सारांश

अभिप्रेरणा में ,व्यक्ति को लक्ष्य तक पहुचाने वाली शक्ति का नाम है कैली ने इसलिए कहा है – अभिप्रेरणा ,अधिगम प्रक्रिया के उचित व्व्यास्थापन्न में केंद्रीय कारक होता है किसी प्रकार कि भी अभिप्रेरणा सभी अधिगम में अवश्य उपस्थित रहनी चाहिए थाम्पसन के शब्दों में प्रेरणा छात्र में रूचि उत्पन्न करने कि कला है अतः शिक्षण –अधिगम कि प्रक्रिया में प्रेरणा का विशेष महत्व है

## 5.13 बोध प्रश्न

१. अभिप्रेरणा से क्या अभिप्राय है

२. अभिप्रेरणा के प्रकार के बारे में बताइये

३. अभिप्रेरणा के गुणों का र्वणन कीजिये

४. छात्र को अभिप्रेरित करने कि विधियों का र्वणन कीजिये

५. अभिप्रेरणा के सिध्दान्तो का विस्तारपर्ूवक र्वणन कीजिये

६. सीखने कि प्रक्रिया में अभिप्रेरणा कि भूमिका का र्वणन कीजिये

## 5.14 संर्दभ सूची


1. प्रो . सुरेश भटनागर डॉ. रामपाल सिंह (२००७/२००८) वर्तिक सुचना एवं वर्तिक निर्देशन ,अग्रवाल प्रकाशन दिल्ली
2. पाण्ड़े के.पी. (1987) शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के आधार अमिताश प्रकाशन, दिल्ली
3. शर्मा आर.ए. (2004) शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श आर लाल बुक डिपो, मेरठ
4. ओबराय एस.सी. (1996) शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श लायल बुक डिपो, मेरठ
5. अग्रवाल एजेण्सी (1989 द्ध एजुकेशन बुकेशनल गाइडैंस एंड काउंसलिंग एदेहली एदुआवा हॉउस

# इकाई - 6

# समायोजन

**इकाई की रूपरेखा**


6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 समायोजन की परिभाषाएं

6.3 समायोजन के लक्षण

6.4 समायोजन व्यक्ति की विशेषताएं

6.4.1 समायोजन के सोपान

6.4.2 समायोजन की मात्रा

6.5 समायोजन के प्रकार

6.6 समायोजन की प्रक्रिय

6.7 कुसमायोजन

6.7.1 कुसमायोजन के कारण

6.8 समायोजन कैसे हो?

6.8.1 प्रत्यक्ष संयोजन

6.8.2 रक्षा युक्ति युक्त

6.8.3 समायोजन प्रतिमान

6.9 समायोजन और निर्देशन

6.10 सारांश

6.11 बोध प्रश्न

6.12 संदर्भग्रंथ


## 6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- समायोजन का अर्थ समझ सकेंगे।
- समायोजन के लक्षण, सोपान, प्रकार, प्रक्रिया आदि समझ सकेंगे।
- समायोजित व्यक्ति के विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- कुसमायोजन का अर्थ व कारण समझ सकेंगे।

- समायोजन किस प्रकार किया जा सकता है।
- समायोजन में निर्देशन की भूमिका की जानकारी।

## 6.1 प्रस्तावना

जीवन में समायोजन का बहुत महत्व है। व्यक्ति की जब स्वाभाविकक इच्छा की पूर्ति नहीं होती तो धीरे-धीरे वह इस अप्रिय स्थिति से समझौता कर लेता है। इस समझौते को ही 'समायोजन' कहते हैं समायोजन एक ऐसी प्रक्रिया हैं जिसमें मानसिकक एवं व्यावहारिक दोनों ही प्रकार की प्रच्युत्तर निहित है। इसके द्वारा व्यक्ति, अभाव, तनाव, भग्नाषा आदि को व्यक्त करता है तथा आन्तरिकक अंगो एवं बाहय परिस्थितियों के मध्य सामजंस्य स्थापित करता है। यह सामजस्य स्थापना ही समायोजन है उदाहरण के लिए बच्चा नवीन पुस्तक चाहता है। माता-पिता अपनी कमजोर आर्थिक दशा के कारण पुस्तक दिलाने में असमर्थ हैं बच्चा अपनी पुरानी एवं फटी हुई पुस्तक से ही संतोश अनुभव करता है। और शांत व प्रसन्न रहता है।

## 6.2 समायोजन की परिभाषाएँ

**(1)** **आइजनेक (**1972) : और उनके साथियो के अनुसार, ''समायोजन वह अवस्था है जिसमें एक ओर व्यक्ति की आवश्यकताएं दूसरी और वातावरण के अधिकारों में पूर्ण संन्तुश्टि होती है अथवा यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा इन दो अवस्थओं में सामंजस्य प्राप्त होता है।''

**(2)** **बोरिग, लैंगफील्ड तथा वैल्ड के शब्दों में** ''समायोजन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में संतुलन बनाए रखता है।''

व्यक्ति को जब तनाव, संघर्ष तथा भग्नाषा (मस्तिष्क की विभिन्न तनावपूर्ण अवस्थाएँ) घेर लेते है, तो जीवन-प्रेरणा इस तनावपूर्ण संघर्ष की स्थिति को समाप्त करके जीवन को निरन्तरता देने के लिए समायोजन द्वारा मानसिक, संन्तुलन, शांति और संतोश को बनाए रखने का प्रयत्न करती है। जीवन प्रवाह में परिस्थितियों के साथ अनूकूलन तथा समायोजन द्वारा निरन्तर वृद्धि होती रहती है। अत: व्यक्ति को मानसिक शांति, सन्तुलन और संतोश बनाए रखने के लिए समायोजन अति आवश्यक है।

## 6.3 समायोजन के लक्षण

समायोजन करने वाले व्यक्ति में निम्नांकित लक्षण पाये जाते हैं -

1. परिस्थिति का ज्ञान, नियंत्रण तथा अनुकूल आचरण
2. संतुलन
3. पर्यावरण तथा परिस्थिति से लाभ उठाना
4. समाज के अन्य व्यक्तियों का ध्यान
5. संतुष्टि एवं सुख

6. सामाजिक आदर्श चरित्र, संवेगात्मक रूप से उपस्थिति संतुलित तथा दायित्वपूर्ण

7. साहसी एवं समस्या समाधान युक्त

**गेट्स ने कहा -**

समायोजित व्यक्ति वह है जिसकी आवश्यकतायें एवं तृप्ति सामाजिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की स्वीकृति के साथ संगठित हो।

## 6.4 समायोजित व्यक्ति की विशेषताएँ

जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं तथा उन आवश्यकताओं की परिस्थितियों के बीच संतुलन स्थापित कर लेते है। उनके एकीकृत विकास होता हैं व्यक्ति इन दोनों तत्वों के मध्य संतुलन स्थापित कर पाया है अथवा नही इसकी जाँच नीचे लिखे बिन्दुओं के आधार पर की जा सकती है -

**संतुलित व्यक्तित्व -**

जो व्यक्ति अपने जीवन में आवश्यकताओं तथा वातावरण में मधुर सामंजस्य स्थापित कर लेते है उनके व्यक्तित्व का विकास संतुलित रूप से होता है। व्यक्तित्व विकास के कई आयाम होते है । व्यक्तित्व विकास में सभी आयामों का एक साथ प्रभाव पड़ता है तभी वह संतुलित विकास कर समाज में समायोजित होता है।

**तनाव में कमी :-**

मानसिक रोग तनाव की अधिकता का परिणाम है। तनाव के कारण व्यक्ति व्यवहारों असामान्यताएँ आती है। अत: इन्हें कम करना चाहिये। वैसे तो इस जटिल समाज में कोई भी व्यक्ति तनाव से अछूता नहीं रह सकता है, किंतु इसे कम किया जा सकता है। समायोजित व्यक्ति विभिन्न उपायों से तनाव को कम करते हैं।

**आवश्यकता व पर्यावरण में सामंजस्य -**

समयोजित व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं तथा पर्यावरण में सामंजस्य बनाये रखता है। वह पर्यावरण के अनुसार ही अपनी आवश्यकताओं का हल तलाश करता है और उसी के अनुसार आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है, वह दो प्रकार से परिस्थिति में समन्वित सम्बन्ध बनाये रखने प्रयास करता हैं - पहली स्थिति में व्यक्ति के ऊपर आश्रित समायोजन होगा और दूसरी स्थिति में वातावरण पर आश्रित व्यक्ति होगा, तभी वह अपनी आवश्यकताओं में तद्रूप करता रहता है ताकि उसे अधिक बाधाओं व अधिक तनाव का सामना न करना पडें।

### 6.4.1 समायोजन के सोपान -

**समस्या का अंकन -**

व्यक्ति के समक्ष जब कोई आवश्यकता उत्पन्न होती है तो उससे सम्बन्धित समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है, वह उन समस्याओं को एक विशिष्ट वर्ग में रखकर उसके समाधान के लिये क्षेत्र का चयन गंभीरता से करता है।

**निर्णय शक्ति -**

समस्या के समाधान हेतु आवश्यक समाधानी की सूची तैयार की जाती है और प्रत्येक समाधान का आवश्यकता के अनुरूप मूल्याकंन किया जाता है।

**क्रियान्वयन -**

समुचित समाधान के सम्बन्ध में निर्णय लेकर उस समाधान को प्राप्त करने के बाद व्यक्ति प्रतिक्रियाएँ प्रारंभ कर देता हैं । उसे जो भी कठिनाइयाँ आती है उसके अनुसार वह अपनी क्रियाओं में आवश्यक संषोधन भी करता रहता है।

### 6.4.2 समायोजन की मात्रा -

व्यक्ति विभिन्न आवश्यकताओं तथा उनसे सम्बन्धित पर्यावरण के साथ अलग-अलग स्तर पर समायोजन कर पाता है। कुछ व्यक्ति प्राय: सभी आवश्यकताओं के साथ सफलतापूर्वक समायोजन कर पाते है, जबकि दूसरी तरफ सफलतापूर्वक समायोजन नहीं कर पाते। समायोजन की सीमा तथा स्तर अनुसार समायोजन के चार स्तर होते है।

**समायोजन प्रतिक्रियाएँ -**

ये प्रतिक्रियाएँ वे होती है जो व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा पर्यावरण के साथ पूर्ण एवं सफल समायोजन को प्रदर्शित करता है। इससे वह अपने वांछित उद्देश्य को प्राप्त कर कुंठाओं से बच जाता है।

**आंषिक समायोजन प्रतिक्रियाएँ -**

जब व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं तथा वातावरण के साथ असफल होकर कल्पना लोक में समायोजन करता है तो वह आषिंक समायोजन कहलाता है। दिवास्पप्न की प्रतिक्रिया है।

**असमायोजन प्रतिक्रियाएँ -**

स्पष्ट है कि इस उद्देश्य की संप्राप्ति पर विद्यार्थी अर्जित ज्ञान का प्रत्यास्मरण तथा पुनर्पहिचान करता है। इससे संकरण रखने की योग्यता पर विशेष बल मिलता है अत: उद्देश्य प्रत्येक यदि लम्बे समय तक ऐसी क्रियाएँ तथा व्यवहार करता रहे जिसके कारण उसकी आवश्यकताओं व वातावरण के बीच मधुर सामंजस्य स्थापित न हो सके तो वह स्थिति असमायोजनन की कहलाती है।

**कुसमायोजन प्रतिक्रियाएँ -**

जब व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं तथा वातावरण के साथ त्रुटिपूर्ण या विरोधाभासी सामंजस्य करे तो उसे कुसमायोजन प्रतिक्रियाऐं कहते हैं। ये असामान्य व्यवहारों को जन्म देती है।

## 6.5 समायोजन के प्रकार

समायोजन के अर्थ के अनुसार बालकों का समायोजन मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है-

**(1)** **रचनात्मक समायोजन -** जब बालक किसी कार्य को करने या सफलता प्राप्त करने में कठिनाई अनुभव करता है, वह रचनात्मक कार्य करके सफलता प्राप्त करने का प्रयास कर सकता है। उदाहरण - के लिए एक बालक परीक्षा में पास होने में कठिनाई महसूस कर रहा है और उसका

समायोजन गड़बड़ा रहा है तो वह अधिक पढ़ाई करके षिक्षको की सहायता एवं अधिक मेहनत करके अधिक रचनात्मक कार्य करेगा।

**(2)** **मानसिक मनोरचनाएँ -** इसमें व्यक्ति अवांछनीय लक्षण को वांछनीय लक्षण के बढ़े हुए रूप के द्वारा बदल लेता है। इस मनोरचना के द्वारा वह अपनी हीनता व अनुपयुक्ता के लक्षणो से अपनी सुरक्षा करता है।

**(3)** **स्थानापत्र समायोजन -** जब बालक के सामने कठिनाई आती है और वह कठिनाई पर विजय प्राप्त करने के लिए स्थानापन्न प्रतिक्रिया करके समायोजन करता है। जैसे - एक छात्र अध्ययन नहीं कर पाने के कारण कक्षा में अध्ययन में कमजोरी महसूस करता है लेकिन वह अपनी कमजोरी को स्वीकार नहीं करके उसको दूसरों पर प्रतिस्थापित कर देता है। उदाहरण के लिए शिक्षक बहुत छुट्टी लेते है और कक्षा में पढ़ाते नहीं है।

बालक अपनी कठिनाइयों को मुख्य रूप से तीन प्रकार से प्रकट करता है -

**(1)** **सुलह -** इसमें बालक जब अपना लक्ष्य प्राप्त करने में कठिनाई महसूस करता है तब वह कठिनाई पर विजय प्राप्त के लिए सुलह कर लेता है। जैसे - एक बालक की इच्छा है कि वह आइसक्रीम खाए लेकिन उसके पास पैसे नहीं है। इसलिए वह परिवार में उस व्यक्ति से प्रार्थना करेगा जिससे कि उसको पैसा मिल सके।

**(2)** **आक्रामक व्यवहार -** बालक कभी-कभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए आक्रामक व्यवहार भी करते हैं। उदाहरण के लिए वह खाने की कोई चीज चाहता है। जब वह देखता है कि खुषामद से उसे वह चीज नहीं मिलेगी तो वह छीनकर प्राप्त कर लेता है अथवा रोकर भी चीज प्राप्त करने का प्रयास करता है।

**(3)** **कठिनाई से अपने को हटाना-** जब बालक के सामने कठिनाई आती है और वह यह देखता है कि उसको किसी भी तरीके से यह वस्तु प्राप्त नहीं होगी तो वह अपने आपको अलग हटा लेता है।

## 6.6 समायोजन की प्रक्रिया

समायोजन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। बालक जन्म के कुछ समय बाद ही वातावरण के साथ समायोजन करना सीखता हैं बालक की शारीरिक व मानसिक आवश्यकताएँ होती है, इन आवश्यकताओं के काण ही बालक क्रियाशील रहता है। यही उसके व्यवहार का कारण होता है। व्यक्ति बिना आवश्यकताओं या प्रेरणाओं के व्यवहार नहीं करता। बालक का व्यवहार इन आवश्यकताओं की पूर्ति वाले लक्ष्यों या साधनों की और उन्मुख होता है। बालक के लक्ष्य की प्राप्ति के साथ ही उसकी आवश्यकता की संतुष्टि हो जाती है।

बालकों के लिए लक्ष्य का चुनाव करना एक कठिन कार्य होता है क्योंकि बालको में अनुभवों की कमी होती है तथा उनकी शारीरिक व मानसिक योग्यताएँ भी सीमित होती है। बालको में योग्यता, अभिवृत्तियाँ, आकांक्षा-स्तर, लक्ष्य के मूल्य आदि पर निर्भर करता हैं कि वह लक्ष्य का चुनाव कैसे करे।

इन कारकों की मात्रा अधिक होने पर लक्ष्य का चुनाव ठीक से हो सकेगा। इनकी कमी के कारण लक्ष्य प्राप्त करने में समय अधिक लगता है। यदि बालक को बाधाओं पर सफलता प्राप्त हो जाती है तो निश्चित रूप से लक्ष्य प्राप्त हो जाता है और इस अवस्था में उसका समायोजन वातावरण के साथ अच्छा और सामान्य हो सकेगा।

## 6.7 कुसमायोजन

मानव जीवन विकास पर निर्भर है, जब उसे विकास में अवरूद्धता प्रतीत होती है, तो वह दु:खी हो जाता हे और असफलताओं को प्राप्त होता है, जिसे उसका कुसमायोजित व्यवहार माना जाता है। असामान्य व्यवहार को भी मनोवैज्ञानिकने ने कुसमायोजन माना है। जब कोई व्यक्ति सामान्य व्यवहार से गिरकर समाजीय व्यवहार प्रकट करने लगता है, तो उसे कुसमायोजन की संज्ञा दी जाती है। गेट्स व अन्य के अनुसार, ''कुसमायोजन, व्यक्ति और उसके वातावरण में असंन्तुलन का उल्लेख करता है।''

**कुसमायोजित व्यक्ति के लक्षण** :- जब कोई व्यक्ति स्वयं को समायोजन से गिरा देता है, तो उसके निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न हो जाते है -

1. कुसमायोजित व्यक्ति अपने को परिवेश के अनुकूल बनाने में असमर्थ होता है।
2. वह साधारण-सी बाधा उत्पन्न होने पर मानसिक सन्तुलन खो देता है।
3. वह असामाजिक, स्वार्थी और सर्वथा दु:खी होता है।
4. वह अनिश्चित मन वाला, अस्थिर बुद्धि वाला, संवेगात्मक रूप से असंन्तुलित अनिर्दिष्ट उद्देश्य वाला, घृणा, द्वेश एवं बदले की भावना वाला होता है।
5. स्नायुरोगों से पीड़ित, मानसिक द्वन्द्व एवं कुण्ठा से ग्रस्त तथा तनाव युक्त होता है।

**कुसमायोजन के मानसिक कारण** - जब व्यक्ति सामान्य से हटकर बताए करने लगता है, तो समायोजन की शक्ति का ह्रास होने लगता है। अत: विद्वानों में कुसमायोजन के मानसिक कारणों को निम्नलिखित भागों में बाँटा है -

(1) असंतोश या भग्नाषा या कुण्ठा
(2) मानसिक संघर्ष
(3) तनाव

### 6.7.1 कुसमायोजन के कारण

जैसा कि स्थान-स्थान हम कहते आये है- किसी भी समस्या का सर्वोतम समाधान यहीं है कि वह समस्या जिन कारणों में उत्पन्न हुई है, उन कारणों को मिटा दिया इस दृष्टि से कु-समायोजन या अ-समायोजन की समस्या का सर्वोतम समाधान भी यही होगा कि 'कु' या -'अ' समायोजन जिन कारणों से पनपा है, उन कारणों को दूर कर दिया जाय। कारणों की दृष्टि से कुसमायोजन के अनेक कारण हो सकते है। कभी इन कारणों का सम्बन्ध घर से होता है तो कभी पाठशाला से और कभी पाठशालायी या स वातावरण से, जहॉ विद्यार्थी रहता है। कभी विद्यार्थी स्वयं भी कुसमायोजन का सबसे बड़ा कारण होता है वह स्वयं ही

कहीं समायोजित नहीं हो पाता। इस दृष्टि से समायोजन का सम्बन्ध विद्यार्थी स्वयं और उसके वातावरण से होता है। इसे इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते है -

अनुकूल- समायोजन

व्यक्ति या बालक वातावरण

प्रतिकूल- कुसमायोजन

इस दृष्टि से कुसमायोजन का मूल कारण व्यक्ति या बालक का प्रतिकूल वातावरण है। वातावरण भी तीन प्रकार का हो सकता है -

(1) प्राकृतिक वातावरण

(2) भौतिक वातावरण

(3) सामाजिक वातावरण

इनमें प्राकृतिक पर्यावरण में सर्दी, गर्मी, वर्शा ऋतुएँ इनके कारण उत्पन्न सर्द-गर्म या नम जलवायु आदि सभी प्राकृतिक वातावरण के अन्तर्गत आते है। इनकी कमी या आधिक्य के कारण भी तमाम रोग पनप सकते है। अत:, ये भी कभी-कभी कुसमायोजन का कारण बन जाया करते हैं।

**भौतिक वातावरण** :- के साथ कुसमायोजन के अन्तर्गत घर और पाठशाला में पर्याप्त साधन-सुविधाओं का न मिल पाना है। कहों बैठने का स्थान नहीं है तो कहीं -मेज आदि का अभाव है। कहीं कक्षा में "यामपट्ट इतना चिकना हो गया कि उस पर कुछ लिखा ही नहीं जाता। शिक्षक और शाला-प्रधान सभी को कहकर देख लिया। कोई सुनता तक नहीं ऐसा वातावरण भी कुसमायोजन का कारण होता है।

**सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत पर -** पाठशाला और समाज के अन्य लोगों के पास्परिक सम्बन्ध आते हैं। यदि बालक कुसमायोजन का कारण विद्यार्थी का घरेलू वातावरण है तो उसे अभिभावको के साथ पारस्परिकक बातचीत के द्वारा ही सुलझाया जा सकता है। जहाँ तक पाठशाला वातावरण का प्रश्न है- उस वातावरण में विद्यार्थी के कुसमायोजन का कारण शिक्षक, उसके साथी, भौतिक परिस्थितियाँ, पाठ्यक्रम आदि कई बाते हो सकती है।

**इनमें, पुन: शिक्षक के सम्बन्ध में -**

1. शिक्षक का अभद्र व्यवहार :
2. शिक्षक द्वारा शिक्षार्थियों की भावनाओं का दबाया जाना।
3. षिक्ष का पक्षतापूर्ण रवैया,
4. शिक्षक द्वारा बच्चों की समस्याओं का उचित समाधान न कर पाना, तथा
5. शिक्षक का स्वयं का चरित्रवान न होना आदि कारण आते है।

**पाठशाला के वातावरण के अन्तर्गत -**

1. पाठशाला में साधन-सुविधाओं का न होना,
2. पाठशाला का उचित स्थान पर न होना,

3. पाठशाला में गंदगी होना,
4. पाठशाला में पर्याप्त भवन की कमी, आदि बातें आती है।

**पढ़ने वाले साथियों की दृष्टि से -**

1. साथियों का अधिक योग्य होना,
2. साथियों के पास अच्छे कपड़े और अधिक पुस्तकें आदि का होना।
3. साथियों द्वारा किसी साथी का बहिश्कार किया जाना।
4. साथियों के साथ बालक का विचार साम्य न होना आदि-प्रमुख है।

**इसी प्रकार पाठ्यक्रम की दृष्टि से -**

1. पाठ्यक्रम की अति सरलता या अति दुरूहता:
2. लचीलेपन का अभाव
3. विषय-वस्तु में जीवनोपयोगी का अभाव आदि आते है।

ये तो हुए कुसमायोजन के वे कारण जिनका सम्बन्ध वातावरण से है। आइये। अब उन कारणों पर विचार करें, जिनका सम्बन्ध विद्यार्थी स्वयं से है। ये कारण सामान्यतया वे ही कारण है, जिनका उल्लेख हमने अधिगम को प्रभावित करने वाले शिक्षार्थी से सम्बन्धित कारको के अन्तर्गत किया है। मोटे रूप में ये कारक हो सकते है -

1. आर्थिक हीनता के कारण, घर पर पर्याप्त साधन-सुविधाओं का न मिल पाना तथा उधर पाठशाला में गृहकार्य न करने हेतु शिक्षको द्वारा परेशान किया जाना।
2. संकोचशीलता।
3. किसी भी कारण से पनपी हीन भावना।

## 6.8 समायोजन कैसे हो

मनोवैज्ञानिकों ने समायोजन के दो सामान्य प्रकार स्पष्ट किये हैं -

1. प्रत्यक्ष संयोजन तथा (2) रक्षात्मक संयोजन प्रत्यक्ष संयोजन से तात्पर्य है कि असुविधाजनक अथवा तनाव युक्त परिस्थिति के विकल्प के रूप में व्यवहार करना तथा अपने उद्देश्य एवं क्षमता के मध्य की बाधा को हटाना। रक्षात्मक युक्ति युक्त संयोजन से तात्पर्य है कि व्यक्ति का विभिन्न तरीको से स्वयं को विश्वास दिलाना कि वस्तुत: वह भयभीत नहीं है, कोई समस्या भी नहीं है अथवा वे जिसे प्राप्त नहीं कर सकता उसकी इच्छा नहीं कर रहा है। रक्षात्मक युक्ति वस्तुत: अचेतन के द्वन्द्व के हल के रूप में एक प्रकार की आत्मवंचना है अर्थात् व्यक्ति किसी समस्या को चेतन स्तर पर लाकर प्रत्यक्ष रूप से उसका सामना करने में असमर्थ होता है। आइए संक्षेप में प्रत्यक्ष संयोजन तथा रक्षात्मक युकित पर विचार करें।

### 6.8.1 प्रत्यक्ष संयोजन

दबाव, निराशा अथवा द्वन्द्व के साथ समायोजन के लिय प्रत्यक्ष संयोजन के लिये तीन प्रमुख विकल्प हैं प्रथम व्यक्ति जिस परिस्थिति में निराशा का अनुभव कर रहा है, उस परिस्थिति को परिवर्तित कर देना। द्वितीय में व्यक्ति को स्वयं को परिवर्तित कर देना तथा तृतीय में परिस्थिति से स्वयं को दूर कर लेना। प्रत्यक्ष संयोजन के तरीके है -

(क) निराशा अथवा द्वन्द्व के साथ संयोजन के लिए सबसे अधिक प्रचलित तरीका समझौता करना है। जिमें द्वन्द्व के लिए उत्तरदायी विभिन्न पक्षों अर्थात् व्यक्ति की क्षमता, उद्देश्य तथा परिस्थिति में से थोड़ा थोड़ा त्याग करके एक समझौता करना पड़ता है।

(ख) जिन व्यक्तियों को बलात् समझौता करना पड़ता है वे क्रोध का अनुभव करते हैं, क्योकि मनोवैज्ञानिक यह अनुभव करते है कि व्यक्ति जन्मजात आक्रामक प्रवृति का होता हैं मनुष्य प्रकृतया स्वयं की प्रतिरक्षा करना चाहता है, अपनी वस्तु की रक्षा करना चाहता है तथा अपने शत्रु का विनाश करना चाहता है। इन सब उद्देश्यों की पूर्ति के मार्ग में जो भी बाधा आती है उसे आक्रामक तरीके से नष्ट करना चाहता है। किन्तु समाज इसके लिए अनुमति नहीं देता। अत: ठोकर मार कर, अपषब्द कहकर या कई तरीकों से अपनी निराशा को अभिव्यक्त करता है। आक्रामक व्यवहार की सफलता दो बातों पर निर्भर करती है। - प्रथम उद्देश्य व व्यक्ति के मध्य बालक कौन है? द्वितीय आक्रामकता की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि शत्रु शक्ति में व्यक्ति से कम हो।

**(ग) निवर्तन**

बहुत सी परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनके साथ प्रत्यक्ष संयोजन में निवर्तन ही सबसे प्रभावी तरीका होता है। विशेषत: जबकि हमारी दुष्चिन्ता तथा निराशा किसी अत्यन्त दबावपूर्ण घटना से जुड़ी हो। सामान्यत: निवर्तन का संबंधसमस्या का सामना करने के विशेध से लगाया जाता है। किन्तु जब व्यक्ति का प्रतिद्वन्द्वी उसकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है तक स्वयं को परिवर्तित करके या परिस्थिति को परिवर्तित कर किसीए एक समझौते पर पहुंचना पड़ता है।

### 6.8.2 रक्षा युक्ति युक्त

रक्षा युक्तियों को मानसिक युक्तियाँ भी कहा जा सकता है। दबाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया ही रक्षा की युक्तियां हैं। समय-समय पर व्यक्ति जीवन में तनाव, दबाव, द्वन्द्व, भग्नाषा तथा दुष्चिन्ता से घिर जाता हे। चेतन स्तर पर वह इन सबसे ऊपर निकलने का पूरा प्रयास करता है किन्तु हमेशावह इसमें सफल नहीं होता है जब उसका अचेतन अनेक प्रकार की रक्षा युक्तियाँ विकसित कर अपने विशिष्ट तरीकों से दबाव का सामाना करता है। व्यक्ति के 'स्व' की रक्षा कर व्यक्ति को सांवेगिक असंतुलन से बचाता है। इसलिये अचेतन स्तर की इन क्रियाओं को रक्षा युक्तियाँ कहा जाता है। बालक के मानसिक विकास में रक्षायुक्तियों की महती भूमिका है।

**रक्षायुक्तियों के प्रकार -**

कुछ प्रमुख प्रकार की रक्षा युक्तियों का परिचय यहाँ पर दिशा जा रहा है।

**प्रतिक्रिया विधान :-**

किसी ऐसे व्यवहार के नियमित ताने बाने का दृढ़ बन जाता तो किसी प्रबल अचेतन प्रवृति का प्रत्यक्ष विरोधी हो। जैसे डर को दबान या उसे इंकार करने के लिये व्यवहार का आक्रामक बन जाना।

समायोजन की यह महत्वपूर्ण रक्षा युक्ति दुखद अनुभव को कम कर व्यक्ति के 'स्व' की रक्षा करती है। अचेतन की अवांछनीय इच्छाओं को दमित कर श्रेष्ठ विचारों को प्रतिक्रिया विधान का अपनाना एक अच्छी रक्षा युक्ति है उदाहरणार्थ यदि घृणा के स्थान पर प्रेम का उदय हो। किन्तु यदि अत्यधिक आक्रामकता, अधिक श्रेष्ठ होने की भावना, अत्यधिक विकृत विकास हो तो यह मानसिकक विघटन तथा मानसिक रूग्णता के लक्षण होते है।

**प्रक्षेपण -**

व्यक्ति अपनी विशेषताओं, अभिवृतियो, अस्वीकृत इच्छाओं, कमियाँ आदि को दूसरे पर आरोपित कर देता है। किसी वस्तुनिष्ठ उद्दीपन को अपनी इच्छाओं, अभिवृतियों आदि के अनुसार ही देखना तथा उसकी वैसी व्याख्या करना प्रेक्षपण के अन्तर्गत आता है। इस रक्षा युक्ति का आवश्यकता से अधिक प्रयोग व्यक्ति को कुसमायोजित व्यक्ति के रूप में परिवर्तित कर देता है।

**दमन :-**

इस रक्षा युक्ति में व्यक्ति का अहं उसके चेतन मन को अवांछनीय लगने वाले तथा उसके आदर्षो का विरोध करने वाले विचारों व इच्छाओं आदि को अचेतन मन में ढकेल देता है। जहॉ वे क्रियाशील रहते हुए उसके व्यक्तित्व को अस्वीकार ही नहीं करता अपितु उनकी सत्ता से ही इन्कार कर उन्हे चेतन स्तर पर नहीं आने देता। दुखद एवं अवांछनीय इच्छाओं और अनुभवों को भूलना ही अच्छा है। ऐसी स्थिति में दूमन की रक्षा युक्ति उपयुक्त है।

**स्थिरता -**

स्थिरता से तात्पर्य है - किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष के प्रति अतिषय लगाव तथा उसे लम्बे समय तकबने रहना। उदाहरणार्थ - एक बालक बाल्यकाल में अच्छी पोषाक के अभाव के फलस्वरूप उसके प्रति विशेष लगाव रखते हुए अच्छी पोषाक के प्रति स्थिरण का विकास कर लेता है अपने वयस्क जीवन में आवश्यकता से अधिक शौक अच्छी पोषाक के लिये पैदा कर लेता है। इस रूप में यह रक्षा युक्ति कुसमायोजन को ही अभिव्यक्त करती है। किन्तु सीमित रूप में इस रक्षा युक्ति का प्रयोग दमित इच्छाओं के चतन स्तर पर आकार व्यक्ति को उपहास पात्र बनाने से उसकी रक्षा करती है।

**यथार्थ का अस्वीकार -**

व्यक्ति यथार्थ स्थित को स्वीकार नहीं करता है यथा किसी व्यक्ति का अत्यन्त दुखद घटना को सुनकर अचानक अचेत हो जाना अर्थात् उसका चेतन परिस्थिति को यथार्थता को स्वीकार करने का तैयार नहीं है। इस रक्षा युक्ति के निम्न प्रकार होते है।

**(क) दिवास्वप्न** - दमित या भग्न अभिलाशाओं की अनुचित संतुष्टि के प्रयास में व्यक्ति का जागृत में विविधर अनियन्त्रित कल्पनाओं अथवा निष्प्रोयोजन चिन्तन में ही डूबे रहना दिवास्वप्न है।

इस प्रकार व्यक्ति यथार्थ ही संघर्षपूर्ण स्थिति में बचा रहता है। ये दो प्रकार के होते है- एक तो विजेता के रूप में, दूसर कष्ट सहन करने वाले के रूप में। अपनी क्षमता के अनुसार भविष्य के लिये चिन्तनशील दिवास्वप्न व्यक्ति में साहस व आशा का संचार करता है। इसके अतिरिक्त अव्यावहारिकक दिवा स्वप्न व्यक्ति को निराशा व असफलता की ओर ले जाते है। जिसमें समायोजन के अवसर न्यूनतम होते है। व्यक्ति अपने आप में उलझकर, सिमटकर, जीवन की वास्तविकताओं से परे हो जाता है। यह स्थिति व्यक्ति को मनस्ताप तथा तंत्रिका ताप की और ले जाती है।

**(ख) प्रतिगमन :-** इससे तात्पर्य हैं आन्तरिक या बाह्य संघर्शो से किसी प्रवृति, आवश्यकता या लक्ष्य में बाधा पढ़ने के कारण मानसिक शक्ति के स्वाभाविक प्रवाह का उलट जाना। जिससे उसकी अभिव्यक्ति पूर्व के स्तर के व्यवहार के अनुरूप हो जाती हे। यथार्थ पलायन के लिये जब व्यक्ति अपनी आयु के अनुकूल व्यवहार करता है तथा अपनी आयु के अनुसार अपने उतरदायित्वों से अपने आपको दूर लेता है। यथा-जीवन की यर्थार्थताओं का सामना करने में अक्षम वयस्क व्यक्ति बालको अथवा किशोरों के समान व्यवहार करने लगे।

**(ग) निशेध प्रवृत्ति -** यह रक्षा युक्ति यथार्थता से पलायन की एक अन्य युक्ति है जिसके अन्तर्गत दूसरे के सुझाव का बिना किसी प्रत्यक्ष अथवा वस्तुनिष्ठ कारण के ही सदैव प्रतिरोध करने की प्रवृति को रखा जा सकता है। कठोर और और अमनोवैज्ञानिक व्यवहार बालक में इस प्रकार की रक्षा युक्ति का विकास करने में सहायक होते है।

**क्षतिपूर्ति :-**

इसमें व्यक्ति अपनी कमियों को दूर करने का प्रयास करता है। एक व्यक्ति किसी एक क्षेत्र में असफल रहने पर दूसरे क्षेत्र में सफलता के लिए प्रयत्न करता है। यह रक्षायुक्ति यक्ति को हीन भावना से होने वाली क्षति से बचाती है। अपनी कमियों को सृजनात्मक कार्यो द्वारा दूर करने की दृष्टि से वह स्वस्थ रक्षायुक्ति हैं किंतु यह रक्षा युक्ति यदि मात्र मानसिक रूप में होती है तो हानिप्रद है क्योंकि अपनी कमियों को दूर करने के लिए व्यक्ति वैचारिक स्तर पर ही सीमित हो जाता है उसे व्यवहार में परिणित नहीं करता।

**उदात्तीकरण -**

आदिम प्रवृतियों की शक्तियों को सामाजिक दृष्टि से उपयोगी लक्ष्यों की और दिषांतरित कर उन्हे परिश्कृत रूप देने की अचेतन प्रक्रिया ही उदात्तीकरण है। इसमें दमित इच्छाये वांछनीय रास्तों की और प्रवृत्त हो जाती है जिससे व्यक्ति की विभिन्न ग्रंथियों व निराशाओं का शोधन हो जाता है। व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण के लिए यह महत्वपूर्ण रक्षायुक्ति है।

**युक्तिकरण :-**

इस युक्ति में व्यक्ति अपनी असफलताओं व निराशाओं को तार्किक आधार पर अभिव्यक्ति देकर अपने अहं (इगों) की तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा करता है। जीवन में समायोजन व संतुश्ट रहने के लिए यह रक्षायुक्ति उपयोगी है किंतु इसके अधिकतम उपयोग से व्यक्तित आत्मवंचना का शिकार होता है। अर्थात् ढोंगी हो जाता है। उसकी कथनी और करनी में अंतर होता है और विश्वसनीय नहीं होता।

**तादात्मीकरण -**

इसमें व्यक्ति अपने को किसी अन्य व्यक्ति या समूह से इतना अधिक संबद्ध कर लेता है कि वह उसके मूल्यों, आदर्षो, मान्यताओं और व्यवहार के तौर तरीकों को अपना ही समझने लगता है। इस प्रकार जो कार्य वह स्वयं नहीं कर पाता उसे व्यक्ति विशेष द्वारा पूरा होते देखकर आत्म संतोश अनुभव करता है। जैसे लड़का पिता के साथ तथा लड़की माता के साथ स्वयं को संबद्धित कर लेती हैं वस्तुत: यह अनुसरण नहीं है। क्योंकि अनुसरण चेतन पर होती है। इस रक्षायुक्ति का उद्देश्य व्यक्ति की स्वयं की व दूसरों की दृष्टि में अपने आत्म सम्मान की रक्षा करना व आत्मसम्मान की बढ़ाना है। यह तादात्मीकरण व्यक्तियां, विचारों तथा संस्थाओं के साथ हो सकता है।

**विस्थापन -**

इसमें व्यक्ति किसी अभिप्रेरक के संतुश्ट न होने अथवा किसी प्रयत्न वे विफल हो जाने से उत्पन्न आक्रामक तथा शत्रुतापूर्ण भावनाओं को उम दुश्चिताजनक मूल स्थिति या व्यक्ति से हटाकर अनजाने की उसमें एकदम असंबद्ध किसी अन्य व्यक्ति या स्थिति पर केंन्द्रित कर देता है। उदाहरणार्थ बालक अपने से बड़ो से मार खाकर छोटों को मारता है। अथवा खिलौने तोड़ देता है। इसमें मानसिक तनाव से मुक्ति थोड़े ही समय के लिए होती है। अत: इस युक्ति का सीमित उपयोग ही उपयुक्त है।

**विपर्याय -**

इस रक्षायुक्ति का अर्थ है कि दमन की गई मनोग्रंथि की किसी प्रभावक द्वारा अर्थात शारीरिक लक्ष्णों द्वारा अभिव्यक्ति। शारीरिक लक्षण दमन की गई मनोग्रंथि की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होते हे जिससे दमित इच्छा की परोक्षत: तृप्ति होती है। इसमें व्यक्ति पक्षाघात, जी घबराना, सिर दर्द, हिस्टीरिया आदि शारीरिक लक्षणों के माध्यम से जीवन की कठोर वास्तविकताओं से स्वयं की रक्षा के प्रयास में मानसिक अस्वस्थता के स्थान पर शारीरिक, अस्वस्थता को स्वीकार कर लेता है। जिसे अपने मित्रों व निकटस्थ संबंधियों में सहानुभूति प्राप्त कर अपने आप को सुरक्षित व महत्वपूर्ण समझकर संतुश्ट हो जाता है। विपर्याय का एक सीमा से अधिक उपयोग मानसिक असंतुलन का कारण हो सकता है।

**बौद्धिकीकरण -**

इस रक्षायुक्ति में व्यक्ति वैयक्तिक घटना का सामान्यीकरण कर समायोजन करता है। उदाहरणार्थ किसी दु:खद घटना घटन पर उसे ईश्वरच्छा कहकर अपने दु:ख को कम करना चाहता है। किंतु इस युक्ति की अधिकता से आत्मवंचना भी संभव है जो मानसिक अस्वस्थता व कुसमायोजन की द्योतक है। किंतु यदि आत्मवंचना न हो तो यह युक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसी के माध्यम से श्रीकृश्ण द्वारा अर्जुन को कर्तव्यषोध कराने का प्रमाण उपलब्ध है।

### 6.8.3 समायोजन प्रतिमान -

समायोजन हेतु मनोवैज्ञानिको ने अपने अपने सिद्वांतों के आधार पर समायोजन प्रतिमान प्रस्तुत किए हैं। प्रतिमान वस्तुत: मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगों के आधार पर प्राप्त सिद्वांतो में परस्पर संबंधस्थापित करना है। प्रतिमानों में पूर्णता तथा विस्तार की दृष्टि से भिन्नता हो सकती है। समायोजन की दृष्टि से इस अध्याय

में तीन प्रतिमान प्रस्तुत किए जा रहे हे। प्रत्येक प्रतिमान का वहॉ प्रतिमान के मूलभूत सिद्वात तथा मनोवैज्ञानिक विचारों पर प्रभाव के संदर्भ में किया जा रहा है।

**मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान -**

यह प्रतिमान सिगमंड फ्रायड के कठिन परिश्रम का परिणाम है। यह प्रतिमान अत्यंत जटिल है। किंतु जटिल होने के पास ही सुव्यवस्थित भी है।

**मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान के प्रमुख सिद्धांत -** इस प्रतिमान के प्रमुख सिद्धान्त निम्न है।

**(क) इड, अहम् तथा पराअहम् -**व्यक्तित्व में अंतर्निहित इन तीनों उपविधानों की परस्पर अंतक्रिया पर ही व्यक्ति का व्यवहार आधारित होता है।

**(ख) दुश्चिंतताता, रक्षायुक्तियाँ तथा अचेतन :-** दुश्चिंतताता दुश्चिंतता मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान में महत्वपूर्ण हैं फ्रायड के अनुसार तीन प्रकार की दुश्चिंतताता होती है यथार्थ व्यक्ति के आंतरिक विघटन के लिए भयावह चेतावनी होती है। प्राय: अहं तर्कसम्मत उपायों की सहायता से दुश्चिचंतता को दूर करने के लिए समायोजन करता हैं। तर्कसम्मत उपायों के असफल होने पर रक्षायुक्तियों की सहायता से दुश्चिंतताता से समायोजन करता है। दूसरा महत्वपूर्ण तत्व इस प्रतिमान में अचेतन का है। फ्रायड के अनुसार अचेतन की अपेक्षा चेतन, मस्तिष्क का एक छोटा सा भाग है। फ्रायड ने पानी में डूबे हिम खंड से चेतन व अचेतन की तुलना की हैं व्यक्ति अचेतन सदैव अभिव्यक्ति के अवसर खोजता रहता है तथा कल्पना एवं स्वप्न की सहायता से अभिव्यक्ति देता है।

**(ग) मनोयौनात्मक विकास :-** फ्रायड के अनुसार व्यक्ति का विकास विभिन्न चरणों में होता है। प्रत्येक योन आनंद की विशिष्टता लिए हुए होती है। फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व के विकास की निम्न अवस्थायें होती है :

गुद अवस्था मौखि, लिंग अवस्था काम प्रसुप्ति काल, अजनांगिक है। इसके अलावा इस प्रतिमान के अन्य मुख्य तथ्य निम्न है :-

**(क) एकीकरण का कारक (स्व) -** मनुष्य का ''स्व'' मनोविश्लेषणवादियों के अहं से ही सादृश्यता नहीं रखता है अपितु इस ''स्व'' के अंतर्गत व्यक्ति की आत्मानुभूति की क्षमता, संसार के साथ व्यक्ति का संबंध आत्म मूल्याकंन व निरंतर आत्मपूर्णता की प्रवृति भी सम्मिलित की गयी है। मानवतावादी मनोवैज्ञानिको में कार्ल रोजर्स ने ''स्व'' की अवधारणा को व्यवस्थित रूप से विकसित किया है। सारांश रूप से 'स्व' की धारणा निम्न प्रकार है -

(i) 'मै और मेरा अपना' को केंद्रीकृत करके प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक निजी नैयक्तिक संसार होता है।

(ii) ''स्व'' के अनुरक्षण, वृद्धि तथा पूर्णता के प्रति प्रत्येक व्यक्ति प्रयासरत करता है।

(iii) किसी भी प्रेरक के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया का आधार उसकी ''स्वधारणा'' तथा संसार के प्रति उसका दृष्टिकोण होता है।

(iv) ''स्व'' की क्षति की सम्भावना का प्रत्यक्षीकरण ही ''स्व'' की रक्षायुक्तियों का आधार होता है।

(v) व्यक्ति की आंतरिक प्रवृतियों स्वयं की पूर्णता तथा स्वास्थ्य की और उन्मुख होती है।

(vi) सामान्य परिस्थितियाँ में व्यक्ति तर्क सम्मत व सृजनात्मक व्यवहार ही करता है।

**(ख) वैयक्तिक विकास एवं जीवन मूल्य -** मानवतावादी प्रतिमान में सार्थक जीवन जीने के लिए तथा व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशन देने के लिए जीवन मूल्यों तथा मूल्यों के विकल्प चयन की प्रक्रिया का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह विचार व्यक्ति के साथ समाज के लिए भी कार्यान्वित किया जा सकता है।

**(ख) मानव सामश्र्य तथा मानव प्रकृति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण** :- मानतावादी प्रतिमान में साथ्रक जीवन जीने के लिए तथा व्यक्तिके व्यवहार को निर्देशन देने के लिए जीवन मूल्यों तथा मूल्यों के विकलप चन की प्रक्रिया का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह विचार व्यक्ति साथ समाज के लिए भी कार्यान्वित किया जा सकता है।

**(ग) मानव सामश्र्य तथा मानव प्रकृति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण** :- मानवतावादी मनोवैज्ञानिको का विश्वास है कि सृजनात्मक, सहकारितापूर्ण तथा सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार के लिए अनुकूल परिस्थितयाँ होने पर मानव की क्षमतायें सकारात्मक रूप से क्रियाशील होती है, क्योंकि मनुष्य निश्क्रिय स्वचालित व्यक्तित्व है। वैयक्तिक रूप से अपने तथा अपने समाज के भाग्य निर्माता के रूप में व्यक्ति को जीवन को आकार प्रदान करने की स्वतंत्रता भी है। वह अपने जीवन की दिशा निर्धारण तथा समाज के प्रति अपने सक्रिय योगदान देने के लिए स्वतत्रब हैं

**मानवतावादी प्रतिमानी का मनोवैज्ञानिक विचारों पर प्रभाव :**

मानवतावादी प्रतिमान के अनुसार मनोनिदान वैयक्तिक वृद्धि व विकास में बाधक व अवरोधक होता है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए निम्नलिखित आधार मानवतावादी मनोवैज्ञानिकां द्वारा प्रस्तुत किए गए है। -

- अहं द्वारा रक्षायुक्तियों का अधिकता से प्रयोग
- दोषपूर्ण अधिगम तथा प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियाँ।
- अत्यंत दबाव व तनाव की स्थितियाँ।

**मानवतावादियों के प्रतिमान की आलोचना :-**

इसकी आलोचना मानवतावाद के सिद्धांतो का बिखराव, सिद्धातों के प्रतिपादन में वैज्ञानिक नियमबद्धता, परिश्रम व संयम का अभाव तथा मनोविज्ञान से अधिकाधिक अपेक्षाओं के कारण की जाती है।

## 6.9 समायोजन और निर्देशन

कुसमायोजन के वास्तविक कारणों को जानने के पश्चात अब सरलता से निश्चित किया जा सकता है कि समायोजन किस प्रकार किया जाय? समायोजन के लिए आवश्यक है कि या तो बालक स्वयं को बदले या फिर वातावरण को बदला जाय। किन्तु, वातावरण को बदलना संभव ही नहीं। न तो हम प्रकृति पर ही

नियत्रंण कर सकते है और न ही अन्य लोगों को बदल सकते है। पाठशाला की स्थिति और परिस्थितियां को भी बदलना किसी के लिए संभव नहीं। इस दृष्टि से कुसमायोजन का केवल एक ही रास्ता शेष बचता है और वह रास्ता है विद्यार्थी स्वयं को वातावरण के अनुरूप बदलने का प्रयास करे। स्वयं को वातावरण की परिस्थितियों के अनुरूप बदलने का कार्य तो उस विद्यार्थी का है जो स्वयं को पाठशालायी या घरेलु परिस्थितियों में समायोजित नहीं कर पा रहा है। किन्तु, विद्यार्थी स्वयं अपनी भावनाओं को परिवर्तित नहीं कर सकता। विद्यार्थी स्वयं अपनी भावनाओं को परिवर्तित नहीं कर सकता। विद्यार्थी की भावनाओं में परिवर्तन का प्रयास तो शिक्षक को ही करना पड़ेगा।

उन्हीं को हम इस प्रकार कह सकते है कि विद्यार्थियों की कुसमायोजन की समस्या को सुलझाने हेतु शिक्षक को चाहिए कि वह -

1. विद्यार्थिया की भावनाओं को दमित न करे - उनकी बात को ध्यान से सुने और घृणा, क्रोध, भय आदि के स्थान पर प्रेम से बात करें।
2. शिक्षक विद्यार्थियों को अपनत्व दे, ताकि वे भी पाठशाला को अपना समझे।
3. विद्यार्थियों धनात्मक अभिवृत्ति का विकास किया जाय, अर्थात् उनमें यह प्रवृति डाली जाय कि वे खराब से खराब व्यक्ति, परन्तु स्थान या परिस्थिति में अच्छाई खोजने का प्रयास करें, उसकी कमियों की और न देखे। जहॉ कमियां है, वहॉ अच्छाइयाँ भी और जहाँ अच्छाइया है, वहॉ कमियाँ भी। केवल प्रतिशत का अन्तर होता है। किसी की कमियां को खोजना और उनका अपने साथ सम्बन्ध जोड़ना कुसमायोजन का सबसे बड़ा कारण है। और किसी में अच्छाइयों को खोजनकर उनके साथ अपना सम्बन्ध बिठाना कुसमायोजन को दूर करने का या सुमायोजन का सबसे अच्छा तरीका।

सुसमायोजन हेतु विद्यार्थियों को ऐसे उदाहरण भी दिये जाये जिनके द्वारा विद्यार्थियों के मन में यह भावना पनप सके कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उपलब्धियाँ अधिकतम हो सकती है, बषर्ते कि हम परिस्थिति की और ध्यान न देकर अपने कर्तव्य की और ध्यान दें। इसी के साथ-साथ विद्यार्थियों को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का पूर्ण अवसर दिया जाय, ताकि विद्यार्थियों की भावनाएं दमित न हो, और कुण्ठाओं को जन्म न दें।

## 6.10 सारांश

बालक एक विकासशील प्राणी है जिसकी कुछ शारीरिक और मानसिक आवश्यकताएं होती है ये आवश्यकताऐं बालक को क्रियाशील बनाती हैं और यह उसके व्यवहार का कारण होती है। यह सर्वविदित है कि बिना आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के व्यक्ति व्यवहार नहीं करता है,उसके प्रत्येक व्यवहार के पीछे कुछ न कुछ आवश्यकताऐं अवश्य होती है। बालक के व्यवहार इन आवश्यकताओं की पूर्ति वाले साधनों या लक्ष्यों की और उन्मुख होता है। यदि बालक को लक्ष्य प्राप्त हो जाता है तो निश्चित रूप से उसकी आवश्यकता की सन्तुश्टि हो जाती है। किसी भी आवश्यकता पूर्ति से संबंधितलक्ष्य का चुनाव करना एक जटिल कार्य है। बालकों के लिये यह कार्य और भी अधिक जटिल इसलिये भी होता है

कि उनमें अनुभवों में कमी होती है तथा उनकी शारीरिक और मानसिक योग्यताएं भी सीमित होती हैं। बालक का लक्ष्य चयन कुछ प्रमुख कारकों से संबंधितहोता है, जैसे प्रत्यक्ष परक योग्यता अभिवृति या लक्ष्य का मूल्य तथा आंकाक्षा स्तर आदि। बालक लक्ष्यों का चुनाव उतनी की अधिक कुशलता से करते हैं जिनमें यह कारक जितनी ही अधिक मात्रा में विद्यमान होते हैं लक्ष्य प्राप्ति करने में अधिक समय लगता है। यदि बाधाओं के कारण उसके प्रयास में रूकावट पड़ती है तथा लक्ष्य पा्रप्त करने में अधिक समय लगता है। यदि ये बाधाएं थोड़ी भी गंभीर है तो बालक में तनाव और अन्तर्दद्ध उत्पन्न कर देती है। यदि बालक को बाधाओं पर सफलता प्राप्त हा जाती है तो निश्चित रूप से उसे लक्ष्य प्राप्त हो जाता है और इस अवस्था में वातावरण के साथ उसका समायोजन सामान्य और अच्छा होता है। लक्ष्य प्राप्ति पर उसे संतुष्टि और सफलता का अनुभव होता है। जब बालक के लिये लक्ष्य बहुत अधिक महत्वपूर्ण होता है और उसे लक्ष्य नहीं प्राप्त हो पाता तो उसमें कुण्ठा भी उत्पन्न हो जाती है। तनाव में अन्तर्द्धन्द्व की अवस्था में बालक असन्तुलित और अस्वस्थ हो जाता है, वातावरण के साथ मधुर संबंधबनाये रखने में परेषानी हो जाती है। अत: बालक के सामान्य विकास के लिए समायोजन अति आवश्यक है।

## 6.11 बोध प्रश्न

1 समायोजन किसे कहते हैं? समझाइये।
2 समायोजन की उपयुक्त परिभाषा देते हुये स्पष्ट करें।
3 समायोजन के कौन कौन से लक्षण होते है?
4 समायोजन के कितने प्रकार होते हैं? स्पष्ट कीजिये।
5 अध्यापक विद्यालय मे समायोजन के लिये क्या प्रयत्न कर सकता है।

## 6.12 संदर्भ ग्रंथ


1 Huelock Elizabeth- Child Development
2 Gates and others- Education psy.
3 Bigge and Hunt – Psychological Foundation of education
4 डॉ. प्रीति वर्मा /डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव - बालमनोविज्ञान
5 डॉ. मेहन्द्र कुमार मिश्रा - विकासात्मक मनोविज्ञान
6 डॉ. सुरेश भटनागर - शिक्षा मनोविज्ञान
7 डॉ. गिरीश पचौरी - शिक्षा के मनोविज्ञानिक आधार
8 डॉ. रामपाल सिंह वर्मा - शिक्षा मनोविज्ञान

# इकाई - 7

# तनाव प्रबंधन

**इकाई की रूपरेखा**


7-0 उद्देश्य
7-1 प्रस्तावना
7-2 तनाव का अर्थ
7-3 21वीं सदी के तनाव
7-4 सामूहिक तनाव के कारण
7-5 तनाव प्रबंधन
7-6 परामर्श का अर्थ
7-7 परामर्श की विशेषताएं
7-8 परामर्श प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धांत
7-9 परामर्श के प्रकार
7-10 परामर्श प्रक्रिया के पद
7-11 परामर्श की तनाव प्रबंधन में भूमिका
7-12 सारांश
7-13 संदर्भग्रंथ


## 7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी -

- तनाव के अर्थ व 21वीं सदी के तनाव के संदर्भ में विश्लेषण कर सकेंगे।
- सामूहिक तनाव व उसके कारणों को समझ सकेंगे।
- परामर्श का अर्थ, विशेषताएं, प्रकार व परामर्श प्रक्रिया के पद समझ सकेंगे।
- परामर्श की तनाव प्रबंधन में भूमिका स्पष्ट कर सकेंगे।

## 7.1 प्रस्तावना

आज की आपाधायी वाली जिंदगी में हर तीसरा व्यक्ति तनाव का शिकार है। काम पूरा न होना, रिश्तों का रूठना, तरक्की का दबाव, भवि"य के प्रति आंशकायें, विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक व मानवजनित आपदाओं का खौफ ..... कारण अनगिनत है लेकिन समस्या एक है तनाव, और यह तनाव कई शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक समस्याओं का कारण बनता जा रहा है। हम सब ऐसा जीवन जीना चाहते है जिसमें आनन्द ही आनन्द हो, हम अपने व्यक्तित्व को ऐसा स्वरूप देना चाहते है जो जीवन की गंभीर चुनौतियों को तनावरहित होकर सुलझा सकें इस हेतु तनाव का प्रबंधन आवश्यक है। तनाव प्रबंधन में निर्देशन व परामर्श क्या भूमिका निभा सकता है यही जानने का प्रयास उपरोक्त इकाई में किया जायेगा।

## 7.2 तनाव

किसी व्यक्ति के मन में जब दो समान रूप से प्रबल एवं परस्पर विरोधी इच्छाओं की उत्पत्ति होती है तो उसके मन में संघर्ष का प्रादुर्भाव हो जाता है। मानसिक संघर्ष की स्थिति में व्यक्ति यह निश्चय करने में असमर्थ हो जाता है कि वह क्या करें। उसके मन में दो या दो से अधिक इच्छाए रहती हैं जो विपरीत दिशा की ओर उन्मुख रहती है। व्यक्ति यदि उनमें से किसी एक को त्याग देता है और किसी दूसरी इच्छा की पूर्ति करने में तल्लीन हो जाता है, तो संभव है कि वह मानसिक संघर्ष से छुटकारा पा जाये। यदि व्यक्ति में इतनी इच्छा शक्ति नहीं होती है कि वह अपने मानसिक संघर्ष पर नियंत्रण पा सके तो उसके व्यक्तित्व में दोष आ जाने की संभावना रहती है।

मानसिक संघर्ष के साथ-साथ व्यक्ति में तनाव की उत्पत्ति हो जाती है। इस तनाव को हम मनोवैज्ञानिक तनाव की संज्ञा देते है। तनाव की स्थिति में मन अशांत हो जाता है। उसमें एक प्रकार के खिंचाव की स्थिति बनी रहती है, उसमें किसी आवश्यकता का अनुभव होता रहता है। यह तनाव एक दिन में नहीं उत्पन्न हो जाता, वरन् शनैः-शनैः मानसिक संघर्ष की अनुभूतियों के फलस्वरूप विकसित होता है। तनाव का अर्जन किया जाता है। अतः हम तनाव को वंशानुगत नहीं कह सकते हैं, किन्तु यह अर्जन प्रत्यक्ष रीति से न होकर अप्रत्यक्ष रीति से होता है। तनाव सामाजिक अनुभव का अप्रत्यक्ष परिणाम है। एक मनोचिकित्सक ऐण्डरसन का यह कहना है कि मानव व्यवहार तनाव से बचाव पर ही आधारित है। व्यक्ति जो कार्य करता है, जो विकल्प चुनता है जो प्रतिक्रिया करता है, उसका व्यवहार तनाव को दूर रखने के लिए ही होता है।

तनाव को सामान्य प्रक्रिया में रूकावट के रूप में समझा जा सकता है। एक व्यक्ति जो तनाव से ग्रस्त होता है वह कार्य करने में अपनी पूर्ण शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता। मनोवैज्ञानिकों के निरीक्षण से यह महत्वपूर्ण तथ्य भी स्पष्ट हुआ है कि तनाव सम्बन्धी प्रारंभिक अनुभव शैशव काल में ही होने लगते है, जब शिशु अपने अभिभावकों के मध्य संवेगात्मक तनाव देखता है तो उसे भी तनाव की अनुभूति होने लगती है। माता व शिशु का संवेगात्मक सम्बन्ध बालक की सुरक्षा की भावना पर प्रभाव डालता है, और यही से उसमें तनाव की शुरूआत होती है। शिशु जो तनाव शैशवकाल में अनुभव करते है वहीं जीवन भर

उसके व्यवहार पर प्रभाव डालता है। तनाव बालक के सीखने में रूकावट भी डाल सकता है और सीखने को प्रेरित भी कर सकता है। तनाव पुरस्कार की इच्छा, जिज्ञासा, दण्ड से बचने की इच्छा के परिणामस्वरूप होता है। भवि"य तनाव का एक बड़ा स्त्रोत है क्योंकि इसमें अनिश्चितता होती है।

शिशु के संवेगात्मक विकास के उचित प्रकार से होने के बाद उसके इस समाज के सक्रिय सदस्य बनने की प्रक्रिया में प्रत्येक स्तर पर उसे किसी न किसी प्रकार की अनिश्चितता के परिणामस्वरूप तनाव का सामना करना पड़ता है क्योंकि वर्तमान शताब्दी कोलाहल व उत्तेजना से भरपूर है, परिवर्तन की गति इतनी तीव्र है कि भवि"य के प्रति कदम-कदम पर आशंकित रहना भी तनाव उत्पन्न करता है। व्यक्ति तनाव का शिकार वैयक्तिक कारणों से भी हो सकता है और सामूहिक रूप से भी। वर्तमान समय में कई ऐसी स्थितियों व परिस्थितियॉ है जो कि तनाव पैदा कर रही है।

## 7.3 इक्कीसवीं सदी के तनाव

1996 में प्रस्तुत जैक्वस डेलर्स की रिपोर्ट अधिगम: अन्तर्निष्ठ निधि ने इक्कीसवीं शताब्दी के कुछ तनावों की ओर ध्यान आकृष्ट किया था जो इक्कीसवीं सदी की समस्याओं के केन्द्र बिन्दु है जैसे -

- **वैशविक तथा स्थानीय के बीच तनाव:** लोगों को धीरे-धीरे अपनी जड़ों को खोए बिना विश्व नागरिक बनना है तथा साथ ही साथ अपने राष्ट्र एवं स्थानीय समुदाय के जीवन में निरन्तर सक्रिय भाग लेते रहना है।
- **सार्वभौमिक तथा वैयक्तिक के बीच तनाव** - वैशविक संस्कृति के विस्तार में व्यक्ति के व्यक्तिगत गुणों की अद्वितीयता को बनाये रखना तनाव उत्पन्न कर रहा है।
- **परम्परा तथा आधुनिकता के बीच तनाव -** अति तकनीकी विकास व सूचना प्रौद्योगिकी की चुनौतियों के बीच अपनी परम्पराओं व संस्कृति का अस्तित्व बनाये रखना तनाव उत्पन्न कर रहा है।
- **ज्ञान के अतिविशिष्ट विस्तार तथा मनु"यों में इसे समाहित करने की क्षमता के बीच तनाव।**
- **एक ओर, प्रतिस्पर्धा की आवश्यकता तथा दूसरी ओर, समान अवसर की चिन्ता के बीच का तनाव।**
- **आध्यात्मिक एवं भौतिक के बीच तनाव** - अति भौतिकवादिता के बीच आध्यात्मिकता को बनाये रखना मानव जाति के अस्तित्व के लिए आवश्यक है।

इस प्रकार इस नयी सदी में मनु"य को अपनी पहचान बनाये रखने हेतु कई प्रकार के तनावों का सामना करना पड़ रहा है। इन्हें हम सामूहिक तनाव भी कह सकते है। यह सामूहिक तनाव किन-किन कारणों से उत्पन्न हो सकते है हमें यह भी जानना चाहिए।

## 7.4 सामूहिक तनाव के कारण

सामूहिक तनाव की स्थिति में एक समूह की दूसरे समूह से सामाजिक दूरी बढ़ जाती है। तनाव की दशा में एक समूह दूसरे से विपरीत दिशा में खिंचा हुआ रहता है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह खिंचाव क्यों हो जाता है? दूसरे शब्दों में हम इस प्रश्न को यों रख सकते हैं - सामूहिक तनाव का विकास किस प्रकार होता है? इस प्रश्न का उत्तर निम्न बिन्दुओं से मिल पायेगा -

**आत्मप्रेम -** कुछ विद्वानों के अनुसार व्यक्ति में आत्मप्रेम की प्रवृत्ति जन्मजात होती है। हम अपने शरीर से और अपने आप से प्रेम करने लगते है। इस सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि व्यक्ति इस प्रकार अपने समान व्यक्तियों से प्रेम करते हुए एक समूह बना लेता है और अपने समूह को दूसरे समूहों से अच्छा समझने लगता है। इससे तनाव का सूत्रपात होता है।

**स्वजातीय भक्ति -** कुछ विद्वानों के मतानुसार प्राणी अपने वातावरण को स्नेह की दृष्टि से देखता है। अपनी जाति को स्नेह की दृष्टि से देखना मानव का मूल स्वभाव है। गिडिंग्स का मत है कि समान वातावरण में व्यक्तियों में भाईचारे की भावना का उदय हो जाता है एवं प्रतिकूल वातावरण में घृणा की चेतना का उदय होता है। समर ने भी अपने अध्ययन में इसी बात की पुष्टि की है। उनका कहना है कि व्यक्ति जब अपने समान आचरण वाले व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है तो उसमें इन व्यक्तियों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। इन्हें वह अपनी जाति का समझने लगता है और इनके प्रति उसमें भक्ति आ जाती है। समर ने इसे स्वजातीय भक्ति की संज्ञा दी है। स्वजातीय भक्ति भी तनाव का एक कारण है।

**माता-पिता का प्रभाव -** सामूहिक तनाव की उत्पत्ति में बालक के माता-पिता का भी हाथ रहता है। बालक जब जन्म लेता है तो उस समय उसमें किसी प्रकार की घृणा का निवास नहीं रहता है। बालक यह सब यहीं आकर सीखता है। माता-पिता ही बालक को सिखाते हैं कि इस प्रकार का समूह अपना समूह है। बालक में संकेत ग्राहयता बड़ी तीव्र होती है। वह अपने पिता की बातों को पूर्ण सत्य मानता है। माता-पिता की गलत बातों की आलोचना करने का वह साहस नहीं करता है। माता-पिता का व्यवहार बालक पर स्थायी प्रभाव डालता है। माता-पिता के रूख को देखकर बालक किसी समूह को अपना मित्र समझने लगता है एवं किसी समूह को अपना शत्रु मान बैठता है। इससे सामूहिक तनाव का विकास होता है।

**परिवार का वातावरण -** माता-पिता के अतिरिक्त घर के अन्य सदस्यों का भी बालक पर बहुत प्रभाव पडता है। भारतव"र में संयुक्त परिवार की प्रथा अभी भी प्रचलित है। परिवार का मुखिया ही परिवार का संचालन करता है। परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति का अपना अलग ही व्यक्तित्व होता है। अपने लम्बे जीवन में वह शत्रुता व मित्रता की अनेकों कथाएं भरे रहता है। अपने इस तनाव पूर्ण इतिहास को वह बालकों के मस्ति"क तक पहुंचा देता है। स्पष्ट है कि परिवार का इस प्रकार का वातावरण सामूहिक तनाव की वृद्धि करता है।

**शिक्षक का प्रभाव -** छोटे बच्चों पर माता-पिता का प्रभाव अत्यधिक रहता है। जैसे-जैसे बालक का विकास होता है। वैसे-वैसे उसमें पाठशाला, पाठ्यक्रम और शिक्षक का प्रभाव बढ़ता जाता है। ऊंची कक्षाओं के बालकों में शिक्षक का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

**समाचार पत्र तथा पत्रिकाए -** कुछ पत्रिकाए समूह विशेष द्वारा संचालित की जाती है एवं उनमें उस समूह की प्रशंसा एवं अन्य समूहों की निन्दाए लिख दी जाती है समाचार पत्रों का भी यही हाल है। उन पर भी समूह विशेष का नियंत्रण रहता है। एक समूह दूसरे समूह की निन्दा से ही संतोष पाता रहता है। सम्पादकीय लेखों में भी इसकी झलक मिल जाती है। व्यक्ति इन सब लेखों एवं समाचारों को पढ़कर तदनुसार धारणाए बनाते रहते है। सामूहिक तनाव के विकास में इस प्रकार समाचार पत्र एवं पत्रिकाए योगदान करती रहती है।

**रेडियो, सिनेमा तथा दूरदर्शन -** आजकल सिनेमा और दूरदर्शन का प्रभाव बहुत बढ़ रहा है। बालकों के मन में चलचित्रों के प्रति पर्याप्त रूचि दिखाई पड़ती है। चलचित्रों में शोषकों एवं शोषितों तथा गरीबों एवं अमीरों के दु:ख-सुख का वर्णन भी मिल जाता है। कभी-कभी उनमें किसी एक वर्ग का प्रचार भी स्पष्ट लक्षित होता है। इसी प्रकार रेडियो और दूरदर्शन से भी मतों, विश्वासों एवं धारणाओं का प्रचार किया जाता है। व्यक्ति पर इन सब का प्रभाव पड़ता रहता है और इससे सामूहिक तनाव की उत्पत्ति होती है।

**पूर्वधारणाए -** बिना सोचे-समझे हम जो धारणा बना लेते हैं उसे पूर्व धारणा कहते है। पूर्वधारणा का शाब्दिक अर्थ अनुभव के पहले ही धारणा या मत बना लेना। उपर लिखे गए बहुत से साधन ऐसे हैं जो पूर्वधारणाओं के निर्माण में सहायता देते है। दो भिन्न जातियॉं, व्यक्ति या समूह पारस्परिक विरोध पूर्वधारणाओं के रूप में भी करते है। पूर्व धारणाओं से हम किसी व्यक्ति या राष्ट्र के विरूद्ध अपना मत प्रदर्शित करते रहते है। पूर्व धारणाओं के आधार पर एक समूह दूसरे समूह से अपनी सामाजिक दूरी में वृद्धि करता रहता है। यह पूर्वधारणाए वैश्विक नागरिक बनने में भी बाधक है तथा इन पूर्वधारणाओं से सामूहिक तनाव में वृद्धि होती है।

**मोबाइल व लेपटॉप का प्रयोग -** आज का युवा वर्ग मोबाइल फोन व इन्टरनेट की आभासी दुनिया में व्यस्त है वह इन डिजिटल साधनों के द्वारा फेसबुक, टिव्टर व मैसेजेस में डूबे रहते है और लगातार इनके प्रयोग से वह अपने कार्य, अपने परिवार, अपने सम्बन्धों व आस-पास की दुनिया के प्रति असंवेदनशील होते जा रहे है यह व्यस्तता व असंवेदनशीलता समाज में सामूहिक तनाव में वृद्धि कर रही है।

## 7.5 तनाव प्रबंधन

जीवन की इन गंभीर चुनौतियों को आसानी से सुलझा पाना ही तनाव रहित रहना है। यदि हम ऐसे 'तनावमुक्त मन' का निर्माण करना चाहते है तो हमें सबसे पहले यह जानना होगा कि 'मन' वास्तव में क्या है। हमारी सारी क्रियायें मन द्वारा संचालित होती है। 'मन अनगिनत विचारों के समूह का नाम है हर क्षण हमारा मस्ति"क विभिन्न विचारों को ग्रहण करता है। हम चाहे या न चाहे विचारों का मस्ति"क पटल पर आगमन निरन्तर बना रहता है और यह विचार मनु"य के मन में असुरक्षा की भावना उत्पन्न करते है जैसे - आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक असुरक्षा, अहंकार की असुरक्षा आदि और इन असुरक्षाओं को भावना से तनाव तथा सामूहिक तनाव उत्पन्न होता है। इन तमाम असुरक्षाओं के बीच तनावमुक्त रहना ही तनाव प्रबंधन है।

1984 में रिचर्ड लैजेरस और सुजेन फोकमैन ने सुझाव दिया कि ''तनाव मांग और सांधनों के बीच असंतुलन के परिणामस्वरूप भी होता है अथवा किसी के सहने की क्षमता से अधिक दबाव से भी हो सकता है।''

तनाव प्रबंधन एक तनावग्रस्त व्यक्ति के लिए सीधी प्रतिक्रिया नहीं है बल्कि एक संसाधन है, जिसमें तनाव की प्रतिक्रिया में सहने की क्षमता, पक्ष को बदलने की क्षमता ओर मध्यस्थता की अनुमति से तनाव पर नियंत्रण पाया जा सकता है। और यह मध्यस्थ एक परामर्शदाता हो सकता है क्योंकि पूर्व में परिवार का कोई सदस्य, सम्बन्धी, या घनि"ठ मित्र जो भूमिका निभाते थे उसे आज अति व्यस्तता व अति भौतिकवादिता के कारण एक परामर्शदाता ही भली भांति निभा सकता है।

अत: आवश्यक है कि तनाव प्रबंधन में परामर्शदाता को भूमिका को जानने से पूर्व परामर्श के बारे में जाना जाये।

## 7.6 परामर्श का अर्थ

शोस्टार्म और ब्रेमर (1952) के अनुसार ''परामर्श दो व्यक्तियों के बीच उद्देश्यपूर्ण एवं समान आधार पर एक सम्बन्ध है जिसमें एक व्यक्ति जो प्रशिक्षित होता है, दूसरे को, स्वंय को तथा वातावरण को बदलने में सहायता करता है।''

**हैरीमन के अनुसार -** परामर्श मनो उपचारात्मक सम्बन्ध है जिसमें एक प्रार्थी एक सलाहकार से प्रत्यक्ष सहायता प्राप्त करता है या नकारात्मक भावनाओं को कम करने का अवसर और व्यक्तित्व में सकारात्मक वृद्धि के लिए मार्ग साफ हो जाता है।''

**हैमरिन और एरिक्सन के अनुसार -** ''परामर्श प्रार्थी द्वारा उस समस्या के बारे में सोचने और उसे हल करने का एक प्रयास है जिसका वह सामना करता है। यह सहयोगात्मक सोच विचार का एक प्रयोग है जिसमें दो व्यक्ति (परामर्शदाता और प्रार्थी) समस्या का समाधान करते है।''

**वैबस्टर शब्द के अनुसार -** ''परामर्श का अर्थ है जानबूझ कर किया गया विचार विमर्श, विचारों का पारस्परिक आदान प्रदान।

## 7.7 परामर्श की विशेषतायें

- परामर्श किसी के साथ किसी समस्या के बारे में बात करना है।
- परामर्श अधिगम केन्द्रित प्रक्रिया है।
- परामर्श व्यक्तियों को उनकी व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं में सहायता करता है। जिनमें उनके संवेग और अभिप्रेरणाए मुख्य है।
- परामर्श में अन्त:क्रिया होती है जिसमें परामर्शदाता दूसरे व्यक्ति के विकास में सकारात्मक योगदान करने का उत्तरदायित्व लेता है।

- परामर्श प्रक्रिया प्रार्थी के लिए अधिगम की परिस्थितियॉं उत्पन्न करती है जिनके द्वारा व्यक्ति के संज्ञान, अनुभूति, अन्तक्रिया, अन्तवैयक्तिक सम्बन्धों में परिवर्तन उत्पन्न करने में व्यक्ति को लोकतांत्रिक सहायता प्राप्त होती है।
- परामर्श व्यक्तियों को उन के दोषों या अयोग्यताओं को समाप्त करने या उनमें सुधार करने में सहायता देता है।
- परामर्श व्यक्ति की समस्या पर केन्द्रित होता है।
- परामर्श का स्वरूप विकासात्मक, निरोधात्मक तथा उपचारात्मक होता है।

## 7.8 परामर्श प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धांत

मैकडेनियल और शैफ्टल के अनुसार परामर्श प्रक्रिया निम्नलिखित कुछ मूल सिद्धांतों पर आधारित है:-

1- **स्वीकृति का सिद्धांत (Principle of Acceptance)** - इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक प्रार्थी को एक व्यक्तित्व के रूप में समझा जाये और उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाये। व्यक्ति के अधिकारों को परामर्शदाता पूर्ण सम्मान प्रदान करें।

2- **व्यक्ति के सम्मान का सिद्धांत (Principle of respect for the individual)** - परामर्श की सभी विचारधाराए व्यक्ति के सम्मान पर बल देती है अर्थात् व्यक्ति की भावनाओं का आदर करना परामर्श प्रक्रिया का आवश्यक अंग होना चाहिए।

3- **उपयुक्तता का सिद्धांत (Principle of permissiveness)** - परामर्श ऐसे सम्बन्ध है जिससे कुछ आशा बंधती है तथा वातावरण व्यक्ति के अनुकूल होने लगता है। सभी विचारधाराएॅं परामर्श के सापेक्ष सम्बन्ध को स्वीकार करती है।

4- **व्यक्ति के साथ सोचने का सिद्धांत (Principle of Thinking with the individual)** - परामर्श व्यक्ति के साथ सोचने पर बल देना है किसके लिए सोचना और क्यों सोचना इन दोनों बातों में भेद करना आवश्यक है। यह परामर्शदाता की भूमिका हे कि वह प्रार्थी के आसपास की सभी शक्तियों के बारे में सोचे, प्रार्थी की चिन्तन प्रक्रिया में शामिल हो और उसकी समस्या के सम्बन्ध में प्रार्थी के साथ मिलजुल कर कार्य करें।

5- **लोकतंत्रीय आदर्शो के साथ निरन्तरता का सिद्धांत (Principle of consistency with ideals of Democracy)** - सभी सिद्धांत लोकतंत्रीय आदर्शों के साथ जुड़े हुए है। लोकतांत्रिक आदर्श व्यक्ति को स्वीकार करने की मांग करते है और दूसरे के अधिकारों का उपयुक्त सम्मान चाहते है। परामर्श प्रक्रिया व्यक्ति के सम्मान के आदर्श पर आधारित है। यह व्यक्तिगत विभिन्नताओं को मानने वाली प्रक्रिया है।

**6- सीखने का सिद्धांत (Principle of learning)** - परामर्श की सभी विचारधाराएं परामर्श प्रक्रिया में सीखने के तत्वों की विद्यमानता को मानती है।

**7-**

## 7.9 परामर्श के प्रकार

तनाव प्रबंधन में परामर्श की भूमिका को जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि परामर्श किस-किस प्रकार का होता है। परामर्श के विभिन्न कार्यक्षेत्र हैं जिन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं से जाना जा सकता है -

**I. शैक्षिक परामर्श (Educational Orientation and Counselling)** शैक्षिक परामर्श का संबंध विद्यार्थियों को अध्ययन के लिये पाठ्यक्रम के निर्णय के बारे मेंसहायता प्रदान करने से है। विभिन्न अभिरूचियों, विभिन्न क्षमताओं और प्राकृतिक झुकावों या प्रवृत्तियों के कारण तथा इनके संदर्भ में विद्यार्थियों की सहायता शैक्षिक परामर्श द्वारा की जा सकती है। संक्षेप में, यह व्यक्ति की शिक्षा संबंधी समस्याओं में सहायता करती है।

**II. व्यावसायिक परामर्श (Vocational Counselling)** व्यावसायिक परामर्श वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति के उपयुक्त व्यवसाय के चयन में उसके लिये तैयारी में सहायता की जाती है। व्यवसाय संबंधी निर्णय की प्रकृति बहुत गंभीर मामला होता है, अत: इसमें विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

**III. व्यक्तित्व परामर्श (Personality Counselling or Psychological Counselling)** व्यक्तित्व या मनोवैज्ञानिक परामर्श के अन्तर्गत व्यक्तिगत और संवेगात्मक समस्याओं का समाधान 'व्यक्तित्व परामर्श' का कार्य क्षेत्र है। उदाहरणार्थ, मित्रों का अभाव, अकेलापन, हीनता की भावनाए आदि।

'मनोवैज्ञानिक परामर्श' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम आर.डब्ल्यू. व्हाईट ने किया था। मनोवैज्ञानिक परामर्श में, परामर्शदाता एक चिकित्सक के समान होता है। इसमें सामान्य बातचीत के माध्यम से परामर्शदाता प्रार्थी की उसकी दबी इच्छाओं, भावनाओं एवं संवेगो की अभिव्यक्ति में सहायता करता है।

**IV. मनोचिकित्सात्मक परामर्श (Psychotherapeutic Counselling)** स्नाईडर **(Snyder)** ने मनोचिकित्सा को इस प्रकार परिभाषित किया है, ''मनोचिकित्सा वह प्रत्यक्ष संबंध है जिसमें मनोवैज्ञानिक रूप से प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के सामाजिक कुसमायोजन वाले भावात्मक दृष्टिकोण में सुधार के लिये शाब्दिक माध्यम से सचेत रूप से प्रयास करता रहता है तथा जिसमें प्रार्थी सापेक्ष रूप में स्वयं के व्यक्तित्व के पुन: गठन से परिचित रहता है, जिसमें से वह गुजर रहा है।

सामाजिक कुसमायोजन को समाप्त करने की दृष्टि से मनोचिकित्सात्मक परामर्श बहुत ही उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

**V. नैदानिक परामर्श (Clinical Couselling)** नैदानिक परामर्श (Clinical Couselling) शब्द का प्रयोग एच.बी. पेपिंस्की (H.B. Pepinski) ने किया। उसके अनुसार नैदानिक परामर्श का एक प्रारूप हैं। नैदानिक परामर्श (Clinical Couselling) के उददृश्य निम्न है -

(a) छोटे कार्य से संबंधित कुसमायोजनों का निदान और उपचार (Diagnosis and treatment of minor functional maladjustments)

(b) परामर्शदाता और प्रार्थी के बीच मुख्यरूप से वैयक्तिक और आमने-सामने का संबंध (A Relationship primarily individual and face to face between counsellor & client)

इस प्रकार यह स्पष्ट होता कि नैदानिक परामर्श का संबंध व्यक्ति के सामान्य कार्यव्यापार से सम्बद्ध तनावों का कुसमायोजनों से हैं। इसके अन्तर्गत परामर्शदाता और प्रार्थी का प्रत्यक्ष संबंध निहित होता है।

नैदानिक परामर्श की प्रक्रिया में समस्या का विश्लेषण करने तथा समस्या का उपचार सुझाने के प्रयास किये जाते है। नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा भी है। नैदानिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत ऐसे प्रार्थी की जिसमें सुसमायोजन एवं आत्म-अभिव्यक्ति के क्रम में कोई अनुचित व्यवहार विकसित हो जाता है, सहायता करने में व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक ज्ञान एवं अभ्यास से सम्बद्ध होती है। इसमें निदान (Diagnosis) उपचार (Teatment) एवं प्रतिरोधन (Prevention) और ज्ञान के विस्तार के लिये की जाने वाली शोध हेतु प्रशिक्षण तथा वास्तविक अभ्यास को आत्मसात किया जाता हैं नैदानिक परामर्श (Clinical Counselling) और नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) में अत्यधिक समानता है।

**VI. वैवाहिक परामर्श (Marriage Couselling)** आजकल वैवाहिक परामर्श की परम्परा भी चल पडी है। इसके अन्तर्गत उपयुक्त जीवन साथी चुनने के सुझाव दिये जाते हैं और व्यक्ति की यथासंभव सहायता की जाती है।

**VII. स्थानन परामर्श (Placement Couselling)** स्थान परामर्श से अभिप्राय प्रार्थी की अभिरूचियों, दृष्टिकोणों तथा योग्यताओं के अनुरूप व्यवसाय चयन में सहायता करना है।

समस्या की प्रकृति पर ही परामर्श का प्रकार निर्भर करता है। लेकिन समस्या के क्षेत्रों को यहीं तक सीमित नहीं किया जा सकता। परामर्शदाता को सभी प्रकार की समस्याओं को सुलझानें या उनका सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिए।

## 7-10 परामर्श प्रक्रिया के पद निम्न पद

**रोजर्स (Rogers) ने परामर्श प्रक्रिया के निम्नलिखित पद उल्लेखित किये है:-**

1. व्यक्ति सहायता के लिये आता है तथा उसने एक अनुमानित कदम **(Tentative Step)** उठा लिया है।
2. सहायता परिस्थिति को प्राय: परिभाषित किया जाता है। प्रार्थी को इस ख्याल से परिचित कराया जाता है कि परामर्शदाता के पास उत्तर नहीं होते। प्रार्थी को स्वयं ही अपने उत्तर ढूँढने होते है। परामर्श का समय अपना है यदि वह चाहे।

3. परामर्शदाता स्वतंत्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है। यह स्वतंत्र अभिव्यक्ति समस्या के संदर्भ में होती हैं, वह चिन्ता तथा अपराधी होने की भावना को रोकता है। परामर्शदाता प्रार्थी को यह मनाने का प्रयास नहीं करता कि वह गलती पर है या वह सही है। परामर्शदाता प्रार्थी को वैसा ही स्वीकार करता है जैसा वह हैं वह केवल स्वतंत्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है।
4. परामर्शदाता नकारात्मक भावनाओं **(Negative Feelings)** को स्वीकार करता है उन्हें पहिचानता और स्पष्ट करता हैं परामर्शदाता को प्रार्थी की भावनाओं का उत्तर देना चाहिए।
5. जब व्यक्ति की नकारात्मक भावनाओं की पूर्ण अभिव्यक्ति हो चुकी होती है, उसके पश्चात् अनुमानित सकारात्मक अभिव्यक्ति **(Tentative Positive Expression)** हेतु प्रोत्साहित किया जाता है।
6. परामर्शदाता सकारात्मक भावनाओं को पहिचानता है और उन्हें स्वीकार करता है।
7. इसमें प्रार्थी का स्वयं का बोध और अन्तरदृष्टि होती है।
8. प्रार्थी को संभावित निर्णयों और संभावित कार्यदिशा का स्पष्टीकरण होता है।
9. प्रार्थी द्वारा महत्वपूर्ण सकारात्मक क्रियाओं का प्रारम्भ होने लगता है।
10. धीरे-धीरे परामर्शदाता द्वारा प्रोत्साहित करने पर प्रार्थी में अन्तरदृष्टि तथा अधिक उपयुक्त बोध का विकास होता है।
11. प्रार्थी या परामर्शी के इस स्तर पर पहुंचने पर उसमें विकसित स्वतंत्रता की भावना विकसित होती है तथा उसे परामर्श की आवश्यकता घटती हुई प्रतीत होती है।

ये प्रक्रियाए आवश्यक नहीं कि इसी क्रम में हों ये पद प्रार्थी केन्द्रित **(Client Centered)** है।

## 7.11 परामर्श की तनाव प्रबंधन में भूमिका

परामर्श के विभिन्न प्रकारों को जानने के बाद यह बात स्पष्ट होती है कि नैदानिक परामर्श (Clinical Counselling) द्वारा परामर्शदाता प्रार्थी के तनाव का प्रबंधन करने में सफल हो सकता है। इस हेतु उसे परामर्श प्रक्रिया के पदों को दृष्टिगत रखना होगा तथा निम्नलिखित व्यूह रचना अपनानी होगी -

1- **तनाव के कारकों की पहचान (Identification of Causes of Stress)** एक प्रभावी तनाव प्रबंधन कार्यक्रम को विकसित करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि व्यक्ति या प्रार्थी के अन्दर तनाव के केन्द्रिक कारको की पहचान की जाये यह कारकों की पहचान प्रार्थी को स्वयं करनी होगी परामर्शदाता इसमें उसकी सहायता कर सकता है।

2- **स्वतंत्र अभिव्यक्ति हेतु प्रोत्साहन (Motivation for Independent Expression)** तनाव के कारकों को पहचानने के बाद परामर्शदाता प्रार्थी को स्वतंत्र अभिव्यक्ति हेतु प्रोत्साहित करता है कि वह उन कारकों की व्याख्या कर सके। कारकों की सही व स्वतंत्र व्याख्या है तनाव से बचने में सफल सिद्ध हो सकेगी।

**3- तनाव प्रबंधन हेतु अनावश्यक तनाव से बचें(Avoid to unwanted stress)**

(i) इस हेतु प्रार्थी तनाव के कारको की भली भांति जानकर तनाव उत्पन्न करने वाले कारकों को दूर करने का प्रयास करे तथा तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों को नियंत्रित करने का प्रयास करें।

(ii) प्रार्थी अपने समय, जिम्मेदारियों और दैनिक कार्यों का विश्ले"ाण करें व सभी गतिविधियों का आकलन सफलताओं व असफलताओं के रूप में करें इससे तनाव कम करने में मदद मिलेगी।

(iii) समय की रूपरेखा बनाते समय लक्ष्य को स्पष्ट रखें, प्राथमिकताओं को परिभाषित करें।

4- **तनाव से बचने हेतु स्थिति बदलें (Change the situation to escape from stress)**

परामर्शदाता प्रार्थी को यह स्पष्ट करेगा कि यदि आप तनाव से बच नहीं सकते है तो आप वर्तमान स्थिति को बदलने का प्रयास करें। इस हेतु -

(i) आप अपनी भावनाओं को व्यक्त करें चुप रहने से बेहतर है अपनी बात, भावना दूसरे व्यक्ति तक पहुंचायी जायें।

(ii) समझौता करने को तैयार रहें - अपने व्यवहार में कटुता व कट्टरता के स्थान पर समझौते का रवैया लायें ताकि तनाव से बचाव हो।

(iii) समय का बेहतर प्रबंधन करें - कार्य पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए कार्य क्षमता बढ़ाने के लिए, भविष्य की योजना बनाने के लिए समय का बेहतर प्रबंधन करना आवश्यक है इससे तनाव की मात्रा कम हो सकती है।

5- **तनाव से अनुकूलन करें (Adpation with Stress)** - यह परामर्शदाता का कार्य है कि वह प्रार्थी में तनाव के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करें वह यह स्पष्ट करें कि -

तनावपूर्ण स्थितियों से अनुकूलन करना तनाव को कम करने का एक तरीका है इस हेतु प्रार्थी -

(i) सर्वप्रथम यह स्वीकार करें कि मुझे तनाव है यह आधे तनाव को कम कर देगा।

(ii) अपने मानकों को समायोजित करें - प्रार्थी स्वयं की पूर्णता की मांग की विफलता को जानकर स्वयं को स्थापित करना बंद करें तथा स्वयं को दूसरों के या समाज द्वारा उचित मानकों के अनुरूप ढालने का प्रयास करें।

(iii) सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करें - प्रार्थी के जीवन में जो कुछ सकारात्मक हुआ है, या हो रहा है उस पर ध्यान केन्द्रित करें तथा तनावपूर्ण स्थितियों को पूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करें।

(iv) प्रार्थी अपने समय और ऊर्जा पर ध्यान केन्द्रित करें व समायोजन क्षमता का विकास करें। इससे तनाव से अनुकूलन हो पायेगा।

6- **सभी स्थितियों को बदलना असंभव है यह स्वीकार करें (Accept that all situations are not changeable) -** वर्तमान में ऐसे कई तनाव है जिन्हें व्यक्ति पूर्व में वर्णित रणनीतियों

को अपना कर भी दूर नहीं किये जा सकते चाहे वह राष्ट्रीय मंदी हो या वैश्विक नागरिक बनने का तनाव, आंतकवाद से जूझना हो या प्राकृतिक आपदा से।

ऐसी स्थिति में तनाव प्रबंधन हेतु -

(प) अपनी भावनाओं को बांटे - अपने विश्वसनीय दोस्त, सम्बन्धी या परामर्शदाता किसी से भी अपनी भावनाओं को साझा करें।

(पप) क्षमा करना सीखें - इस विश्व में कोई भी पूर्ण नहीं है इस तथ्य को स्वीकार करें तथा स्वयं में सकारात्मक ऊर्जा व विचारों का संचार करें। क्रोध औरअसंतोष को त्यागें।

7- **जीवन में विश्राम हेतु समय निर्धारित करें (Decide time for rest in life) -** आज की आपाधापी वाली जिंदगी में तनाव से बचने के लिए आवश्यक है कि जीवन में आराम और पुर्नभरण के स्वस्थ तरीके अपनायें जायें-

इस हेतु - प्रकृति के साथ समय बिताएं

- एक अच्छे मित्र के साथ समय बिताएं
- व्यायाम हेतु समय निकालें
- एक अच्छी किताब पढ़ें
- अपने बगीचे में पौधों की सार संभाल करें।
- अपना पंसदीदा संगीत सुनें।
- चित्रकला में रूचि हो तो वह बनाने का समय निकालें।
- डायरी लिखने की आदत डालें।

जीवन की हलचल में व्यक्ति स्वयं को समय देना भूल जाता है जबकि यह सबसे ज्यादा जरूरी है।

8- **एक स्वस्थ जीवन शैली अपनायें (Adapt a healthy life style)** तनाव से प्रतिरोध करने हेतु स्वस्थ जीने शैली अपनाना आवश्यक है इस हेतु प्रार्थी

- नियमित रूप से व्यायाम करें। योगाभ्यास, ध्यान और प्राणायाम थकान दूर कर एकाग्रता बढ़ाता है।
- स्वस्थ आहार लें।
- विश्राम का समय निर्धारित करें व पर्याप्त नींद लें।
- दिनचर्या में कुछ न कुछ नया कार्य सम्मिलित करें। यह जीवन में नया उत्साह व खुशी भरता रहेगा।
- समय का उचित प्रकार से प्रबंधन करें।
- कैफीन और चीनी का कम प्रयोग करें।

- अवकाश के दिन गेजेट्स से दूरी बनायें - गैजेट्स की दुनिया सुविधा के लिए है लेकिन इनकी अति तनाव उत्पन्न करती है। छुट्टी के दिन मोबाईल, लैपटाप से दूरी रखें।
- हंसने-हंसाने की अपनी आदत बनाये रखें। हंसने का माद्दा तनाव से बचने में सहायक होता है।
- व्यवस्थित व अनुशासित जीवन शैली अपनाये।
- मुश्किल समय में भी संयम और शांति बनायें रखे तो कोई न कोई नई राह मिल ही जायेगी।

इस प्रकार परामर्शदाता द्वारा प्रार्थी को संभावित कार्य दिशाओं का स्प"टीकरण किया जाता है ताकि वह महत्वपूर्ण सकारात्मक क्रियाओं को अपने जीवन में अपना कर उपयुक्त बोध का विकास कर सके तथा उसके जीवन में व्याप्त तनाव को कम करने में वह स्वयं की सहायता कर सकें क्योंकि परामर्शदाता केवल एक पथ प्रदर्शक है जो समस्या का विश्ले"ाण कर समस्या का उपचार सुझा सकता है उसकी कार्य रूप में परिणिति स्वंय प्रार्थी को ही करनी होगी।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि एक प्रशिक्षित परामर्शदाता अपने अनुभव के आधार पर प्रार्थी से स्वस्थ सम्बन्ध स्थापित करके उसके मन की परतों में छिपी समस्या को बाहर लाकर उसे सुलझाने में सार्थक योगदान दे सकता है।

## 7.12 सारांश

इस इकाई में आपने भवि"य के प्रति आशंकाओं, विभिन्न प्रकार की आपदाओं, सामाजिक समस्याओं से उत्पन्न हो रहे तनाव को जाना। इस तनाव को व्यक्तिगत ही नहीं सामूहिक रूप से भी महसूस किया जा रहा है तनाव कई कारणों से उत्पन्न हो रहे है उसमें परिवार, विद्यालय, समाज व तकनीकी क्रांति अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। यदि तनाव प्रबंधन कर ना है तो परामर्श महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है इस हेतु परामर्श दाता परामर्शी को उसकी समस्या अनुभूत कराके उसे तनाव से मुक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

## 7.13 बोध प्रश्न

1- तनाव किसे कहते है? कुछ ऐसे तनावों के उदाहरण दीजिये जिन्हें आपने स्वयं अनुभव किया हो?

2- परामर्श प्रक्रिया के विभिन्न पद लिखिये।

3- एक परामर्शदाता तनाव प्रबंधन के लिए किन-किन व्यूह रचनाओं को अपनाता है संक्षेप में वर्णन कीजिये।

4. जैक्वस डेलर्स ने इक्कीसवीं शताब्दी के किन तनावों की चर्चा की है?

5. सामूहिक तनाव मुख्यत: किन-किन कारणों से उत्पन्न होता है।

6. तकनीकी साधनों से तनाव कैसे उत्पन्न हो रहा है?

7. तनाव का अर्थ स्पष्ट करें।

8 ऐण्डरसन के तनाव से सम्बन्धित विचार क्या थे?

9. तनाव का अर्थ स्पष्ट करें।

10. ऐण्डरसन के तनाव से सम्बन्धित विचार क्या थे?

11 परामर्श का क्या अर्थ है।

12 परामर्श की प्रमुख विशेषतायें क्या है।

12 परामर्श प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धांतों को सूचीबद्ध कीजिये।

13 विद्यार्थियों की सहायता किस प्रकार के परामर्श में की जानी है?

14 आर.डब्ल्यू. व्हाईट द्वारा किस प्रकार के परामर्श का उल्लेख किया गया।

15 नैदानिक परामर्श में परामर्शदाता व प्रार्थी के मध्य कैसा सम्बन्ध होता है?

## 7.14 संदर्भ ग्रन्थ


1. Dubey, L.N. (2006) Counselling Psychology, Jaipur Shiksha Prakashan.
2. Roy, A.N. & Asthona. M. (2006) Guidance and Counselling, Delhi, Motilal Banarasidas.
3. Mathur, S.S. (2008) Education Psychology Agra Agarwal Publications.
4. Obrai, S.C. (2009) Educational Vocational Guidance & Counselling, Meerut, Internatoinal Publishing House.
5. Pandey, R.S. (2009) Educational Psychology, Meerut R. Lal Book Depot.
6. Skinner, C.E. (1974) Educational Psychology, New Delhi: Prentice Hall of India.
7. Walker, J. (1996) The psychology of Learning: Principle and processes, Upper Saddle River. NJ. Prentice Hall. New Delhi.
8. Gupta, M.P. & Gupta, M. (2009) Shakshik Nirdeshan Evom Paramarsh, Agra, H.P. Bhargra Book House.
9. Verma, R.P. Singh & Upadhya, R.V. (1990) Educational & Vocational Guidance, Agra, Vinod Pustak Mandir.
10. Jagous Dellor's (1996) Learning: The Tresure within: National Council of Teacher Education 'Selected part'.
11. Allport, F.H. (1995) Social Psychology, Hofton, Muffin Boston.

# इकाई - 8

# विशिष्ट बालक

**इकाई की रूपरेखा**


8.0 उद्देश्य
8.1 विशिष्ट बालक का अर्थ एवं परिभाषा
8.2 विशिष्ट बालकों की परिभाषाएँ
8.3 विशिष्ट बालकों के लिए शिक्षा, निर्देशन एवं परामर्श की व्यवस्था
8.4 विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण, समस्याएँ एवं निराकरण
8.5 प्रतिभाशाली बालकों की समस्याएँ
8.6 प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा हेतु निर्देशन एवं परामर्श
8.7 मंदबुद्धि बालक
8.8 पिछड़ा बालक
8.9 पिछड़े बालकों के लिए शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन
8.10 नियोग्य बालक
8.11 विकलांग/नियोग्यता के प्रकार
8.12 विशेष शिक्षा एवं नियोग्य/विकलांग
8.13 नियोग्य/विकलांग शिक्षा में अध्यापक व परामर्शदाता की भूमिका
8.14 समस्यात्मक बालक
8.15 समस्यात्मक बालक के प्रकार
8.16 समस्यात्मक बालकों की शिक्षा
8.16 बोध प्रश्न
8.17 संदर्भ सूची


## 8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी -

- विशिष्ट बालक का अर्थ एवं परिभाषायें समझा सकेंगे।
- विशिष्ट बालकों की शिक्षा एवं निर्देशन हेतु सुझाव दे सकेंगे।
- विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण कर उनकी समस्याओं के निराकरण हेतु सुझाव दे सकेंगे।
- प्रतिभाशाली, मन्दबुद्धि, पिछड़े बालक, शारीरिक दृष्टि से विशिष्ट बालकों व समस्यात्मक बालकों की तुलना कर सकेंगे एवं उनके लिये उचित निर्देशन एवं परामर्श के कार्यक्रमों की व्यवस्था हेतु सुझाव दे सकेंगे।

## 8.1 विशिष्ट बालक का अर्थ एवं परिभाषा

विद्यालय में सभी बालक एक समान नहीं होते हैं, उनमें विभिन्नताएँ होती हैं। इन बालकों में अलग-अलग विशेषताएँ भी होती हैं। किसी बालक में समझने की शक्ति अधिक प्रबल होती है तो किसी बालक में समझने की शक्ति कम होती है। कोई बालक कक्षा में शैतानी करने में अधिक सक्रिय रहता है तो कोई बालक कक्षा में शान्त भाव से बैठा रहता है।

इसी कारण जो बालक अन्य सामान्य बालकों से अलग प्रकार के होते हैं, उन्हें ही विशिष्ट या असाधारण बालक की संज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार वे बालक भी, जिन्हें कक्षा की बातें समझ में नहीं आती हैं। हम शिक्षा की समस्या को ठीक प्रकार से तभी हल कर सकेंगे जब इन असाधारण बालकों (Exceptional Children) के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाएगी। इन बालकों के विकास पर परिवार, समाज, समुदाय तथा विद्यालय के वातावरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

## 8.2 विशिष्ट बालकों की परिभाषाएँ

**क्रो एण्ड क्रो** ने विशिष्ट बालकों की परिभाषा देते हुए कहा है - ''विशेष प्रकार या 'विशिष्ट' शब्द किसी एक ऐसे गुण या उस गुण को धारण करने वाले व्यक्ति के लिए उस समय प्रयोग में लाया जाता है, जबकि व्यक्ति उस गुण विशेष को धारण करते हुए अन्य सामान्य व्यक्तियों से इतना अधिक असामान्य हो कि वह उस गुण विशेष के कारण अपने साथियों के विशिष्ट ध्यान की मांग करे अथवा उसे प्राप्त करे और साथ ही उससे उसके व्यवहार की क्रियाएँ तथा अनुक्रियाएं भी प्रभावित हों।

**हैरी बाकर**, इन्होने अपनी पुस्तक 'Introduction to Exceptional Children' में लिखा है, विशिष्ट बालक वे हैं, ''जो शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक और सामाजिक दृष्टि से सामान्य गुणों से इस सीमा तक विचलित होते हैं कि उन्हें अपनी अधिकतम क्षमता के अनुसार स्वयं का विकास करने के लिए विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है।''

**क्रिक** के मतानुसार, ''ऐसे बालक की औसत या सामान्य से (i) मानसिक गुणों में, (ii) ज्ञानान्तमक क्षमताओं में, (iii) न्यूरोक्रियात्मक या शारीरिक गुणों में, (iv) सामाजिक व्यवहार में, (v) संचार क्षमताओं में अधिक विकसित होते हैं, विशिष्ट बालक कहलाते हैं।''

**हेवार्ड एवं औरलेन्सकी** के अनुसार, ''विशिष्ट एक ऐसा अन्तवेशिक पद है जिसका तात्पर्य किसी भी ऐसे बालक से होता है जिसका निष्पादन मानक के ऊपर या नीचे इस हद तक विचलन होता है कि उसके लिए विशेष कार्यक्रम की जरूरत होती है।''

## 8.3 विशिष्ट बालकों के लिए शिक्षा, निर्देशन एवं परामर्श की व्यवस्था

आम तौर पर अध्यापक एक साधारण या औसत बालक-बालिका को ध्यान में रखकर ही अध्यापन की योजना बनाता है कई बार उसे बहुत से तथ्यों की आवृत्ति भी करनी पड़ती है। परन्तु प्रतिभावान बालकों की दृष्टि से यह तरीका ठीक नहीं कहा जा सकता। वह तो अपनी योग्यता के अनुसार जल्दी-जल्दी प्रगति करना चाहता है। परन्तु ऐसा वह कर नहीं पाता। जब किसी बालक को उसकी योग्यता के अनुसार काम

नहीं दिया जायेगा तो वह या तो अध्यापक को तंग करेगा अथवा अपना अधिकांश समय उत्पात मचाने में लगाएगा। इससे पाठशालाओं की व्यवस्थाओं में कई प्रकार की समस्याएँ उठ खड़ी हो सकती हैं।

विशिष्ट बालक बालिकाओं के लिए समय-समय पर मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षा शास्त्रियों के द्वारा कई सुझाव दिये गये हैं, जो निम्नांकित हैं -

1. **अलग से शिक्षा व्यवस्था -** कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि निम्नांकित आधार पर बालक-बालिकाओं का वर्गीकरण कर लिया जाये - (क) बुद्धि मापक परीक्षाएँ (ख) निष्पत्ति परीक्षाएँ (ग) पिछली कक्षाओं में प्राप्तांक एवं (घ) अध्यापकों की सम्मति। यदि प्रतिभावान बालक-बालिकाओं को सामान्य बालकों से अलग करके शिक्षा प्रदान की जायेगी तो उनमें व्यर्थ के अहंकार की भावना आ जायेगी। अध्ययन की समाप्ति के बाद तो विशिष्ट बालकों को जनसाधारण के भीतर ही रहना होगा। यदि उनका पालन-पोषण तथा शिक्षण अन्य बालकों से अलग हुआ तो वे समाज के अन्य सदस्यों के साथ ठीक-ठीक समायोजन स्थापित नहीं कर सकेंगे।
2. अगली कक्षा में प्रोन्नति - यदि विशिष्ट बालक-बालिकाओं को अपनी कक्षा में जल्दी प्रोन्नति दे दी जाये तो उन्हें काम करने की प्रेरणा मिलेगी तथा समय की भी बचत होगी। परन्तु यह बात भी सामाजिक दृष्टि से उचित प्रतीत नहीं होती है, ऐसा होने से प्रतिभावान बालक-बालिकाएँ छोटी उम्र में ही बड़ी कक्षाओं में पहुँच जायेंगे जहाँ उन्हें बड़ी आयु वाले छात्रों के साथ रहना पड़ेगा। माथुर के अनुसार - ''बालकों की रुचियों में अन्तर होता है।'' बड़ी आयु वाले बालक उन्हें अपने साथ रखना पसन्द नहीं करेंगे। इस प्रकार उनके साथ और कई तरह की कठिनाइयाँ आ सकती हैं।
3. **पाठ्य वस्तु की व्यापक तथा विस्तृत रूपरेखा -** पाठ्य वस्तु को व्यापक तथा विस्तृत रूप देने के लिए निम्नांकित साधनों का अवलम्बन करना चाहिए -
   (i) **पुस्तकालय तथा वाचनालय की सुविधा -** प्रखर बुद्धि वाले बालक-बालिकाओं के लिए पुस्तकालय तथा वाचनालयों की विशेष सुविधा होनी चाहिए, ताकि उन्हें स्वयं ही ज्ञानार्जन का अधिक से अधिक अवसर मिल सके।
   (ii) **छात्रवृत्ति प्रदान करना** - विशिष्ट बालकों को राज्य सरकार की ओर से अथवा समाज की ओर से छात्रवृत्ति प्रदान की जानी चाहिए, ताकि उन्हें अध्ययन में प्रोत्साहन तथा सुविधा मिल सके।
   (iii) **विशिष्ट रुचियों को प्रोत्साहन -** बालक-बालिकाओं की विशिष्ट रुचियों पर ध्यान देना आवश्यक है, जैसे - संगीत, चित्रकला, काव्य, क्रीड़ा आदि का पता लगाया जाए तथा उनके गम्भीर अध्ययन के लिए प्रोत्साहन दिया जाए।
   (iv) जिस-जिस विषय में बालक-बालिकाओं को अधिक रुचि हो, उस पर ही अधिक बल दिया जाए।

(v) **योग्य अध्यापकों से संपर्क तथा विशिष्ट अध्यापन विधियाँ -** प्रतिभावान बालक-बालिकाओं की शिक्षा का कार्य सुयोग्य अध्यापकों को सौंपना चाहिए, ताकि वे उनकी क्षमता तथा योग्यता के अनुरूप उन्हें शिक्षा प्रदान कर सकें।

(vi) **पाठान्तर क्रिया की व्यवस्था -** कुशाग्र बुद्धि बालक-बालिकाओं को इस बात के लिए प्रेरित करना चाहिए कि वे अपना अधिक से अधिक अतिरिक्त समय पाठान्तर क्रियाओं में लगाएं, जहाँ उन्हें अपनी नेतृत्व शक्ति के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हो सके।

(vii) क्रियात्मक पहलुओं पर अधिक बल दिया जाए।

(viii) प्रकरणों को अधिक विस्तार से पढ़ाया जाये। परन्तु इस बात के लिए अतिरिक्त कक्षाएँ लगाई जाएँ।

(ix) **उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपना -** कभी-कभी अन्य छात्र-छात्राओं की कमजोरियों को दूर करने का काम भी सौंपना चाहिए। ऐसा करने पर वे साधारण तथा कमजोर बालक-बालिकाओं के प्रति उदार भाव रखना सीख जायेंगे।

प्रश्न - 1 विशिष्ट बालक का अर्थ एवं परिभाषायें बताइये ?

प्रश्न - 2 विशिष्ट बालकों के लिये शिक्षा, निर्देशन एवं परामर्श की क्या आवश्यकता है ?

## 8.4 विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण, समस्याएँ एवं निराकरण

विशिष्ट बालक सामान्य बालकों से अनेक क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। अत: विशिष्ट बालकों को उनकी भिन्नता के क्षेत्र के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। सामान्य तौर पर विशिष्ट बालकों को निम्नांकित भागों में बाँटा जा सकता है -

1. **बौद्धिक दृष्टि से विशिष्ट बालक** (Intellectually Exceptional Children)
   - (i) प्रतिभाशाली (Gifted Children)
   - (ii) मंदबुद्धि बालक (Mentally Retarded Children)
2. **शैक्षिक दृष्टि से विशिष्ट बालक** (Educationally Exceptional Children)
   - (i) तीव्र बालक (Accelerated Children)
   - (ii) पिछड़े बालक (Backward Children)
3. **शारीरिक दृष्टि से विशिष्ट बालक** (Physically Exceptional Children)
   - (i) बहरे बालक (Deaf Children)
   - (ii) कम सुनने वाले बालक (Hard of Hearing Children)
   - (iii) अन्धे बालक (Blind Children)
   - (iv) दृष्टिदोष से युक्त बालक (Partially Sighted Children)
   - (v) वाणी दोष से युक्त बालक (Children with Speech Defects)
   - (vi) विकलांग बालक (Crippled Children)

4. **समस्यात्मक बालक** (Problem Children)
   (i) सामाजिक कुसमायोजित बालक (Socially Malajusted Children)
   (ii) संवेगात्मक दृष्टि से रहित बालक (Emotionally Distrubed Children)

प्रतिभाशाली **बालक** (Gifted Child)

विद्यालयों में पढ़ने वाले बालकों तथा बालिकाओं में व्यक्तिगत विभिन्नतायें होती है। इस प्रकार की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का कारण वंशानुक्रम तथा वातावरण सम्बन्धी कारण होते हैं। प्रतिभाशाली बालक कक्षा में तेज दिमाग, शारीरिक स्फूर्ति एवं जीवन में अधिक सफलता पाने वाले होते हैं, इनकी बुद्धि लब्धि 140 या इससे अधिक होती है। अन्य शब्दों में प्रतिभाशाली बालक में जन्मजात मानसिक योग्यतायें तथा बुद्धि इतनी अधिक होती है कि वे औसत बालक से हर क्षेत्र में आगे रहते हैं। इनकी बुद्धिलब्धि, स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण द्वारा 130 या इससे अधिक आती है।

''प्रतिभाशाली बालक'' शब्द का प्रयोग ऊँची बुद्धिलब्धि वाले बालक के लिये किया जाता है। सामान्य प्रतिभाशाली वाले बालक की सर्वश्रेष्ठ बुद्धिलब्धि होती है। जबकि विशिष्ट प्रतिभाशाली बालकों में किसी प्रकार की विशिष्ट योग्यता होती है। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि किसी बालक में कितनी भी निपुणता तथा कुशलता क्यों न हो, यदि उसकी बुद्धिलब्धि कम है तो वह प्रतिभाशाली नहीं कहा जा सकता।

**कैरल तथा मारटिन्स** के अनुसार ''प्रतिभाशाली बालक वह है जो सृजनात्मक चिन्तन एवं अमूर्त तर्क में सर्वश्रेष्ठ है, उसकी रुचियों का क्षेत्र व्यापक होता है और वह उच्च कोटि के कार्य का उत्पादन करता है।''

**टरमन तथा ओड** ने भी प्रतिभाशाली बालकों की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए इन्हें परिभाषित किया है। उनके अनुसार ''प्रतिभाशाली बालक शारीरिक गठन, सामाजिक समायोजन, व्यक्तित्व के गुण, विद्यालय की उपलब्धियाँ, खेलकूद, सूचनाओं की जानकारियों और रुचियों की अनेकता में सामान्य बालकों की तुलना में बहुत श्रेष्ठ होते हैं।''

## 8.5 प्रतिभाशाली बालकों की समस्याएँ

1. **शिक्षण ग्रहण के उपयुक्त अवसर नहीं -** उच्च बुद्धि वाले बालकों को सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा देना उनके प्रति हितकर नहीं है। इस प्रकार सब बच्चों के बीच शिक्षा प्राप्त करने से उनकी क्षमता का पूर्ण विकास नहीं होता।
2. **अहंभाव का विकास -** साधारण बालकों के साथ पढ़ने से प्रखर बुद्धि वाले बालकों को अपने योग्यता का आभास शीघ्र होता है। इस कारण उनमें अहंभाव विकसित हो जाता है। वे अन्य बालकों को अपनी तुलना में कुछ नहीं समझते। अत: उनका धीरे-धीरे सामाजिक तथा संवेगात्मक समायोजन समाप्त होने लगता है।
3. **अनुचित आदतों तथा अरुचि का विकास -** प्रतिभाशाली बालक अपनी कक्षा का पाठ्यक्रम अन्य सामान्य छात्रों की अपेक्षा शीघ्र समाप्त कर लेते हैं। इस कारण वे कक्षा में शरारत

करते हैं। जिसके कारण वे समस्यात्मक बालक बन जाते हैं। उनका समस्यात्मक बालक बनने का मुख्य कारण उस पाठ्यक्रम में अरुचि होती है। पाठ्यक्रम उनकी क्षमता के अनुकूल न होने पर वे अपनी शक्ति को गलत कार्यों तथा अनुचित आदतों में लगाते हैं।

4. **विद्यालय में समृद्ध कार्यक्रम का अभाव -** विद्यालयों में प्रतिभाशाली बालकों के लिए समृद्ध कार्यक्रम नहीं होता। समृद्ध कार्यक्रम के अभाव में उनकी बौद्धिक प्रगति नहीं होती।
5. **कक्षोन्नति -** कई बार ऐसा भी देखा गया है कि प्रतिभाशाली बालकों को एक ही वर्ष में दो बार कक्षोन्नति प्रधानाध्यापक द्वारा कर दी जाती है। लेकिन इसका प्रभाव यह होता है कि वह अगली कक्षा में कमजोर चलता है और वह उस कक्षा के छात्रों के साथ सम्बन्ध भी नहीं बना पाता।
6. **व्यक्तिगत ध्यान का अभाव -** इन कक्षाओं में अध्यापक व्यक्तिगत रूप से प्रतिभाशाली बालकों का ध्यान नहीं रख पाता। यदि उसे अलग से परामर्श तथा शिक्षा दी जाये तो यह राष्ट्र के लिए हितकारी सिद्ध होगा।
7. **अन्य बच्चों को भग्नाशा -** प्रतिभाशाली बच्चों के सामने सामान्य बालकों की बुद्धिलब्धि सामान्य होती है और वे उनकी कभी भी बराबरी नहीं कर पाते। इस कारण उनमें भग्नाशा पैदा हो जाती है जो उनके लिए हानिकारक है।

## 8.6 प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा हेतु निर्देशन एवं परामर्श

प्रतिभाशाली छात्रों को शिक्षा देना एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है जिस पर अनेक शिक्षाविदों तथा मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार प्रस्तुत किये है। अधिकांश शिक्षाविद् इनके लिए विशेष कक्षाओं तथा विशेष विद्यालयों की व्यवस्था करने के पक्ष में हैं।

1. **समृद्ध शिक्षण -** प्रतिभा के अनुकूल यदि शिक्षण प्रदान किया जायेगा तो प्रखर बुद्धि वाले बालकों का ज्ञानार्जन भी अधिक होगा। दूसरी ओर अध्यापक भी उनकी योग्यता, क्षमता तथा आवश्यकता का ध्यान रखते हुए उन्हें समृद्ध शिक्षण करायेगा। लेकिन यह शिक्षण गति तथा गुणात्मकता, सामान्य कक्षाओं के साथ संभव नहीं हो सकती।
2. **अलग शिक्षा व्यवस्था -** प्रतिभा के अनुसार कार्य करने का अवसर तथा प्रतिभाशाली छात्रों को उनकी अलग शिक्षा व्यवस्था होने पर, अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करने का अवसर मिलेगा। वे इस अवसर का लाभ उठायेंगे तथा अपनी क्षमताओं तथा योग्यताओं का विकास करेंगे।
3. **विविध समृद्ध पाठ्यक्रम -** इनके लिये कक्षा अथवा विद्यालय में समृद्ध पाठ्यक्रम भी बनाया जा सकता है। इससे उनके विशिष्ट कौशलों का निर्माण भी किया जा सकता है। इसके द्वारा उनकी सृजनशीलता, रुचि और उपलब्धि का विकास भी किया जा सकता है। उपरोक्त लाभ के कारण मुख्य शिक्षाविद् एक वर्ष में दो बार कक्षोन्नति करना पसन्द नहीं करते, बल्कि उसकी जगह विस्तृत तथा समृद्ध पाठ्यक्रम प्रस्तुत करने की राय देते हैं।

4. **वांछित तथा सामाजिक आदतों का विकास -** यदि प्रतिभाशाली बच्चों की प्रतिभा वांछित दिशा में उपयोग की जाए तो उनमें अच्छी सामाजिक आदतों का विकास हो सकता है। अपने अनुकूल शिष्य तथा कार्य में व्यस्त रहने के कारण उनमें असामाजिक तथा अवांछित आदतों के निर्माण का अवसर नहीं मिलेगा।
5. **विभिन्न दिशाओं में नेतृत्व का अवसर -** जब प्रतिभाशाली बालकों को अपनी रुचि अनुसार विशिष्ट दिशा में कार्य करने तथा ज्ञानार्जन का अवसर मिलेगा तो इस कार्यक्षेत्र में अपना योगदान देकर देश को भी समृद्ध बनायेगा।
6. **कक्षा में समायोजन -** साधारण तथा प्रतिभाशाली बालकों को एक साथ एक कक्षा में रखने तथा पढ़ाने से समस्याओं को आमन्त्रित करना है। दोनो प्रकार के बालक आपस में एक नहीं हो पाते। वे एक-दूसरे को परेशान करते हैं। इसके अतिरिक्त अध्यापक को भी अध्यापन में परेशानी आती है। यदि वे अच्छे स्तर से पढ़ाते हैं तो सामान्य बालकों की समझ में नहीं आता दूसरी ओर यदि वे सरल विधि संबंधितसामान्य ज्ञान देते हैं तो प्रतिभाशाली छात्रों के साथ न्याय नहीं होता है।

लेकिन कुछ शिक्षाविदों तथा मनोवैज्ञानिकों का मत है कि अलग विद्यालय तथा पृथक् कक्षा व्यवस्था इनके लिए नहीं होनी चाहिए। इसके लिए ये निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैं -

(1) अध्यापकों के लिए अत्यधिक कार्यभार।
(2) प्रशिक्षित तथा योग्य अध्यापकों की कमी।
(3) प्रतिभाशाली छात्रों में अहंभाव का विकास।
(4) प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं।
(5) एक पृथक् बौद्धिक वर्ग के विकास की सम्भावना।
(6) छात्रों में परस्पर प्रतियोगिता का अवसर नहीं रहेगा।
(7) प्रतिभाशाली छात्रों का चयन करने की विधि दोषपूर्ण तथा पक्षपात-पूर्ण होने की संभावना
(8) शिक्षा पर अत्यधिक व्यय में वृद्धि
(9) सामान्य बालकों में हीन भावना का विकास।

प्रतिभाशाली के लिए पृथक् कक्षाएँ अथवा विद्यालय नहीं होने चाहिए। दूसरे शब्दों में पूर्ण रूप से अलग व्यवस्था (Total Segregation) नहीं होना चाहिये। लेकिन उन्हें साधारण विद्यालय तथा सामान्य छात्रों के साथ पढ़ाना भी न्यायोचित नहीं है। इसका अभिप्राय यह है कि सभी छात्रों के लिये मिश्रित व्यवस्था (Partial Segregation) की जानी चाहिए। इस व्यवस्था में प्रतिभाशाली बालकों की विशिष्ट क्षेत्र के विकास में मदद की जाती है। लेकिन अन्य विषयों में वह सामान्य बालकों के साथ ही बैठकर पढ़ता है। इस व्यवस्था से दोनों तरह के छात्रों को लाभ पहुंचेगा।

## 8.7 मंदबुद्धिबालक

मन्द-बुद्धि बालकों की शिक्षा व्यवस्था एक जटिल समस्या है। वे अपनी कक्षा के पाठ्यक्रम को समझने में असमर्थ होते है। वे स्वयं अपना जीवन-निर्वाह करने में असमर्थ हैं। उन्हें अपने दैनिक जीवन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए दूसरे व्यक्तियों का आश्रय लेना पड़ता है। अत: ऐसे बालकों को मन्द बुद्धि वाला कहेंगे जो किसी कार्य को करने में असमर्थ हैं और उनमें मानसिक परिपक्वता का अभाव होता है।

**मंद बुद्धि बालक की परिभाषाएँ** (Meaning & Definition of Slow Learner)

**क्रो एवं क्रो** (Crow & Crow) के अनुसार, ''जिन बालकों की बुद्धि-लब्धि 70 से कम होती है, उनको मन्द-बुद्धि बालक कहते हैं।''

**स्किनर** (Skinner) के अनुसार, ''प्रत्येक कक्षा के छात्रों को एक वर्ष में शिक्षा का एक निश्चित कार्यक्रम पूरा करना पड़ता है। जो छात्र उसे पूरा नहीं कर पाते हैं, उनको मन्द-बुद्धि छात्र की संज्ञा दी जाती है। विद्यालयों में यह धारणा बहुत लम्बे समय से चली आ रही है और अब भी है।''

## 8.8 पिछड़ा बालक

पिछड़े बालक से तात्पर्य उन बालकों से है जो शिक्षा प्राप्त करने में सामान्य बालकों से पिछड़ जाते हैं। अत: जो बालक अपनी कक्षा के अन्य बालकों से अध्ययन की दृष्टि से पिछड़ जाते हैं, उन्हें पिछड़ा बालक कहते हैं। पिछड़े बालकों का मंदबुद्धि होना आवश्यक नहीं है।

औसत बुद्धि बालक अथवा तीव्र बुद्धि बालक भी पिछड़ा बालक हो सकता है। यदि वह कक्षा के औसत छात्रों से शैक्षिक दृष्टि से कम होता है। पिछडेपन के अनेक कारण हो सकते हैं।

शारीरिक निर्बलता, तुतलाना, हकलाना, ऊँचा सुनना आदि शारीरिक कारणों के अतिरिक्त परिवार के कलहपूर्ण, अशिक्षित, दूषित व शोर-शराबे से युक्त वातावरण, परिवार की निर्धनता, बुरे मित्रों की संगति, अयोग्य व निष्ठुर अध्यापक, निर्देशन का अभाव जैसे अन्य कारणों की वजह से बालक अपनी शिक्षा को ठीक ढंग से जारी नहीं रख पाते हैं तथा वे शिक्षा प्राप्त करने में पिछड़ जाते है।

## 8.9 पिछड़े बालकों के लिए शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन

1. समय-समय पर सभी बालकों की डॉक्टरी परीक्षण करवाया जाये ताकि उनके शारीरिक दोषों का पता लग सके।
2. बुद्धिमापक परीक्षाओं के आधार पर बालकों की मानसिक योग्यता का पता लगाया जाये ताकि उन्हें उनकी मानसिक योग्यता के अनुसार काम सौंपा जा सके।
3. निर्धन बालकों की ओर विशेष ध्यान दिया जाये। विद्यालय के द्वारा उनके लिए कपड़ों तथा पुस्तकों की व्यवस्था की जाये।
4. व्यक्ति इतिहास पद्धति (Case Study) के द्वारा उनके सम्बन्ध में सभी प्रकार की जानकारी इकट्ठी की जाये और उनका पूरा-पूरा रिकार्ड रखा जाये।

5. ऐसे बालकों के लिए पाठान्तर क्रियाओं का आयोजन होना चाहिए, जहाँ पर उनके आत्म गौरव की भावना संतुष्ट हो सके।
6. इन्हें शिक्षा देते समय दृश्य श्रव्य साधनों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाये ताकि उन्हें अमूर्त बातों में कोई कठिनाई न हो।
7. पाठशाला में इस प्रकार के बालकों को बुरा-भला नहीं कहना चाहिए। पाठशाला का संपूर्ण वातावरण स्नेहपूर्ण होना चाहिए।

## 8.10 नियोग्य बालक

शिक्षाविदों व समय-समय पर आयोजित होने वाले शिक्षा सम्मेलनों व संगोष्ठियों में विश्व स्तर पर यह बात उजागर हो चुकी है कि बढ़ती जनसंख्या, परिवर्तित होते सामाजिक मूल्य और बदलते परिवेश में हमारे जीवन दर्शन, शिक्षा दर्शन के सम्बन्ध में बदलाव लाना अपेक्षित है।

इसी क्रम में विकलांग शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। आज के समस्त जीवन दर्शन के सम्बन्ध में विकलांग शिक्षा की उपयोगिता शिक्षा को बताते हुए आर.के. मिश्रा का एक कथन है कि ''विकलांग एकमात्र विज्ञान देवता की उपासना करें तो उन्हें किसी प्रकार का अभाव न होगा।''

नियोग्य बालकों की दृष्टि से इसकी तीन मुख्य श्रेणियाँ हैं -

(1) शारीरिक नियोग्यता,
(2) मानसिक नियोग्यता,
(3) सामाजिक नियोग्यता।

अत: तीनों को मिलाकर ही हम व्यक्ति या बालक को नियोग्य की श्रेणी मे ंरखते हैं।

**नियोग्य/विकलांग शिक्षा की आवश्यकता** (Need of Disabled Education)

विकलांग शिक्षा की आवश्यकता की दृष्टि से, प्रजातंत्र में जहाँ जनहित ही राष्ट्रहित है। वहाँ समाज नियोग्य को उन्हीं के सामथ्र्यानुसार शिक्षा प्रदान करे। जो जिस अवस्था में है उसकी क्षमता का अधिकाधिक उपयोग कर नया जीवन दर्शन दें। विज्ञान की प्रगति ने मानव को चाहे वह किसी भी अवस्था में क्यों न हो पूर्ण सहायता एवं साधन दिया है। शक्ति, समय एवं दूरी को विज्ञान ने कतिपय क्षेत्रों में तो शून्य पर ला दिया है। विकलांग अपने अभ्यास बल के सहारे पर उपकरणों से पूर्ण उपयोगिता ग्रहण कर सकते हैं आवश्यकता है मनोवृत्ति के परिवर्तन की।

## 8.11 विकलांग/नियोग्यता के प्रकार

विकलांग/नियोग्य बालक दूसरे विकलांग बालकों से भिन्न नहीं होते अपितु कार्य क्षमता एवं ग्रहणीय शक्ति और रुचि की दृष्टि से भी भिन्न होते हैं।

विकलांगों की तीन श्रेणियां हैं -

(1) शारीरिक विकलांग (बहरापन, अन्धापन)
(2) मानसिक विकलांग (मन्द, सामान्य, तीव्र)

(3) सामाजिक कुसमायोजन।

## 8.12 विशेष शिक्षा एवं नियोग्य/विकलांग

विकलांग बालक औसत बालक से सर्वथा भिन्न नहीं होते, यह विकलांग बालकों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है। कोई पक्ष विशेष ऐसा होता है जिससे सीखने की स्थिति में विचलन उत्पन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ वर्तनी दोष अथवा सुलेख का न होना ऐसे बालकों को अतिरिक्त कार्य कालांश देकर अभ्यास दिया जा सकता है। इसी प्रकार उच्चारण दोषयुक्त बालकों के लिए भी निर्धारित कालांश के अतिरिक्त विशेष उपकरणों की सहायता से अभ्यास दिया जाना चाहिए।

औसत व सामान्य बालकों के लिए इस प्रकार अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता नहीं होती। गूंगे-बहरे छात्रों के लिए अध्यापक विशेष रूप से ध्वनि यन्त्रों या श्रवण उपकरणों का प्रयोग करेगा। बहरे या गूंगे बालकों में भी साधारण दोष से युक्त एवं अधिक दोष से पूर्ण छात्रों का वर्गीकरण किया जा सकता है। किस अवस्था के बालक को किस प्रकार और कितनी मात्रा में विशेष शिक्षा मिलनी चाहिए। यह बालक की विकलांगावस्था के अतिरिक्त सीखने की क्षमता पर भी निर्भर करता है। जितनी जटिल विकलांगावस्था होगी उतना ही अधिक विशेष शिक्षा का सहारा लेना पड़ता है।

शिक्षा को इस ढंग से दिया जाये, इस प्रकार से दिया जाये और ऐसी मात्रा में दिया जाये, जिससे विकलांग में शिक्षा के प्रति विश्वास और अपने जीवन में आस्था दिखायी देने लगे। विशेष शिक्षा विकलांग बालक को दोषपूर्ण, कम ग्रहण शक्ति, न्यून क्षमता व अन्य सामान्य अवस्थाओं की सहायता देकर सीखने के लिये प्रयत्नशील बनाती है। सीखने की यही दिशा उनमें नूतन जीवन मूल्यों को विकसित करेगी।

## 8.13 नियोग्य/विकलांग शिक्षा में अध्यापक व परामर्शदाता की भूमिका

नियोग्य/विकलांग शिक्षा में अध्यापक व परामर्शदाता की भूमिका को निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है -

1. नियोग्य/विकलांग शिक्षा के अध्यापक व परामर्शदाता को विकलांगों में यह विश्वास पैदा करना है कि वे औसत छात्रों के साथ उतना ही सजीव रहकर शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।
2. औसत दृष्टि से सभी बालक किसी काम तो करने में न्यूनाधिक समय, शक्ति एवं अभ्यास को अपनायेंगे। असामान्यवस्था अभी-अभी बीमारी से उठे छात्र के साथ भी है जिसे औसत छात्र से अधिक विश्राम की आवश्यकता है।
3. असाध्य रोगों से पीड़ित बालकों को भी विद्यालयीय खेलकूद या श्रमयुक्त कार्यों में छूट के साथ-साथ अत्यन्त हल्के मनोरंजन खेलों की सुविधा प्राप्त होनी चाहिए।

## 8.14 समस्यात्मक बालक

समस्यात्मक बालकों से तात्पर्य उन बालकों से है जो परिवार, कक्षा या विद्यालय में तरह-तरह की समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। ऐसे बालकों का व्यवहार सामान्य से अलग हटकर होता है तथा ये कक्षा

अथवा विद्यालय में अपने को ठीक ढंग से समायोजित नहीं कर पाते हैं। ऐसे बालक अध्यापक के लिए समस्या बने रहते हैं।

## 8.15 समस्यात्मक बालक के प्रकार

समस्यात्मक बालक अनेक प्रकार के हो सकते हैं -

1. चोरी करने वाले बालक
2. झूठ बोलने वाले बालक
3. क्रोध करने वाले बालक
4. विद्यालय से भाग जाने वाले बालक
5. गृहकार्य न करके लाने वाले बालक
6. कक्षा में देर से आने वाले बालक आदि।

समस्यात्मक बालकों से समस्यात्मक व्यवहार के कारणों को जानकर ऐसे बालकों के व्यवहार में सुधार लाया जा सकता है। अध्यापक तथा अभिभावकों को चाहिए कि वे जब भी किसी बालक मे समस्यात्मक व्यवहार को देखें तो उसके कारणों को खोजने का प्रयास करें। प्राय: बालक आवश्यकतायें पूरी न होने पर, अत्यधिक लाड़-प्यार में, कठोर अनुशासन के कारण या असुरक्षा की भावना के कारण विभिन्न प्रकार के समस्यात्मक व्यवहार करते हैं।

परिवार, विद्यालय व समाज का दूषित वातावरण, माता-पिता व शिक्षकों का आवश्यकता से अधिक लाड़-प्यार अथवा तिरस्कारपूर्ण व्यवहार अथवा कठोर अनुशासन बालकों में समस्यात्मक प्रवृत्ति को बढ़ाता है।

## 8.16 समस्यात्मक बालकों की शिक्षा

समस्यात्मक बालकों को उनके समस्यात्मक व्यवहार के लिए प्रताड़ित अथवा शारीरिक दंड न देकर मनोवैज्ञानिक ढंग से शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। माता-पिता तथा अध्यापक अपने उत्तरदायित्व को समझकर उनके लिए उपयुक्त वातावरण, सुविधाएँ तथा अवसर प्रदान करें जिससे उनकी समस्याओं का निराकरण हो सके।

समस्यात्मक बालकों की शिक्षा के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए -

1. माता-पिता को बच्चों के प्रति प्रेम, सहानुभूति तथा सहयोगात्मक व्यवहार करना चाहिए।
2. बालकों की मूल प्रवृत्तियों का दमन न करके उनका शमन या परिशोधन किया जाना चाहिए।
3. बालकों को अच्छे कार्य के लिए प्रोत्साहन तथा पुरस्कार देने चाहिए।
4. बालकों को नैतिक शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।
5. बालकों को मनोरंजन के उचित अवसर दिये जाने चाहिए।
6. बालको की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए।

7. बालकों की आवश्यकता, परिस्थिति तथा क्षमता के अनुरूप ही उन्हें गृहकार्य दिया जाना चाहिए।
8. बालकों में आत्म अनुशासन की भावना विकसित करने के लिए उन्हें उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य दिये जाने चाहिए।
9. विभिन्न पाठ्यसहगामी क्रियाओं का आयोजन करके बालकों को अपनी रुचियाँ प्रदर्शित करने के अवसर दिये जाने चाहिए।

यहां यह बात अच्छी तरह जान लेने की आवश्यकता है कि विशिष्ट बालकों के उपरोक्त वर्गीकरण एक-दूसरे से पूर्ण रूपेण भिन्न नहीं होते हैं। कुछ बालक ऐसे भी हो सकते हैं जिनमे एक से अधिक क्षेत्रों में भिन्नताएं होती हैं। जैसे एक विकलांग बालक प्रतिभाशाली भी हो सकता है। विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालकों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा व्यवस्था करने की आवश्यकता पड़ती है। सभी प्रकार के विशिष्ट बालकों की चर्चा करना प्रस्तुत विषय क्षेत्र से बाहर है। फिर भी, प्रस्तुत इकाई में प्रतिभाशाली, मंद बुद्धि, पिछड़े तथा समस्यात्मक बालकों की शिक्षा के संबंध में चर्चा की गई।

## 8.16 बोध प्रश्न

1 विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण बौद्धिक, शैक्षिक, शारीरिक एवं समस्यात्मक बालक के आधार पर कीजिये ?
2 प्रतिभाशाली बालकों की पहचान आप कैसे करेंगे ?
3 प्रतिभाशाली बालकों हेतु शिक्षा एवं निर्देशन परामर्श के कार्यक्रम बताइये ?
4 मंदबुद्धि बालक से आपका क्या तात्पर्य है ?
5 पिछडे बालकों के लिये शिक्षा संबंधीनिर्देशन कार्यक्रम बताइये ?
6 नियोग्य बालक कौन होते है इनकी प्रमुख श्रेणियां बताइये ?
7 नियोग्य बालक की शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डालिये ?
8 अध्यापक एवं परामर्शदाता नियोग्य बालकों की शिक्षा हेतु क्या सहायता कर सकते है ?
9 समस्यात्मक बालकों के विभिन्न प्रकार बताइये ?
10 समस्यात्मक बालकों के परामर्श में क्या सावधानियां रखनी चाहिए ?

## 8.17 संदर्भ सूची


1 पाण्डेय, कामता प्रसाद (2008) शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
2 फ्रीमैन एफ एस, (1965), थ्यौरी एंड प्रेक्टिस ऑफ साइकोलोजिकल टेिस्टंग, तृतीय संस्करण, ऑक्सफोर्ड एंड आई.बी.एच. पब्लिशिंग कम्पनी, कलकत्ता।
3 बैस सिंह, नरेन्द्र, सूत्रकार भागीरथ, (2006) विशिष्ट वर्ग के बालकों की शिक्षा, जैन प्रकाशन मंदिर, जयपुर।
4 हन्सन, जेम्स सी. (1978), काउंसलिंगप्रोसेस एंड प्रोसिजर्स, मैक्मिलन कम्पनी, न्यूयार्क।

5 मरफी, जी, (1970), एन इन्ट्रोडक्शन टू काउसिंलिंगइन स्कूल्स, हार्पर एंड रो, न्यूयार्क।
6 रॉव नारायणन (1981) काउंसिलिंगसाइकोलोजी, मैकग्रो हिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।
7 पसरिचा प्रेम, (1976), गाइडेन्स एंड काउंसिलिंग इन इंडियन एजुकेशन, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
8 श्रीवास्तव के.के. (2006) प्रिसिंपल्स ऑफ गाइडेन्स एंड काउंसिलिंग, कनिष्क पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
9 भार्गव महेश (2003) मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

# इकाई - 9

# सृजनात्मकता

**इकाई की रूपरेखा**


9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 परिभाषाएं

9.4 विशेषतायें

9.5 सृजनात्मक चिन्तन के तत्व

(i) धारा प्रवाहिता

(ii) लचीलापन

(iii) मौलिकता

(iv) प्रबोधन

(v) प्रमाणकरण या संसोधन

9.6 सृजनात्मक चिन्तन के गुण

9.7 सृजनात्मक बालकों की पहचान की आवश्यकता

9.8 सृजनात्मक बालकों की पहचान

(i) शैक्षिक योग्यता वालो बालकों की पहचान

(ii) बालक प्रतिभा सम्पन्न बालकों की पहचान

(iii)यांत्रिक व वैज्ञानिक क्षमता युक्त बालकों की पहचान

9.9 सृजनात्मक बालकों की विशेषताएं

सृजनात्मक बालकों का शिक्षण

(i) शिक्षक की भूमिका

(ii) विद्यालय की भूमिका

9.10 सुजनात्मकता को प्रोत्साहित करने की तकनीक

(i) मस्तिष्क उहेलन विधि

(ii) समस्या समाधान विधि

(iii) सामूहिक चर्चा

(iv) सिनेरिक्स

(v) भूमिका अदा करना

(vi) लक्षणों को सूची बद्ध करना

9.11 सृजनात्मक का मापन

9.12 सारांश

9.13 बोध प्रश्न

9.14 संदर्भग्रंथ

## 9.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे -

- सृजनात्मकता क्या होती है।
- सृजनात्मकता के विभिन्न तत्व क्या है।
- सृजनात्मक चिन्तन कैसे होता है उसमें कौनसी अवस्थाएं समाहित है।
- एक सृजनात्मक चिन्तन की क्या विशेषताएं होती है।
- सृजनात्मकता को प्रेरित करने की विभिन्न उपलक्ष्य प्रविधियां क्या - क्या है।
- कक्षा में अध्यापक या परामर्शदाता लक्षणों के आधार पर किस प्रकार सृजनात्मक बालकों की पहचान कर सकता है।
- सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने में विद्यालय व अध्यापक की क्या भूमिका है।

## 9.2 प्रस्तावना

चिन्तन एक मानसिक प्रक्रिया है विभिन्न मनोवैज्ञानिक ने चिन्तन को अलग-अलग तरह से परिभाषित किया है कुछ इसे वातावरण से मिलने वाली सूचनाओं का मानसिक जोड़-तोड़ मानते है तो कुछ समस्या व समाधान के मध्य होने वाली मध्यस्थ प्रक्रिया।

चिन्तन को हम प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते है व्यवहार के द्वारा हम चिन्तन के बारे में केवल परोक्ष रूप से जान सकते है। इसलिए चिन्तन अव्यक्त को एक अध्यक्त प्रक्रिया कहा गया है।

गिलफोर्ड (1967) ने चिन्तन को दो भागों में बांटा है -

1. अभिसारी चिन्तन

2 अपसरण चिन्तन

अभिसारी चिन्तन में व्यक्ति दिये गए तथ्यों के आधार पर सही निष्कर्ष पर पहुंचने की कोशिश करता है। यह एक रूढ़िवादी तरीका है जिसमें व्यक्ति समस्या संबंधीदी गयी सूचनाओं के आधार पर समस्या का समाधान करता है, पर इससे वह अपनी तरफ से कुछ भी नही जोड़ता है।

अपसरण चिन्तन में व्यक्ति भिन्न - भिन्न दिशाओं में चिन्तन कर समस्या का समाधान करता है इसमें वह समस्या के कई संभावित उत्तरों पर सोचता है व साथ ही अपनी और से कुछ नया एवं मूल जोड़ समस्या

का समाधान करता है। मनोवैज्ञानिक ने अपसरण चिन्तन को ही सृजनात्मक चिन्तन मान है। अर्थात् सृजनात्मक चिन्तन वह है जो नवीन सार्थक व मौलिक हो।

## 9.3 परिभाषाएं

सामान्य शब्दों में कुछ नया अलग अनोखा करने की क्षमता सृजनात्मकता कहलाती है पर जो नया व अनोखा है वह सृजनात्मक तभी कहलाएगा जब इसमें उपयोगिता का गुण भी होना चाहिए। कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाऐं निम्न प्रकार है -

स्टेगनर एवं कारवॉस्की के अनुसार - सृजनात्मकता में पूर्व अथवा आंषिक रूप से नवीन वस्तु का उत्पादन निहित है।''

टौरेन्स के अनुसार ''सजृनात्मक समस्याओं, कमियों, ज्ञान में अन्तर, खाये तत्वों, अव्यवस्थाओं इत्यादि के प्रति संवेदनशील बनते की प्रक्रिया है। इस में कठिनाइयों की पहचान करना, समाधानों की खोज, कमियों के विषय में अनुमान लगाना अथवा कमियों के विषय में परिकल्पनाओं की सूत्रबद्धता, परिकल्पनाओं का पुन: परीक्षण तथा परीक्षण तथा सम्भवतय: उनका रूपान्तरण एवं पुन: परीक्षण और अन्तत: परिणामों की घोशणा निहित है।''

गिलफोर्ड के अनुसार - कभी सृजनात्मकता से अभिप्राय क्षमता से होता हैं, कभी सृजनात्मक रचना से तथा कभी सृजनात्मक उत्पादकता से।''

कागन तथा हैवरमन ने अपनी पुस्तक ''मनोविज्ञान - एक परिचय'' में ''प्रतिमाओं, प्रतिकों, संप्रत्ययों, नियमों एवं अन्य मध्यस्थ इकाइयों के मानसिक जोड़-तोड़ को चिन्तन के रूप में परिभाषित किया है।

इस प्रकार अनेक मनोवैज्ञानिक ने सृजनात्मकता को भिन्न - भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है - परन्तु अधिकतर परिभाषाएं संक्षिप्त होने के कारण सृजनात्मक चिन्त की व्याख्या ठीक ढंग से नही होने के कारण सृजनात्मक चिन्तन को उचित व विस्तृत परिभाषा ड्रेवडाल ने 1956 में दी है जो इस प्रकार है - 'सृजनात्मक चिन्तन या सृजनात्मकता व्यक्ति की उस क्षमता को कहा जाता है जिससे वह कुछ नयी जीचों, रचनाओं या विचारों को पैदा करता है जो नया होता है व जो पहले से ज्ञान नहीं होता । यह एक काल्पनिक क्रिया या चिन्तन संष्लेशण हो सकता है.... इसमें गत अनुभूतियों से उत्पन्न सूचनाओं का एक नया पैर्टन और सम्मिश्रण सम्मिलित हो सकता है। यह निश्चित रूप से उद्देश्यपूर्ण या लक्ष्य होता है न कि एक निराधार स्वप्न चित्र होता है -- यह वैज्ञानिक, कलात्मक या साहित्यिक रचना के रूप में हो सकता है।''

## 9.4 सृजनात्मकता की विशेषतायें

1 सर्जनात्मक चिन्तन में प्राणी लक्ष्य निर्देशित व्यवहार करता है

2 व्यक्ति कुछ नवीन एवं भिन्न वस्तु की रचना करता है जो मौलिक व अनूठा होता है यह अपूर्ण रचना शाब्दिक, अशाब्दिक, मूर्त, अमूर्त कुछ भी हो सकती है साथ ही इस अपूर्ण रचना का लाभदायक होना भी आवश्यक है अगर वस्तु मोलिक व अनुठी है पर लाभदायक नहीं तो

सृजनात्मक नहीं कहलाएगी। सृजनात्मकता में मौलिकता व नवीनता के साथ उपयोगिता का गुण भी होता है।

3 सृजनात्मक चिन्तन में व्यक्ति समस्या के भिन्न भिन्न पहलुओं पर भिन्न भिन्न दिशाओं में चिन्तन करता है इसे अपसरण चिन्तन भी कहते है।

4 सृजनात्मक चिन्तन, बुद्धि का एक विशेष तरीका है। यह बुद्धि से एक अलग संप्रत्यय है क्योंकि बुद्धि में सृजनात्मक चिन्तन के अलावा भी अन्य मानसिक क्षमताएं सम्मिलित है।

5 सृजनात्मक चिन्तन व्यक्ति द्वारा पहले से प्राप्त सार्थक ज्ञान पर निर्भर करता है। यह ज्ञान जितना अधिक होगा सृजनात्मक चिन्तन की क्षमता उतनी ही अधिक होगी।

6 सृजनात्मक चिन्तन में एक सीमा तक अभिसारी चिन्तन भी सम्मिलित होता है। अभिसारी चिन्तन द्वारा व्यक्ति कुछ तरह की सूचनाएं एवं सामग्रिया एकत्रित करता है। जिससे सृजनात्मक समाधान में मदद मिलती है।

7 सृजनात्मकता सर्वव्यापक है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति में सृजनात्मकता का कुछ अंश अवश्य ही पाया जाता है पर उसका क्षत्र व डिग्री अलग अलग हो सकती है।

8 सृजनात्मक योग्यतायें प्राकृतिक होती है पर इन्हें प्रशिक्षण, शिक्षा व अभ्यास द्वारा पोशित किया जा सकता है।

9 सृजनात्मकता का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, कोई भी विचार अथवा अभिव्यक्ति जोकि सृजनात्मक, मौलिक व उपयोगी है सृजनात्मकता का उदाहरण है, चित्र, तत्र्य, मूर्तिबला, वैज्ञानिक अन्वेषण, शिक्षण , व्यापार, व्यवसाय, सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र, खेल, कहानी, नाटक, कविता, गीत लिखना ये सभी इसमें आते है।

10 कोई भी सृजनात्मक अभिव्यक्ति, सृजनकर्ता के लिए प्रसन्नता व आत्म संतोश का स्रोत होती है।

11 किसी समस्या अथवा उसके अंश की पुन: "यारण्या भी सृजनात्मकता की परीधी में आता है।

12 सृजनात्मकता प्रक्रिया व परिणाम दोनों ही है।

13 सृजनात्मकता के स्वरूप् को संप्तनात्मक व्यक्तियों, बालाकों के व्यक्तित्व गुणों के द्वारा भी समझा जा सकता है। सृजनात्मक व्यक्तियों में स्वतंत्रता, जिज्ञासा, संवेदनशीलता, स्वायत्तता, आत्म-विश्वास, हास जैसी अनेक विशेषताएं विद्यमान होती है।

## 9.5 सृजनात्मक के तत्व

सृजनात्मक के 4 प्रमुख तत्व है। जो निम्न प्रकार है -

**(i) प्रवाहिता (Fluency)-** धारा प्रवाहित से तात्पर्य विचारों के प्रवाह व अनेक तरह के विचारों की खुली अभिव्यक्ति से है। प्रवाह को 4 भागों में बांटा गया है।

(अ) वैचारिक प्रवाह - वैचारिक प्रवाह से तात्पर्य अधिक से अधिक विचारों को उत्पन्न करना है। जैसे कक्षा में अध्यापक किसी समस्या के अधिक से अधिक संभावित समाधानों को विद्यार्थियों को बताने को कहता है या किसी वस्तु के अधिक से अधिक असाधारण उपयोग।

(ब) अभिव्यक्ति प्रवाह - से तात्पर्य आन्तरिक क्षमताओं के बाह्य अभिव्यक्ति से है जैसे बच्चे को अधुरा चित्र पूर्ण करने का अवसर देना, अधूरे वाक्य पूर्ण करना, शब्दों से वाक्य निर्माण को प्रेरित करना।

(स) साह्चर्य प्रवाह - शब्दों व वस्तुओं में परस्पर साहचर्य स्थापित करना।

(द) शब्द प्रवाह - से आशय मौखिक एवं लिखित रूप से विचारों की शब्दों के द्वारा अभिव्यक्ति में धारा प्रवाह, सार्थक व सही शब्दों का चयन एवं उपयोग करने की क्षमता से है।

**(ii)** **लचीलापन (Flexibility)**- लचीलापन से तात्पर्य किसी समस्या के समाधान के लिए विभिन्न ढंग एवं तरीकों को अपनाने से है, विकल्प एक दूसरे से जितने भिन्न होंगे सृजनात्मकता उतनी ही अधिक होगी। इससे पता चलता है कि व्यक्ति की समस्या को कितने अलग - अलग तरीके **अपनाकर समाधान कर सकता है।**

**(iii)** **मौलिकता (Originality)**- मौलिकता से तात्पर्य अनोखेपन से है। अर्थात् विचारों की पूर्णत नवीन अभिव्यक्ति या समस्या का अन्य व्यक्तियों से भिन्न समाधान। जब व्यक्ति किसी समस्या का एक बिलकुल नया, अनूठा व उपयुक्त समाधान करता है, नए गीत, कहानी, कविता लिखता है ये सब मौलिकता की क्षेणी में आते है।

**(iv)** **विस्तारण(Elobration)** - नये विचारों, भावों की विस्तृत, व्यापक व ग्रहन प्रस्तुतीकरण करने की क्षमता विस्तारण में आती है इसमें व्यक्ति नये व ऊँचे विचारों को एक साथ संगठित कर उसका अर्थपूर्ण ढंग से विस्तार करता है जैसे संक्षिप्त घटना, परिस्थिति को विस्तृत करके प्रस्तुत करने की क्षमता, किसी अपूर्ण चित्र को पूर्ण करने की क्षमता, विस्तारण क्षमता को प्रदर्शित करती है।

**सृजनात्मक चिन्तन की अवस्थाएं -**

सृजनात्मक चिंतन की चार अवस्थाएं होती है इन्हीं चार अवस्थाओं से गुजर कर एक व्यक्ति सृजनात्मक चिंतन कर पाने में सफल होता है यह अवस्थाएं अग्रलिखित है -

**1** **आयोजन (Preparation)** - सृजनात्मक समस्या समाधान प्रक्रम के इस पहले चरण में उन सभी सूचना को एकत्रित किया जाता है जिससे समस्या समाधान में मदद मिलें। इस अवस्था में समस्या से संबंधित सभी आवश्यक तथ्यों, प्रमाणों, सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है समस्या को परिभाषित कर इसके पक्ष - विपक्ष हर संभावित आयाम पर सूचनाओं का सष्लेशण किया जाता है यह चरण कितना लम्बा चलेगा ये व्यक्ति के ज्ञान भंडार व समस्या के स्वरूप पर निर्भर करता है यदि ज्ञान भण्डार विस्तृत होगा समस्या सरल होगी तो आयोजन में कम समय लगेगा। यदि समस्या कठिन तथा ज्ञान भंडार सीमित तो आयोजन अवस्था लम्बे समय तक चल सकती है।

2 **उद्भवन (Incubation)** - सभी संबंधितसूचनाओं को एकत्रित करने के बाद व्यक्ति सूचना के बारे में चेतन रूप से चिन्तन करना छोड़ देता है परन्तु अचेतन रूप से समस्या के बारे में सोचता रहता है। उद्भवन काल में कोई नई सूचना, नया ज्ञान अथवा अनुभव भंडार में जमा नहीं होता है।

3 **प्रबोधन (Illumination)**- इस अवस्था में अचानक व्यक्ति को समस्या का समाधान मिल जाता है। जब अचेतन रूप से व्यक्ति समस्या के भिन्न भिन्न पहलुओं को पूर्ण संगठित करता है तो अचानक किसी नये संगठन से समस्या का समाधान मिल जाता है। प्रबोधन कोहलर की सूझ के सामान है। प्रबोधन की अवस्था कभी भी उत्पन्न हो सकती है, कहीं भी, कुछ लोगों को नींद में स्वप्न में प्रबोधन की अनुभूति हो जाती है।

4 **प्रमाणिकरण या संशोधन (Verification and Revision)** - इस अवस्था में प्रबोधन की अवस्था से प्राप्त समाधान या निष्कर्ष की जांच व मूल्यांकन किया जाता है कि प्राप्त समाधान ठीक है या नहीं। यदि समाधान ठीक नहीं तो पुन: अन्य समाधान की खोज की जाती है।

## 9.6 सृजनात्मक चिन्तन के गुण

1 सृजनात्मक चिन्तन में औसत व औसत से उच्च बुद्धिलब्धि पायी जाती है।

2 सृजनात्मक विचारक में अभिव्यक्ति की क्षमता होती है।

3 नवीनता व जटिलता में अभिरूचि अधिक होती है।

4 स्वगृही होते है अपने विचारों की अभिव्यक्ति जोर दार तरीके से व खुल कर करते है अन्य लोगों की प्रत्युत्तर या अनुमोदन की परवाह नहीं करते।

5 अपनी इच्छाओं का दमन नहीं करते हैं। दमन द्वारा इच्छाओं को नियंत्रित नहीं कर पाते है।

6 विचार निरन्तर गतिशील होते है।

7 प्रत्येक कार्य तत्परता से करने की क्षमता होती है।

8 सुझाव को स्वीकार करने में संकोच नहीं करते है।

9 मनोविनोद प्रिय व हास्य भाव की प्रधानता होती है।

10 मौलिकता का गुण पाया जाता है।

11 स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता होती है।

12 स्वायत्ता की भावना होती है।

13 अधिक संवेदनशील होते है।

14 प्रबलता का गुण होता है।

15 तार्किक क्षमता अधिक होती है।

16 स्वतंत्रता व व्यक्तिपरकता की भावना अधिक होती है।

17 उच्च आकांक्षा स्तर होता है।

18 जोखिम उठाने की क्षमता होती है।

19 कर्त्तव्य निष्ठा व दृढ़ निश्चयी स्वभावयुक्त होते है।

20 उत्साही व साहसी होते है।

## 9.7 सृजनात्मक बालकों की पहचान की आवश्यकता

सृजनात्मक बालकों की पहचान की आवश्यकता निम्न कारणों से अत्यावश्यक है -

- यह प्रभावशाली व्यक्तिगत शिक्षण में सहायक है।
- यह कक्षा में निदानात्मक कार्यक्रमों के प्रबन्ध में सहायक है।
- मानव मन व व्यक्तित्व को समझने में सहायक है।
- यह बोधात्मक तथा सौन्दर्यात्मक विकास के निर्देशन में सहायक है।
- बलकों की विशेष सृजनात्मक का क्षेत्र जान इस क्षेत्र के विकास के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है।
- सृजनात्मक क्षेत्र को जान उसका उपयोग बालक के शिक्षण में भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ एक बालक को क्ले से कार्य करना अत्यन्त पंसद है तो उसे अंकों का सप्रत्यय क्ले के द्वारा, अंकों को बनाकर भी सीखाया जा सकता है जो उसकी सृजनात्मक व शिक्षण दोनों में सहयोग प्रदान करेंगा।
- यह कार्यक्रमों परिणामों एवं प्रक्रियाओं के मूल्यांकन में सहायक है।
- यह भविष्य निर्देशन की आवश्यकता पर बल देने में सहायक है।
- यह विषय व व्यवसाय के चुनाव के परामर्श व निर्देशन में भी सहायक है।

## 9.8 सृजनात्मक बालकों की पहचान

इस भाग में कुछ लक्षणों का वर्णन किया गया है इन लक्षणों के आधार पर विद्यालय में एक अध्यापक या परामर्शदाता शैक्षिक योग्यतायुक्त बालकों, कलात्मक योग्यतायुक्त बालकों, यांत्रिक व वैज्ञानिक क्षमतायुक्त सृजनात्मक बालकों की पहचान कर सकता है -

(i) शैक्षिक योग्यतायुक्त सृजनात्मक बालकों की पहचान -

- ये बहुत तेजी से व सरलता से सीखते है।
- बहुत प्रश्न पूछते हैं जिज्ञासा अधिक होती है।
- शब्दावली बहुत विषाल व अच्छी होती है।
- वार्तालाप करने में बोलने में प्रवाह व विशेष शब्दों व सोच की स्पष्ट झलक मिलती है वार्तालाव अपनी आयु से अधिक परिपक्व, स्पष्ट व आत्म विश्वास से भरा होता है।

- व्यवहारिक ज्ञान अधिक होता है।
- निरीक्षण बहुत तीक्ष्ण होता है शीघ्र ही चीजों को समझ लेते हैं।
- सीखी हुए चीजों का तुरंत अन्य परिस्थितियों में स्थानान्तरण कर लेते है अधिगम स्थान्तरण का गुण देखने को मिलता है।
- वस्तुओं के आपसी संबंधोंको सीखने व समझने की तीव्र क्षमता होती है।
- विषयों पर तर्क करते हैं।
- विभिन्न प्रकार की रूचियां होती है।
- अनेक विषयों की जानकारी होती है।

(ii) कलात्मक प्रतिभा सम्पन्न सृजनात्मक बालकों की पहचान -

- अपने चित्रों में, लेखन में विभिन्न विषयों का समावेष करते है।
- दूसरे लोगों की सहजता से नकल करते है।
- अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति को बोलने की बजाय कलात्मक रूप से करते है चाहे वो कविता, कहानी, लेखन हो या चित्रों द्वारा।
- अतिरिक्त समय में चित्र बनाना या अन्य कलात्मक कार्य करते है इन्हें कही भी चित्र बनाते देखा जा सकता है।
- हर कार्य चाहे वह लेखन हो या अपनी कॉपी का जिल्त चड़ा उसके कवर पेज को सजाना सबमें मौलिकता, नवीनता व सुंदरता की कलात्मक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।
- अनुपयोगी वस्तुओं का उपयोगी उपयोग की क्षमता अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक होती है।
- नयी चीजों के साथ हमेशाकार्य करने, प्रयोग करने को तैयार रहते है।
- अपने कार्यों को बहुत अच्छे से करते है कार्यों में मौलिकता, प्रवीणता की झलक देखने को मिलती है इससे इन बालकों को अत्यन्त प्रसन्नता तथा संतुष्टि प्राप्त होती है।
- दूसरे लोगों की कलाकृतियों में, कला प्रदर्षनीयों में, कलात्मक वस्तुओं को देखने में विशेष रूचि लेते है।
- इन्हें पढ़ने की बजाय कार्य करके सीखना ज्यादा पंसद होता है व इस प्रविधि के इस्तेमाल से ये बालक तेजी से सीखते है।

- कार्यों को तल्लीनता से, बिल्कुल लीन होकर करते है, कार्यों में छोटी से छोटी चीजों का भी विशेष ध्यान रखते है।

(iii) यांत्रिक व वैज्ञानिक क्षमता युक्त सृजनात्मक बालकों की पहचान -

- इन्हें गैजेट्स का अधिक शेख होता है जैसे - कैल्क्यूलेटर, मोबाइल, घड़ी, टीवी, रेडियो।
- पहेलियो को करने में बहुत रूचि होती है व बहुत अच्छे से कर पाते है।
- क्लॉकस या अन्य सहायक सामग्रिया उपलब्ध होने पर कार, ट्रेन व अन्य मशीनों के मॉडल्स बनाते है।
- इनके चित्र हमेशावाहनों व मशीनों से संबंधितहोते है।
- इनका आंख - हाथ समन्वयक (eye-hand coordination)बहुत अच्छा होता है सुन्दर, सूक्ष्म हस्तकौशल करने की क्षमता रखते है।
- अमूर्त धारणाओं को समझने की क्षमता अत्यन्त तीव्र होती है उदाहरणार्थ अगर आप मौखिक रूप से एक मकान का नक्षा समझाये तो ये बच्चे बहुत शीघ्रता व अच्छे से समझ पाते है तथा अपनी और से उसमें सुधार या परिवर्तन भी बताते है।
- यांत्रिक संयंत्रों, मशीनों से अधिक रूचि लेते है, उनके बारे में जानना चाहते है कि ये कैसे कार्य करती है।
- इन्हें प्रोजेक्टस पर कार्य करने में अत्यन्त आनन्द आता है रूचि के प्रोजेक्टस् कार्य होने पर नियत से अधिक समय इस पर व्यतीत करते है।
- प्रयोगों, परियोजनाओं की असफलता पर कभी हताश नहीं होते, इस कार्य को नय तरीकों से करने की योजनाएं सोचते है व क्रियान्वित करते है।
- इन्हें वैज्ञानिक कार्यो, मषीनो का विभिन्न प्रयोगों, विज्ञान, गणित इन कार्यों व विषयों को जानने में अधिक रूचि होती है।

## 9.9 सृजनात्मक बालकों की विशेषताएं

सृजनात्मक बालकों में निम्न विशेषताएं पायी जाती है -

- सृजनात्मक बालकों में समृद्ध कल्पनाशीलता देखने को मिलती है।
- अधिगम स्थानान्तरण की तीव्र योग्यता होती है।
- अपने कार्यों को तल्लीन, पूर्णत मग्न होकर कर करते है।
- कार्य आरंभ करते है तो पूर्ण करने के पश्चात ही दम लेते है।
- अपने निर्णय स्वयं लेते है, लेने की क्षमता रखते है अन्य बालकों पर अक्षित नहीं होते।

- एक साथ बहुत सारे विचारों पर ध्यान केन्द्रित कर पाते है।
- जटिलता में विशेष रूचि रखते है।
- संवेदनशील होते है।
- जिम्मेदारी की भावना होती है।
- अपनी कमियों व खुबियों से भली भांति परिचित होते है।
- विरोधी तत्वों को समझ एकीकरण करने की क्षमता रखते है।
- इनका चिंतन स्पष्ट होता है।
- जिज्ञासु प्रवृति के होते है अत्यधिक प्रश्न पूछते है।
- समस्याओं का समाधान मौलिकता पूर्ण व नवीनता लिये होता है।
- अपने आस पास के वातावरण व घटनाओं के प्रति जागरूक होते है।
- सन्देह की मात्रा अधिक होती है इसलिए हर चीज को परख कर मानने की प्रवृति होती है।
- बुद्धिलब्धि औसत से उच्च होती है,
- साहसी होते है।
- अत्यधिक लगनशील व परिश्रमी होते है।
- व्यवहारों में लोच होता है, एक ही विचाराधारा से चिपके नहीं होते है।
- परिहास व मनोविनोद की मात्रा सामान्य बालकों से अधिक होती है।
- इनके विचारों में व्यवहारिकता व वास्तविकता होती है।

## 9.10 सृजनात्मक बालकों का शिक्षण

**शिक्षक की भूमिका -**

- व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर व्यक्तिगत शिक्षण प्रदान किया जए।
- अध्यापक सृजनशील बालक को पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान करें।
- सृजनात्मक बालकों की बातों को ध्यान से सुने, उनकी सराहना कर उत्साहवर्द्धन करें।
- उनसे खुले प्रश्न (Open ended Questions) पूछे।
- अध्यापक उनके नये विचारों का स्वागत करें।

- अध्यापक विविधता व मौलिकता को प्रोत्साहित करें, इसके लिए मूल्यांकन के लिये वृहद दृष्टिकोण अपनायें।
- समाज में उपलब्ध सृजनात्मक व्यक्तियों का प्रभावपूर्ण उपयोग किया जाए, इसके लिए सृजनात्मक व्यक्तियों, कलाकारों, वैज्ञानिकों को बुलाकर विद्यार्थियों को उनके साथ वार्तालाप का अवसर प्रदान किया जा सकता है।
- साथ ही समाज में उपलब्ध सृजनात्मक संस्थानों का भी प्रभावपूर्ण उपयोग किया जा सकता है जैसे - कला, केन्द्रों, विज्ञान भवन, सृजनात्मक व औद्योगिक कार्य केन्द्रों पर ले जाकर उनका भ्रमण, निरीक्षण व प्रश्न पूछने के अवसर प्रदान करना।
- अध्यापक ऐसे बालकों को विचारों की अभिव्यक्ति के लिए अवसर प्रदान करें।
- कलात्मक अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान किये जाए।
- अध्यापक ऐसे बालकों को आत्म मूल्यांकन के लिए प्रोत्साहित करें।
- अध्यापक कक्षा में मनोवैज्ञानिक स्वतंत्रता युक्त वातावरण पैदा करें कि बालक स्वयं को सुरक्षित व स्वतंत्र महसूस करें।
- नवीनता, मौलिकता को प्रेरित कर ऐसे बच्चों के आत्म विश्वास को उन्नत करने में सहायता प्रदान करें।

**विद्यालय की भूमिका -**

- विद्यालय सृजनशील बच्चों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के अवसर तथा क्षेत्र प्रदान करें।
- सृजनशील बालकों के कार्यो, उत्पादों, विचारों को समस्त छात्रों के समक्ष उपस्थित करने की समय समय पर व्यवस्था करें।
- विद्यालय का आन्तरिक व बाह्य वातावरण ऐसा हो जो सृजनशीलता के लिए उपयुक्त व प्रेरक हो।
- विद्यालय में स्वअनुशासन को प्रेरित किया जाए।
- विद्यालय में विभिन्न सृजनात्मक गतिविधियों के प्रोत्साहन व विकास हेतु विभिन्न साधन, विषय व प्रयोगषालाएं उपलब्ध हो।
- प्रधानाध्यापक व अध्यापक वर्ग में मधुर व माननीय सम्बन्ध हो।
- प्रधानाध्यापक, शिक्षकों व विद्यार्थियों के मध्य भी मधुर, माननीय व प्रेरणादायक संबंधको प्रेरित किया जाए।

- अध्यापक-अभिभावक संघ बनाकर समय-समय पर अध्यापक व अभिभावकों के मिलने की तथा स्वतंत्र वैचारिक आदान प्रदान को व्यवस्था होनी चाहिए ताकि दोनों साथ मिल बालक के विकास हेतु कार्य कर सकें।
- विद्यालय बालको के मूल्यांकन हेतु अनेक आधार उपलब्ध कराएं जो बालकों में सृजनात्मकता को प्रेरित करें।
- विद्यालय में पढ़ाने हेतु योग्य, सृजनशील अध्यापकों का चयन करें।
- अध्यापकों को शिक्षण में नवीनता, मौलिकता व सहायक सामग्रियां इस्तेमाल हेतु प्रोत्साहित करें।
- अध्यापकों के लिए समय-समय पर अभिनव कार्यक्रमों का आयोजन किया जाएं।
- शिक्षकों केा विद्यालय, सरकार द्वारा नए नए प्रयोगों व शोध कार्यों हेतु छूट, सहायता व प्रोत्साहन प्रदान करें।
- शिक्षकों के लिए समय-समय पर भाषाओं, गोष्ठियों, सेमिनार में भाग लेने की व्यवस्था हो।
- शिक्षकों के लिए अपने विषय के नवीनतम ज्ञान, साधनों की जानकारी के लिए समय समय पर कार्यक्रमों की व्यवस्था हो।
- शिक्षकों को ऐसे आयोजनों में जाने की स्वतंत्रता व प्रोत्साहन दिया जाए जहां शिक्षण कला की आधुनिकत प्रविधियों साधनों के बारे में नवीनतम ज्ञान व प्रशिक्षण प्राप्त हो।

इस प्रकार विद्यालय अपनी नितियों, व्यवस्थाओं व शिक्षणों के माध्यम से विद्यालय में ऐसा वातावरण निर्मित कर सकता है जो सृजनशीलता वे प्ररित करें, बालकों में सृजनशीलता के विकास में सहायक हो।

## 9.11 सृजनात्मक को प्रोत्साहित करने हेतु विशेश तकनीक

विद्यार्थियों में सृजनशीलता को प्रोत्साहित करने हेतु शिक्षक, निर्देशन व परामर्श कार्यकर्ता निम्न विधियों, तकनीकों का उपयोग कर सकते है -

**(i) मस्तिष्क उद्धलन विधि (Brain storming method) -** यह विधि 1963 में आसबॉर्न ने दी। इस विधि के उपयोग द्वारा सृजनात्मक विचारों को प्रोत्साहित किया जा सकता है इस विधि में अध्यापक या परामर्शदाता छोटे-छोटे समूहों में कार्य करते है इसके लिए समूह के समक्ष एक समस्या रखी जाती है सभी छात्रों को उसके समाधान के लिए अधिक से अधिक विचार व्यक्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है सभी विचारों का स्वागत किया जाता है, किसी भी विचार को महत्वहीन या अटपटा समझ उसकी आलोचना की किसी को भी स्वतंत्रता नहीं होती है, एक व्यक्ति या शिक्षक सभी प्रकट विचारों को शीघ्रता से लिखता जाता है अन्त में सभी विचारों पर एक एक कर स्वतंत्रता व सम्मानपूर्वक विचार विमर्श किया जाता है इस प्रकार अंत में

समस्या हेतु सर्वाधिक उपयुक्त समाधान को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक विद्यार्थी को अधिक से अधिक विचार पैदा करने का मौका मिलता है। इस विधि के प्रयोग द्वारा सृजनात्मक बालकों की पहचान में भी मदद मिलती है।

**मस्तिष्क उद्धेलन विधि के नियम -**

1. सर्वप्रथम यह सत्र आरम्भ करने से पहले समूह के सम्मुख समस्या का कथन बतलाया व समझाया जाता है। समस्या का केवल एक क्रेत बिन्दु या एक तत्व लिखा जाता है ताकि किसी भी प्रकार के भ्रम से बचा खा सकें।
2. सभी विद्यार्थियों को नये एवं मौलिक विचारों की अभिव्यक्ति हेतु प्रोत्साहित किया जाता है, अधिक से अधिक विचार प्रस्तुत करने, अपने व दुसरों के विचारों को संसोधित व प्रोत्साहित करने को भी कहा जाता है।
3. सभी विचारों की प्रशंसा की जाती है व उन्हें सहर्ष स्वीकार किया जाता है।
4. किसी भी विचार की आलोचना की छूट किसी को भी पनहीं होती है क्योंकि अलोचना से विचारों की अभिव्यक्ति में बाधा उपस्थित होती है।
5. अभिव्यक्त सभी विचारों को लिखा जाता है लिखने को कार्य कोई भी एक व्यक्ति कर सकता है जो शीघ्रता से लिखने की क्षमता मुक्त हो।
6. सभी सदस्यों पर अधिक से अधिक विचार व्यक्त करने का उत्तरदायित्व होता है।
7. अन्त में सभी विचारों पर एक एक कर विचार विमर्श किया जाता है यह विचार विमर्श भी स्वतंत्रता व मित्रता युक्त होता है।
9. अंत में सर्वसम्मती से समस्या का सर्वाधिक उचित समाधान स्वीकार कर लिया जाता है।

इस प्रकार इस विधि का उपयोग किया जाता है यह विधि विद्यार्थियों में कल्पनाशीलता, समस्या - समाधान सोच का विकास, नये विचारों का विकास, सृजनशीलता के विकास हेतु अत्यन्त उपयोगी है इस विधि का उचित उपयोग कर बालकों को अभिव्यक्ति कौशल भी सीखाया जा सकता है।

(ii) **समस्या समाधान विधि -**

समस्या समाधान विधि का उद्देश्य ज्ञान को समस्या के माध्यम से देना है इसमें विद्यार्थी समाधान करके परोक्ष रूप से ज्ञान अर्जित करते है इस प्रकार स्वयं अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान उपयोगी, सार्थक व वास्तविक होता है। इसमें एक ऐसी वास्तविक समस्या का चयन किया जाता है तत्पश्चात् समस्या को सीमाबद्ध कर सीमित कर दिया जाता है सभी छात्र इस समस्या से संबंधित आकड़े संकलित करते हैं, शिक्षक छात्रों को सामग्री एकत्रित करने के स्रोतों का ज्ञान प्रदान करने में, अनुपयोगी आंकड़ों व सामग्री को उपयोगी से अलग करने में सहायता करते है समस्या संबंधित हर प्रकार की जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात उसका उचित रूप से पुनः गठन व मूल्यांकन किया जाता है आंकड़ों से प्राप्त सभी समाधानों पर विचार विमर्श द्वारा अन्तिम

निष्कर्ष निकाल लिये जाते है अन्तिम निष्कर्षोकी वैधता की जांच हेतु उन्हें उपयोग कर देखा जाता है इस प्रकार छात्र स्वयं समस्या का समाधान करना सीखते है छात्रों के बौद्धिक, सामाजिक गुणों के विकास में भी यह विधि अत्यन्त उपयोगी है। समस्या समाधान विधि में समस्या के चयन में बहुत सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए समस्या समाधान हेतु निम्न बातों का विशेश रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए -

1. समस्या वास्तविक व रोचक होनी चाहिए।
2. विद्यार्थियों की आयु, शारीरिक मानसिक क्षमताओं के अनुरूप होनी चाहिए।
3 समस्या छात्रों के पूर्व ज्ञान से संबंधितहोनी चाहिए।
4 समस्या स्पष्ट, निश्चित व समाधान योग्य होनी चाहिए।
5 समस्या पाठ्यक्रम के अनुकूल, शैक्षिक महत्व की समस्या होनी चाहिए।
6 समस्या ऐसी हो जिससे विद्यार्थियों को अधिकतम माध्यमों के इस्तेमाल द्वारा अधिक से अधिक कार्य कर आकड़े एकत्रित करने का अवसर प्राप्त हो।
7 समस्या आस-पास के वातावरण से संबंधित उतेजक हो जो छात्रों के समक्ष वास्तविक कठिनाई उपस्थित करें, जिससे छात्र समस्या को चुनौती के रूप में स्वीकार कर उसका हल करने पर तत्पर हो।
8 समस्या ऐसी हो जो छात्रों, अभिभावकों व विद्यालय पर अनुचित वित्तीय दबाव ना डाले।
9 सबसे महत्वपूर्ण रूप से ध्यान रखने योग्य बात यह है कि समस्या ऐसी हो जिससे छात्रों का ज्ञानवर्धन हो व उन्हें सीखने के अवसर मिलें।

**समस्या समाधान प्रक्रिया के सोपान -**

1. सर्वप्रथम अध्यापक ऐसा वातावरण तैयार करता है जिससे विद्यार्थी किसी समस्या का अनुभव करता है व उसके समाधान की आवश्यकता महसूस करता है। तब शिक्षक व छात्र सब एक मत हो एक समस्या को समाधान हेतु चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं।
2. समस्या की स्वीकृति के पश्चात, समस्या को सुपरिभाषित किया जाता है, उसकी सीमायें निर्धारित की जाती है ताकि विद्यार्थी स्पष्ट रूप से जान सके उसे क्या करना है।
3 विद्यार्थियों द्वारा समस्या का अर्थ समझ लेने पर अध्यापक उन्हें संबंधितआकड़े एकत्र करने के लिए प्रेरित करता है छात्रों को स्रोता से अवगत कराता है जिनसे छात्र आकड़े एकत्रित कर सकता है जैसे पुस्तकें, चार्ट, ग्राफ, मानचित्र, पत्रिकायें, इन्टरनेट पर उपलब्ध सामग्री इत्यादि।
4 आकड़े एकत्रित हो जाने के पश्चात शिक्षक छात्रों की आकड़ों के गठन व मूल्यांकन में सहायता करता है, अनावश्यक सामग्री को हटा दिया जाता है।
5 आकड़ों के आधार पर समस्या के सभी संभावित समाधानों को एकत्रित किया जाता है।
6 सभी सम्भावित समाधानों पर सामूहिक रूप से विचार विमर्श किया जाता है। व तर्कों के आधार पर अन्तिम निष्कर्ष निकाल लिया जाता है।

7 अन्तिम निष्कर्षों का सत्यापन किया जाता है इस हेतु इन निष्कर्षों का अनेक बार अलग अलग परिस्थति में उपयोग कर देखा जाता है।

इस प्रकार इस विधि द्वारा सृजनात्मक व प्रतिभाशाली छात्रों की प्रतिभा को बढ़ाने में उपयोग किया जा सकता है इस विधि द्वारा छात्र अनेक क्रियाएं स्वयं करते हुए, अनुभव द्वारा बहुत सारी चीजें सीखते है।

(iii) सामूहिक चर्चा - सामूहिक चर्चा द्वारा भी सृजनात्मकता का विकास किया जा सकता है सामूहिक चर्चा अनेक प्रकार से की जा सकती है जैसे गोल मेच चर्चा, अनौपचारिक व औपचारिक चर्चा, विचार गोश्ठी, कॉन्फ्रेस आदि। सामूहिक चर्चा द्वारा एक विध चिन्तन या बहुतिध चिन्तन का विकास व प्रेरण किया जा सकता है। बहुविध चिन्तन को ही सृजनात्मक चिन्तन का आधार है सामूहिक चर्चा में किसी भी एक समस्या पर चर्चा की जा सकती है व चर्चा द्वारा निष्कर्ष निकाले जा सकते है। चर्चा की सफलता हेतु चर्चा का लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए व परामर्शदाता को अधिकतम छात्रों की साझेदारी सुनिश्चित कर सभी को अधिकतम प्रश्न पूछने, विचार व्यक्त करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। सामूहिक चर्चा द्वारा छात्रों को मौखिक अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त होता है जो सृजनात्मक के साथ उन्हें आत्म-विश्वास, पहल करने की शक्ति, तर्कपूर्ण व मौलिक चिन्तन, विचारों का संगठन, समूह में सहयोगपूर्ण कार्य करना व अपने विचारों की प्रभावशाली अभिव्यक्ति की क्षमता को बढाता है।

**खेल विधि** - खेल बालकों की एक स्वभाविक क्रिया है, खेलों के माध्यम से रोचक व मनोरंजनपूर्ण तरीकों से छात्रों का अनेक बातें सीखायी जा सकती है खेल विधि आँख - हाथ समन्वय, आत्म अभिव्यक्ति, स्वतंत्रता, प्रसन्नता, सहयोग, आत्म संयम, कठिन परिस्थितियों ने आत्म नियंत्रण, सहन शीलता, निर्णयन आदि क्षमताओं का विकास कर सृजनात्मकता को बढ़ाने में सहायक है। विद्यालयों में सामान्य खेलों की व्यवस्था होती है जिसमें बालकों को भाग लेने हेतु प्रेरित करना चाहिए, कुछ विशेष खेल विधियां जैसे किडरगार्टन, मांटेसरी, द्वारा बच्चों को उपकरण की सहायता से स्वयं करके अर्थात क्रियाओं द्वारा सीखने की छूट होती है इसे बच्चे खेलपूर्ण तरीके से अनेक चीजें सीखते है व उनकी सृजनात्मकता को भी बल मिलता है।

(iv) सिनेटिक्स - यह विधि विलियम गॉर्डन द्वारा विकसित की गई, इस विधि का प्रयोग मुख्यत: जटिल यांत्रिक समस्याओं का हल पाने हेतु किया जाता है। इसमें भी समस्याओं का वैकल्पित समाधान ढूढ़ पाता है।

भूमिका आदा करना (Role play)- इसका उपयोग कर बालकों को ऐसे अनुभव प्रदान किये जा सकते है जो वे सामान्यत वास्तवकि जीवन में नहीं प्राप्त कर पाते है। सोचने का अवसर प्राप्त होता है जिससे उसमें बहुआयामी चिन्तन का विकास होता है।

लक्षणों को सुचीबद्ध करना (Attribute listening)- यह किसी विशेष उत्पाद सेवा या क्रिया में सुधार का महत्वपूर्ण तरीका है उदाहरणार्थ चम्मच का सामान्य उपयोग खाना खाना है पर इसका अन्य उपयोग ढक्कन खोलने में भी किया जा सकता है इस प्रकार वस्तु की विशेषता को बड़ा दिया जाता है।

## 9.12 सृजनात्मक का मापन

सृजनात्मक के मापन हेतु अनेक मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परिक्षण उपलब्ध है ये सभी परीक्षण सामान्यत: शाब्दिक, अशाब्दिक व क्रियात्मक प्रकार के होते है तथा सृजनात्मक के विभिन्न तत्वों जैसे धारा प्रवाहित, विस्तारण, लोचनशीलता, मौलिकता, अभिव्यक्ति आदि का मापन करते हुए सृजनात्मकता का मापन करते है।

अधिकांश परिक्षणों ने निम्न परीक्षण सम्मिलित होते है -

1 आसाधारण उपयोग परिक्षण

2 परिणाम परिक्षण

3 आकृति परीक्षण

1 असाधारण उपयोग परिक्षण - इस तरह के परिक्षण में परीक्षार्थी को एक वस्तु के अधिक से अधिक उपयोग बताने को कहा जाता है, बाद में परीक्षार्थी के उत्तरों का विश्लेषण कर देखा जाता है कितने उपयोग असाधारण पर उपयुक्त है इससे ही सृजनात्मकता की माप होती है।

2 परिणाम परिक्षण - इसमें परीक्षार्थी को किसी परिवर्तन का परिणाम बताने को कहा जाता है जैसे यदि सभी मनुष्य फिर से जानवरों की तरह 4 पैरों पर चलने लग जाएं तब परीक्षार्थी के दिये गए प्रत्युत्तरों में से असधारण व उपयुक्त उत्तर छांट सृजनात्मकता की माप की जाती है।

3 आकृति परिक्षण - इससे कोई ज्यामितिय आकृति देकर इससे जितने अधिक वस्तुओं का चित्र बना सकता है बनाने को कहा जाता है।

उपलब्ध सृजनात्मक परीक्षणों में कुछ निम्न है -

**1 विदेशी परीक्षण -**

1 टॉरेन्स का सृजनात्मक चिंतन का मिनोसाटा परीक्षण - टॉरेन्स ने 1966 में इस परीक्षण का निर्माण किया, सृजनात्मकता के मापन का यह बहुत लोकप्रिय परीक्षण है यह एक कसौटी संदर्भित परीक्षण है। यह प्रवाहित, लचीलापन, मौलिकता का दो उप-परिक्षण शाब्दिक परीक्षण व आकृतिक परिक्षण के माध्यम से सृजनात्मक चिंतन व मापन करता है।

शाब्दिक परीक्षण में सम्मिलित परीक्षण है -

1 उत्पाद सुधार

2 असाधारण उपयोग

3 पूछना व अनुमान लगाना

**आकृतिक परिक्षण में -**

1 वृत परीक्षण

2 आकृति पूर्ति परीक्षण सम्मिलित है।

2 मेडनिक का रिमोट एसोसियेट परीक्षण - यह मेडनिक ने 1971 में दिया। इस परीक्षण में 40 एकांश है। इसमें प्रत्येक एकांश में विद्यार्थी को तीन तीन शब्द दिये जाते है। और विद्यार्थी को इन तीनों शब्दों से संबंधितचौथा शब्द बताना होता है जैसे Cookies, Sixteen, Heart उतर Sweet क्योंकि Sweet को तीनों के साथ संबंधित किया जा सकता है जैसे Sweet Cookied, Sweet Sixteen व Sweet Heart

3 गिलफोर्डे व मेरीफील्ड का सृजनात्मक परीक्षण - यह परीक्षण गिलफोर्डे व मेरीफील्ड ने 1967 में कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए बनाया यह अनेक परीक्षणों युक्त एक परीक्षण माला है जो धारा प्रवाहिता, लोचनशीलता, मौलिकता, का मापन असाधारण उपयोग परीक्षण व परिणाम परीक्षण के माध्यम से करती है।

4 गेटजेल व जेकसन सृजनात्मक परीक्षण -

**गेटजेल व जेकसन ने पांच विभिन्न परीक्षणों का उपयोग कर सृजनात्मक का मापन किया -**

1 शब्द साहचर्य परीक्षण

2 वस्तु उपयोग का परीक्षण

3 छिपी आकृति परीक्षण

4 तीन विभिन्न अन्त

5 समस्याओं की पूर्ति

**भारतीय परीक्षण -**

1 बाकर मेंहदी का सृजनात्मक चिंतन का शाब्दिक व अशाब्दिक परीक्षण (Baquer Mehi's verbal and Non-Verbal test of creative thinking)

बाकर मेंहदी ने 1973 में सृजनात्मक चिंतन का मापन करने हेतु भारतीय परिस्थितियों के अनुकुल शाब्दिक व अशाब्दिक सृजनात्मक सृजनात्मक परीक्षण का निर्माण किया। ये दोनों परीक्षण हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में उपलब्ध है तथा सृजनात्मकता के तीन पहलुओं प्रवाहिता, लचीलापन तथा मौलिकता का मापन करते है शाब्दिक परीक्षण में सम्मिलित परीक्षण निम्न है -

1 क्या होगा परीक्षण

2 वस्तुओं के नये उपयोग

3 नए संबंधोंके परीक्षण तथा

4 रूचि की चीजों का सृजन सम्मिलित है तथा अशाब्दिक परीक्षण में (1) चित्र निर्माण (2) चित्र पूर्ति (3) ज्यामितीय आकृतियां परीक्षण सम्मिलित है।

2 पासी सृजनात्मक परीक्षण माला - 1972 में पासी ने यह परीक्षण माला को पंजाब की जनता के लिए मानकीकृत किया। यह शाब्दिक व अशाब्दिक दोनों परीक्षणों का उपयोग करते हुए

प्रवाहिता, लोचनशीलता, मौलिकता, दृढ़ता आदि का मापन करती है इस परीक्षण में प्रयुक्त उप-परीक्षण -

1 असाधारण उपयोग परीक्षण
2 परीणाम परीक्षण
3 वर्ग पहेली परीक्षण
4 जिज्ञासुता का परीक्षण
5 ब्लॉग परीक्षण इत्यादि।

3 आइ.एस.पी.टी. सृजनात्मक क्रिया स्केल -

इस स्केल के तीन भाग है शाब्दिक, अशाब्दिक व क्रियात्मक परीक्षण। शाब्दिक भाग में चार उप परीक्षण है -

1 अप्रचलित प्रयोग
2 परिणाम प्रश्न
3 उत्पाद सुधार
4 बिम्बात्मक उत्पाद

**अशाब्दिक भाग में 4 उप परीक्षण है -**

1 चित्र निर्माण
2 चित्र मूर्ति
3 कोणिय तथा आयाताकार गतिविधि
4 नमूने के अर्थ

**क्रियात्मक भाग में 6 उप समूह है -**

1 टर्नी डिजाइनस
2 ड्राइग रूप रेखाएं
3 नाव सुधार
4 अप्राप्त भाग गतिविधि
5 चित्र सामग्री की खोज
6 निर्माण योग्यता

5 वी.पी. शुक्ला व जे.पी. शुक्ला परीक्षण - यह परीक्षण वैज्ञानिक सृजनात्मकता का मापन 4 उप-परीक्षणों व 12 एकांशों के माध्यम से करता है परिणाम परीक्षण, असाधारण उपयोग, नया संबंध तथा सोचिए ऐसा क्यों? प्रत्येक एकांष को मौलिकता, लचीलापन प्रवाहिता के लिए प्राप्तांक दिये जाते है तथा सृजनात्मकता का मापन किया जाता है।

## 9.13 सारांश

कुछ अलग, अनोखा, मौलिक व उपयोगी सृजन करने की क्षमता सृजनात्मकता कहलाती है संसार का प्रत्येक व्यकित सृजनात्मक है, बृद्धि की तरह ही सृजनात्मकता का क्षेत्र मात्र अलग अलग है सृजनात्मकता एव आनुवांशिकता से प्राप्त गुण है पर स्वतंत्र प्रशिक्षण से इसे विकसित किया जा सकता है अत्यधिक कठोर अनुशासन सृजनात्मकता के विकास में बाधक है।

सृजनात्मक के तत्व है मौलिकता, धारा-प्रवाहिता, लचीलापन तथा विस्तारण। इनहीं चार तत्वों की उपस्थिति की मात्रा का पता लगा सृजनात्मकता का मापन भी किया जा सकता है।

विद्यालय अध्यापक व परामर्शदाता मनोवैज्ञानिक मानकीकृत परिक्षणों के अलावों लक्षणों के आधार पर भी सृजनात्मकत बालकों की पहचान कर सकते है इन बालकों में सृजनात्मकता के चार तत्वों मौलिकता, लचीलापन, विस्तारण, धारा प्रवाहिता के साथ अनेक व्यक्तित्व गुण जैसे दूरदर्षिता, कार्यशीलता, जिज्ञासा, लग्न, स्वायतता, हास्य, स्वतंत्र कार्य व निर्णयन क्षमता पायी जाती है साथ ही ये बालक अपनी सृजनात्मकता के क्षेत्र में बेहतरीन प्रदर्शन करते है।

विद्यालय, अध्यापक व परिवार सभी बच्चों को स्वतंत्र चिंतन, स्वयं करके सीखना, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रयोग करने की छूट गलतियां करने की स्वतंत्रता अपने अनुभव व गति से सीखने की स्वतंत्रता सृजनात्मकता विकसित करने में योगदान दे सकते है साथ ही परामर्शदाता कुछ विशेष विधियों जैसे मस्तिष्क उदोलन, समस्या समाधान, सामूहिक चर्चा, खेल, भूमिका अदा करना, सिनेटिक्स आदि के माध्यम से सृजनात्मकता के विकसित करने में सहायता प्रदान कर सकते है।

## 9.14 बोध प्रश्न

1 .सृजनात्मकता से आप क्या समझते है? विभिन्न परिभाषाओं की विवेचना के आधार पर सृजनात्मकता की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2 सृजनात्मक चिंतन में कौन कौन से तत्व समाहित है प्रत्येक ततव को समझाइये।
3 सृजनात्मक चिंतन की अवस्थाओं का सविस्तार वर्णन कीजिए।
4 विद्यालय में अध्यापक या परामर्शदाता किन लक्षणों के आधार पर सृजनात्मक बालकों की पहचान की पहचान कर सकता है।
5 सृजनात्मक बालक कितने प्रकार के हो सकते है प्रत्येक प्रकार की पहचान के लक्षण बताइये।
6 सृजनात्मक चिंतन को प्रेरित करने के लिए उपयुक्त किन्हीं 4 प्रविधियां का सविस्तार वर्णन कीजिए।
7 सृजनात्मक चिंतन की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
8 सृजनात्मक मापन किस प्रकार किया जा सकता है।
9 संक्षेप में समझाइए -
  1 मस्तिष्क उद्वोलन

2 प्रबोधन

3 सृजनात्मकता के मापन के आधार

4 सृजनात्मक बालकों के शिक्षण में अध्यापक की भूमि

10. संक्षेप में लिखिए -

1 सृजनात्मक बालकों की विशेषताएं

2 सृजनात्मक बालकों की पहचान के लिए लक्षण

3 सृजनात्मकता को बढाने में विद्यालय की भूमिका

4 खेल विधि

## 9.15 संदर्भ ग्रंथ


1 Advanced Genral Psychology – A.K. Singh

2 Psychology of Teaching and Learning – Dr. J.S.Walia

1 Essentials of Psychology – Robert A. Baron

2 General of Psychology – O.N. Shrivastav

3 Measurement and Testing _ Dr. Mahesh Bhargav

4 एक शिक्षक के अनुभव - डॉ. उशा शर्मा

5 कैसा हो शिक्षक - उशा शर्मा

6 Introduction of Psychology – Morgan and King

# इकाई - 10

# रूचि, आदत और व्यवहार

**इकाई की रूपरेखा**

10.0 उद्देश्य
10.1 निर्देशन एवं परामर्श के मूल तत्व
10.3 परामर्श की प्रक्रिया
10.4 परामर्श के उद्देश्य
10.5 रुचि की परिभाषा
10.6 अभियोग्यता की प्रकृति
10.7 अभिरूचि के विकास में परामर्श का योगदान
10.9 आदत और परामर्श
10.10 बोध प्रश्न

## 10.0 उद्देश्य

- परामर्श के प्रत्यय की परिभाषा करना व उसके घटकों का विश्लेषण करना।
- अभिरूचि की अवधारणा का अध्ययन करना व उसके विभिन्न पदों का अध्ययन करना।
- रूचि की अवधारणा का अध्ययन करना व उसके विभिन्न घटकों का वर्णन करना।
- अभिरूचि की अवधारणा को विश्लेषित करना व उसके विभिन्न आयामों का अध्ययन करना।
- परामर्श का आदतों रुचि व अभिरुचि के विकास में योगदान का अध्ययन करना।

## 10.1 निर्देशन एवं परामर्श के मूल तत्व

**परामर्श का अर्थ :-**

परामर्श एक प्राचीन शब्द है और शब्द को परिभाषित करने के प्रयास प्रारम्भ से ही किए गए हैं। **वैबस्टर शब्दकोश** के अनुसार - ''परामर्श का आशय पूछताछ, पारस्परिक तर्क-वितर्क अथवा विचारों का पारस्परिक विनिमय है।'' इस शाब्दिक आशय के अतिरिक्त परामर्श के अन्य पक्ष भी हैं जिनके आधार पर परामर्श का अर्थ स्पष्ट हो सकता है। उनके विद्वानों ने इन पक्षों पर प्रकाश डालकर परामर्श का अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

परामर्श के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके आधार पर सेवार्थी की वैयक्तिक दृष्टि से ही सहायता प्रदान की जाती है। **गिलबर्ड रेन** के अनुसार भी - **''परामर्श सर्वप्रथम एक व्यक्तिगत सन्दर्भ का परिसूचक है। इसे सामूहिक रूप में प्रयुक्त किया जा सकता**

**है। सामूहिक परामर्श जैसा शब्द असंगत है तथा व्यक्तिगत परामर्श जैसा शब्द भी संगत नहीं है, क्योंकि परामर्श सदैव व्यक्तिगत रूप में ही सम्पन्न हो सकता है।''**

**''परामर्श की परिभाषा :-**

स्मिथ (Smith G.E.) - ''परामर्श एक प्रक्रिया है जिसमें परामर्श प्राप्त करने वाले व्यक्ति को उसकी रूचि, योजना एवं समायोजन के सम्बन्ध में प्राप्त तथ्यों का सारगर्भित व्याख्या करने में सहायता देता है।''

मेकलीन (Macleen) - ''परामर्श दो व्यक्तियों के बीच होने वाली प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति अपनी समस्याओं का स्वयं समाधान नहीं निकाल पाता इसलिए दूसरे व्यक्ति की सहायता लेता है जो अनुभवी और प्रशिक्षित होता है।''

कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) - ''परामर्श श्रंखलाबद्ध सम्पर्क है जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को उसकी अभिवृत्तियों और व्यवहार परिवर्तन हेतु सहायता देता है।''

मायर्स (Myers) - ''परामर्श दो व्यक्तियों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध है जिसमें एक दूसरे को एक विशेष प्रकार की सहायता देता है।''

**परामर्श की विशेषतायें :-**

**कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) के अनुसार -**

(1) परामर्श दो व्यक्तियों के बीच किसी समस्या से सम्बन्धित वार्ता है।

(2) परामर्श की प्रक्रिया में एक व्यक्ति सामान्यत: दूसरे से अधिक गुणी और अनुभवी होता है और दूसरा उससे अपनी समस्या का हल हल चाहता है।

(3) परामर्श में सामान्य बातचीत के माध्यम से दूसरे व्यक्ति की समस्या केसम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना है।

(4) परामर्श में प्रार्थी को स्वयं अपने निर्णय लेने और अपने निर्णयानुसार कार्य करने में सहायता दी जाती है।

**विलियम कोटिल (William Cottle) के अनुसार -**

(1) परामर्श प्रक्रिया में दो व्यक्तियों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध आवश्यक है।

(2) परामर्श प्रक्रिया में परामर्शक द्वारा प्रार्थी से जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक विधियां उपयोग में लाई जाती है।

(3) परामर्शक, प्रार्थी की आवश्यकतानुसार और भावों को ध्यान में रखकर प्रक्रिया में परिवर्तन कर लेता है।

## 10.2 परामर्श के उद्देश्य

परामर्श मनोवैज्ञानिकों (Counselling Psychologists) ने उपबोधन एवं मनश्चिकित्सा (Psychotherapy) को पर्यायवाची माना है तथा इसी को ध्यान में रखकर ही उपबोधन के लक्ष्यों को निर्धारित किया है। **रॉबर्ट, डब्ल्यू ह्राइट** के शब्दों में - **''.....जब कोई व्यक्ति मनश्चिकित्सक के रूप**

**में कार्य करता है तब उसका अभीष्ट प्रभाव डालने या सहमति प्राप्त न होकर मात्रा उत्तम स्वास्थ्य की स्थिति को पुर्नःस्थापित करना होता है। ..... एक मनश्चिकित्सक को न तो कुछ कहना होता है और न ही प्रस्तावित करना।''**

**अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ** (American Psychological Association) के अनुसार उपबोधन के तीन लक्ष्य हैं :-

1. परामर्श प्रार्थी द्वारा स्वयं के अभिप्रेरकों, आत्म-दृष्टिकोणों एवं क्षमताओं को यथार्थ रूप से स्वीकार करना,
2. सेवार्थी के द्वारा सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक वातावरण के साथ तर्कयुक्त सामंजस्य की प्राप्ति करना तथा
3. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की समाज द्वारा स्वीकृति एवं समुदाय, रोजगार व वैवाहिक सम्बन्धों के क्षेत्र में उनका निहितार्थ करना।

## 10.3 परामर्श की प्रक्रिया

परामर्श अथवा उपबोधन की प्रक्रिया एक विशिष्ट प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने से पूर्व इसकी प्रक्रिया के प्रमुख अंगों का ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। कोई भी प्रक्रिया किसी न किसी दिशा में एक अथवा अनेक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये ही सम्पन्न की जाती है। अत: लक्ष्य अथवा उद्देश्य किसी प्रक्रिया का प्रमुख बिन्दु माना जाता है। इस लक्ष्य को अपने समक्ष रखकर ही प्रयासकर्त्ता विशिष्ट कार्यों का सम्पादन करता है। परामर्श का प्रमुख लक्ष्य विद्यार्थी, अथवा अन्य किसी सेवार्थी में आत्मबोध एवं सामंजस्य की योग्यता का विकास करना है। इस योग्यता के विकसित होने पर वह स्वयं ही अपनी समस्या का समाधान करने योग्य बना जाता है। इस प्रकार लक्ष्य किसी प्रक्रिया की व्यवहारिक क्रियान्विति का प्राथमिक आधार है। इसके अतिरिक्त जिसके लिये प्रयास किया जा रहा है तथा जिसके द्वारा प्रयास किया जा रहा है अर्थात् परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी भी परामर्श की प्रक्रिया के प्रमुख आधार बिन्दु होते हैं। इसलिये यह कहा जाता है कि परामर्श एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है जिसके तीन प्रमुख अंग हैं - लक्ष्य, परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी। इन तीन बिन्दुओं पर आधारित परामर्श की प्रक्रिया पर ही इस अध्याय में वर्णन किया गया है।

**परामर्श की प्रक्रिया के घटक :-**

परामर्श की प्रक्रिया के तीन घटक मुख्य हैं :-

(1) परामर्श के लक्ष्य (Goals of Counselling),

(2) सेवार्थी (उपबोध्य) (Client) तथा

(3) परामर्शदाता (Counsellor)।

परामर्श की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण घटक है - लक्ष्य को निर्धारित करना इन लक्ष्यों को उपबोधक एवं कौशलों के वातावरण एवं समाज के अनुरूप ही निर्धारित किया जाता है, अर्थात् उपबोधक एवं सेवार्थी के धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण के जो मूल्य एवं आदर्श मान्य होंगे उन्हीं के

अनुरूप लक्ष्यों को निर्धारित किया जायेगा। लक्ष्यों के निर्धारण में सेवार्थी की रूचियों, आवश्यकताओं एवं वातावरण को भी ध्यान रखना पड़ता है। एक प्रकार से उपबोधन का लक्ष्य, सेवार्थी को मूल्यों के पुन: अन्वेषण (Rediscovery) में सहायता प्रदान करना होता है।

उपयोग किया जा सकता है। उद्देश्य, क्षेत्र आदि के आधार पर विकसित परामर्श के इन विविध प्रकारों पर ही इस अध्याय में विवरण दिया गया है।

(1) मनोवैज्ञानिक परामर्श (Psychological Counselling),
(2) मनोचिकित्सात्मक परामर्श (Psychotehrapeutic Counselling)
(3) नैदानिक परामर्श (Clinical Counselling)
(4) वैवाहिक परामर्श (Marriage Counselling)
(5) व्यावसायिक परामर्श (Vocational Counselling)
(6) छात्र परामर्श (Students Counselling), तथा
(7) स्थानापन परामर्श (Placement Counselling)

## 10.4 परामर्श के उद्देश्य

परामर्श का उद्देश्य मनावैज्ञानिक विधि से प्रार्थी की समस्याओं को समझकर निदान करना है। परामर्शक प्रार्थी के व्यवहार का अध्ययन करता है और उसकी समस्याओं को सुलझाने के लिए परोक्ष सुझाव देता है। परामर्शक प्रयास करता है कि प्रार्थी की भावनाओं के अनूकूल उसकी समस्या हल हो जाये। प्रारम्भिक उद्देश्य शीघ्र से शीघ्र समस्या से छुटकारा और मानसिक शान्ति पहुंचाना है। परामर्शक प्रार्थी की कष्ट देने वाली कठिनाईयों को क्रम से हल करता है तथा उसे इस योग्य बनाने का प्रयास करता है कि वह भविष्य में इस प्रकार की समस्या का कठिनाई से बचता रहे। परामर्शक का प्रयास होता है कि प्रार्थी की योग्यताओं और क्षमताओं का विकास इस परामर्शक का उद्देश्य अर्थपूर्ण और सारगर्भित परामर्श देना है जिससे प्रार्थी को आरम्भिक चरण में ही सन्तोष और समस्या से मुक्ति पाने का अनुभव होने लगे। प्रार्थी को यह आभास होना चाहिए कि उसे परामर्श से लाभ हो रहा है। उसकी समस्या का निदान निकट है और वह शीघ्र ही अपनी कठिनाई से मुक्ति पा सकेगा।

परामर्श का उद्देश्य स्पष्ट और सरल होना चाहिए और प्रार्थी को पूर्ण रूप से समझ में आ जाये उससे ज्ञात होना चाहिए उसकी समस्या क्या है और निदान क्या हैं। इसलिए परामर्शक कार्यक्रम प्रार्थी की प्रत्येक कठिनाई के समाधान से सम्बन्धित होना चाहिए। परामर्श के उद्देश्य में प्रार्थी की सामयिक समस्या के साथ साथ दीर्घगामी उद्देश्यों को भी ध्यान में रखा जाता है। प्रारम्भिक उद्देश्य इस प्रकार हैं -

1. प्रार्थी की समस्याओं को कठिनाई के क्रम से हल करना।
2. प्रार्थी को आत्मबोध के लिए सक्षम बनाना।
3. प्रार्थी का आत्मविश्वास विकसित करना जिससे वह स्वयं भविष्य में अपनी समस्याओं का निदान कर सके।
4. प्रार्थी को पूर्णत: क्रियाशील बनने में सहयोग देना।

**निदेशात्मक तथा अनिदेशात्मक परामर्श :-**

स्वरूप के आधार पर परामर्श मुख्यत: तीन प्रकार से दिया जाता है -

(1) निदेशात्मक परामर्श (Directive Conselling)

(2) अनिदेशात्मक परामर्श (Non-directive Conselling), तथा

(3) समाहारक परामर्श (Electric Counselling)

**(1) निदेशात्मक परामर्श :-** निदेशात्मक परामर्श की विधि परम्परागत एवं अत्यन्त प्रचलित है। **ई.जी. विलियमसन** इन विधि के प्रमुख समर्थक हैं। निर्देशात्मक परामर्श के अन्तर्गत, परामर्श का मुख्य उत्तरदायित्व विशिष्ट रूप से प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति का होता है। जिसे 'परामर्शदाता' कहा जाता है। परामर्शदाता, उपबोध्य को स्वयं की राय से परिचित कराता है और सेवार्थी को वांछनीय दिशा की ओर अग्रसरित करने हेतु सुझाव भी देता है। परामर्श की सम्पूर्ण प्रक्रिया के अन्तर्गत वह धुरी के समान क्रियाशील रहता है। अत: परामर्शदाता को परामर्श का केन्द्र कहना, अनुचित नहीं होगा।

**(2) अनिदेशात्मक परामर्श :-**अनिदेशात्मक उपबोध सेवार्थी केन्द्रित होता है। इस प्रकार के परामर्श द्वारा व्यक्ति को बिना किसी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष निर्देशन के आत्म-निर्भरता, आत्म-साक्षात्कार (Self-actualization) एवं आत्मानुभूति (Self-realisation) की ओर उन्मुख किया जाता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने तथा इसे सर्व प्रचलित करने का श्रेय **कार्ल रोजर्स** को प्रदान किया जाता है।

**अनिदेशात्मक परामर्श के सोपान :-** इस प्रकार के परामर्श के प्रमुख सोपान निम्नलिखित हैं :-

**(1) वार्तालाप :-** प्रथम सोपान में, परामर्शदाता तथा उपबोध्य के बीच अनेक बैठकों में अनौपचारिक रूप से विभिन्न विषयों पर बातचीत होती है। अनेक बार ये दोनों बिना किसी उद्देश्य के भी मिलते हैं। लेकिन प्रथम सोपान का मुख्य उद्देश्य है - परस्पर सोहार्द की स्थापना करना है जिससे उपबोध्य नि:संकोच रूप से अपनी बात को कहने हेतु मानसिक रूप से तैयार हो सके। उपबोधक द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वह उपबोध्य के साथ मित्र के समान सम्बन्ध स्थापित कर ले और उसके समक्ष ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दे कि मित्र-चिकित्सा (फ्रेंड-थिरैपी) की पद्धति को प्रयुक्त किया जा सके।

**(2) जांच पड़ताल :-** उपबोध्य की वैयक्तिक समस्या, परिस्थिति एवं सन्दर्भों के सम्बन्ध में सविस्तार जांच पड़ताल की व्यवस्था इस सोपान के अन्तर्गत की जाती है। इसलिए परामर्शदाता विभिन्न परोक्ष प्रविधियों का प्रयोग करता है।

**(3) संवेगात्मक अभिव्यक्ति :-** उपबोध्य की व्यवस्थाओं, भावनाओं तथा मानसिक तनावों को अभिव्यक्त करने हेतु उसे अवसर प्रदान करना ही, इस सोपान का मुख्य उद्देश्य है।

**(4) परोक्ष रूप से प्रदान किए गए सुझावों पर चर्चा :-** इस सोपान में उपबोध्य, परामर्शदाता द्वारा दिए गए सुझावों को एक आलोचनात्मक दृष्टि से देखता है।

**(5) योजना का प्रतिपादन :-** इसमें परामर्शदाता को स्वयं की समस्या का हल प्राप्त करने हेतु एक वास्तविक योजना का निर्माण करने का अवसर प्रदान किया जाता है। इस योजना के स्वरूप, प्रभाव इत्यादि के सम्बन्ध में दोनों विचार-विमर्श करते हैं।

**(6) योजना का क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन:-** षष्ठम् सोपान के अन्तर्गत, उपबोध्य द्वारा बनाई गई योजना को क्रियान्वित किया जाता है तथा उसकी प्रभावशील ज्ञात करने के लिए आत्म-मूल्यांकन की भी व्यवस्था भी इस सोपान में की जाती है।

**(3) समाहारक परामर्श :-** समाहारक परामर्श निदेशक और अनिदेशक परामर्श का मिलाजुला रूप है। परामर्शक प्रार्थी की भावनात्मक अभिव्यक्ति को उत्तेजित कर समस्या के रूप और कारण को जानने का प्रयास करता है। थार्न (Thorn) ने समन्यात्मक परामर्श के निम्नलिखित सोपान बताए हैं :-

1. प्रार्थी की व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यकताओं का अध्ययन कर समस्या के प्रमुख कारणों का पता लगाया जाता है।
2. प्रार्थी की समस्या के अनुकूल परामर्श की विधि निर्धारित की जाती है।
3. प्रार्थी की समस्या निवारण हेतु उपयुक्त विधि अपनाई जाती है और उसका प्रभाव देखा जाता है।

## 10.5 रुचि की परिभाषा

**गिलफोर्ड के अनुसार -** ''रुचि किसी व्यक्ति या प्रक्रिया की ओर आकर्षित होने, उसे पसन्द करने तथा उससे दृष्टि प्राप्त करने की ओर ध्यान आकर्षित करने की प्रवृत्ति है।''

**जेम्स ड्रेवर के अनुसार -** ''रुचि अनुभवों का एक क्रियात्मक रूप है।''

**सी.जे. जॉन डारले के अनुसार -** ''रुचियों को उन शक्तियों में से एक शक्ति स्वीकार किया जा सकता है जो कि क्रिया को उत्प्रेरित करती है।''

**रुचियों का वर्गीकरण :-**

बाल्यकाल की सरल व सामान्य रुचियां, किशोरावस्था के आते-जाते विशिष्ट स्वरूप धारण कर लेती है। आयु के अतिरिक्त पर्यावरण, बुद्धि, संवेग, परिपक्वता भी रूचि को प्रभावित करते हैं। सुपर ने रुचियों का निम्न रूप में वर्गीकरण किया है :-

1. अभिव्यक्त रुचि
2. प्रदर्शित रुचि
3. परीक्षित रुचि
4. अन्वेषित रुचि

इसके अतिरिक्त रुचियों के विभिन्न क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार से भी वर्गीकृत किया जा सकता है :-

1. सामान्य रुचि

2. व्यावसायिक रुचि

3. शैक्षिक रुचि

रुचि के तीन पहलू -- जानना, अनुभव करना, इच्छा करना

**रुचि विकसित करने में परामर्श का योगदान :-**

1. किसी क्षेत्र में व्यक्ति या बालक की रूचि तब जागृत होती है जब वह किसी विषय या क्षेत्र के विषय में जानता है। अत: परामर्शदाता को विभिन्न विषयों या क्षेत्रों की छात्रों या वयस्कों को जानकारी देनी चाहिये, जैसे विभिन्न खेलों के विषय में, कला के विषय में साहित्य विषयक। आज का युग टेक्नोलॉजी का युग है। अत: इन विषयों से सम्बन्धित श्रव्य के साथ दृश्य सामग्री का प्रयोग किया जा सकता है।
2. विभिन्न विषयों का अनुभव भी करवाया जा सकता है। जैसे खेल के मैदान में ले जाकर या संगीत समारोह में ले जाकर जहां वह स्वयं अनुभव कर सके।
3. छात्र या व्यक्ति में किसी विषय में उत्सुकता व इच्छा जागृत करने से उसकी रूचि जागृत की जा सकती है।
4. बालकों या वयस्कों की रूचि तब जागृत होती है जब उस विषय की उपयोगिता की जानकारी होती है। यह बात परामर्श द्वारा की जा सकती है।
5. अनेक बार कक्षा मौखिक शिक्षण से उबऊ हो नीरस हो जाती है, अत: शिक्षकों को परामर्श के द्वारा बताया जा सकता है कि बालकों प्रयोग व निरीक्षण का अवसर दें।

**अभिरूचि -**

विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न अभिरूचियां पायी जाती हैं। व्यक्तिगत विभिन्नताओं का यही प्रमुख कारण होता है।

1. **वारेन के अनुसार -** ''अभिरूचि या अभियोग्यता वह दशा या गुणों का रूप है जो व्यक्ति की कम योग्यता की ओर संकेत करती है जो प्रशिक्षण के बाद ज्ञान, दक्षता या प्रतिक्रियाओं को सीखता है, जैसे - भाषा बोलने या संगीतोत्पादन की योग्यता।''
2. **फ्रीमैन के अनुसार -** ''अभिरूचि (अभियोग्यता) एक स्थिति या विशेषताओं का समूह है जो यह इंगित करता है कि व्यक्ति किस विशेष ज्ञान, योग्यता या प्रतिक्रियाओं के समूह जैसे भाषा बोलने की योग्यता, संगीतज्ञ बनने या यांत्रिक कार्य करने की योग्यता का विकास करता है।''
3. **बिंघम के अनुसार -** ''अभिरूचि या अभिक्षमता किसी व्यक्ति के प्रशिक्षण के उपरान्त उसके ज्ञान, दक्षता या प्रतिक्रियाओं को सीखने की योग्यता है।''
4. **ट्रेक्सलर के अनुसार -** ''अभिरूचि या अभियोग्यता वर्तमान दशा है जो व्यक्ति की भविष्य की क्षमताओं की ओर से संकेत करती है।''

**अभिरूचि की विशेषतायें -**

सुपर के अनुसार, अभियोग्यता या अभिरूचि में चार विशेषताएं होती हैं - (1) विशिष्टता, (2) एकात्म रचना, (3) सीखने में सुविधा, (4) स्थिरता।

बिंघम ने अभियोग्यता या अभिरूचि की निम्नलिखित विशेषताएं बतायी हैं -

1. किसी व्यक्ति की अभियोग्यता या अभिरूचि वर्तमान दशा या गुणों का समुच्चय है जो उसकी क्षमताओं की ओर संकेत करती है। यह क्षमता जन्मजात तथा वातावरणजन्य दोनों प्रकार की परिस्थितियों की अन्त:प्रक्रिया पर निर्भर है।
2. अभियोग्यता व अभिरूचि किसी कार्य में सम्भाव्य योग्यता से भी अधिक है। इसमें किसी कार्य को पूर्ण करने में समुपयुक्तता का भाव निहित है। एक व्यक्ति किसी व्यवसाय को यदि पसंद नहीं करता है और न उसमें प्रवीणता ही पाता है तो कहा जा सकता है कि उस व्यवसाय में उसकी अभियोग्यता या अभिरूचि नहीं है।
3. अभियोग्यता या अभिरूचि किसी वस्तु का नाम नहीं है। यह एक अमूर्त संज्ञा है। यह व्यक्ति के गुणों की ओर संकेत करती है। अभियोग्यता या अभिरूचि व्यक्तित्व का अंग है।
4. अभियोग्यता वर्तमान वस्तुस्थिति होने पर भी भविष्य की ओर निर्देश करती है। यह गुणों का समुच्चय है जो क्षमताओं की ओर संकेत करता है। ये परीक्षाएं सीधे भविष्य की सफलता का मापन नहीं करती है। इन परीक्षाओं के आंकड़े इन क्षमताओं के अनुमानांकन करने का साधन प्रस्तुत करते हैं।
5. किसी व्यवसाय में प्रवीणता प्राप्त करने की तत्परता से ही अभियोग्यता का पता नहीं चलता। अभियोग्यता के साथ उस व्यवसाय में उस व्यक्ति की रूचि भी होनी चाहिए।

## 10.6 अभियोग्यता की प्रकृति

किसी व्यक्ति की प्रत्येक कार्य के लिए क्षमता समान रूप से एक सी नहीं हो सकती। एक व्यक्ति कुछ कार्यों को अन्य कार्यों की अपेक्षा कुशलता एवं सरलता से कर लेता है। उसे एक कार्य को करने में रूचि होती है, सन्तोष प्राप्त होता है, जबकि अन्य कार्यों में वह रूचि तथा सन्तोष प्राप्त नहीं करता है।

**अभिरूचि परीक्षण -**

मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार की अभियोग्यता या अभिरुचि परीक्षाओं का निर्माण किया है। इन अभियोग्यता परीक्षाओं का प्रयोग अधिकांशत: भिन्न-भिन्न व्यवसायों के सम्बन्ध में किया जाता है।

अनेक प्रकार के अभिरुचि परीक्षण उपलब्ध है जैसे - संगीत का अभिरुचि परीक्षण, क्लेरीकल अभिरुचि परीक्षण, गणित की अभिरुचि परीक्षण आदि।

**अभिरुचि का महत्व :-**

अभिरुचि या अभियोग्यता का मानव-जीवन में अत्यधिक महत्व है। किसी भी छात्र को निर्देशित करते समय अभियोग्यता विशेष महत्व रखती है। परामर्शदाता अभिरुचि या अभियोग्यता के ज्ञान के आधार पर ही उचित परामर्श देता है। छात्रों को किन व्यवसायों में प्रवेश लेना चाहिए, यह परामर्श तभी दिया जाता

है जबकि छात्रों की क्षमताओं एवं अभिरुचियों का ज्ञान हो। विशेष अभिरुचि या अभियोग्यता परीक्षाओं की सहायता से विशेष जीविकाओं के लिए व्यक्तियों का चयन करने में सुविधा रहती है।

## 10.7 अभिरूचि के विकास में परामर्श का योगदान

अभिरूचि प्रकृतिदत्त जन्मजात विशेषता होती है जिसको किसी व्यक्ति में आरोपित नहीं किया जा सकता। परामर्श द्वारा अभिरूचि उत्पन्न नहीं की जा सकती, परन्तु अभिरूचि व्यक्ति की भविष्य की संभावनओं की ओर इंगित करती है। अत: यह परामर्श का प्रमुख स्तम्भ है। गस्टेड के अनुसार परामर्शदाता को परामर्श प्राप्त करने वाले व्यक्ति के मूल्य अभिवृत्तियों-अभिरूचियों आदि की जितनी अधिक व सटीक जानकारी होगी, उतना ही वह प्रभावी परामर्श दे सकेगा।

व्यक्ति की अभिरूचि के आधार पर ही परामर्श दिया जा सकता है कि वे किन विषयों का चुनाव करे, किन व्यवसायों या किन हॉबीज की चयन कर अभिरूचि या अभिवृत्ति मापक परीक्षाओं के द्वारा प्रामाणिक जानकारी ली जा सकती है।

विलियमसन के अनुसार छात्रों की अभिरूचि के अनुकूल शिक्षा व व्यवसाय चुनने में परामर्श देना परामर्शदाता का कार्य है। उसका दायित्व है कि विद्यार्थी के लिये उसके विकास, प्रगति और समायोजन के सम्बन्ध में परामर्श की आवश्यकता का बोध कराये, जिसका आधार छात्र की अभिरूचि होनी चाहिये।

जोन्स के अनुसार परामर्श तभी प्रभावी होगा, जब परामर्शकर्ता छात्रों के सम्बन्ध में उनकी अभिवृत्ति और अन्य जानकारी अधिक से अधिक प्राप्त कर तैयारी करे।

परामर्शदाता को अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ के अनुसार परामर्श के प्रमुख लक्ष्य परामर्श प्रार्थी को स्वयं की अभिरूचियों, अभिप्रेरकों व आत्म दृष्टिकोण एवं क्षमताओं को यथार्थ रूप में स्वीकार करवाना है।

उन्सूमर एवं मिलर परामर्श छात्रों को विशिष्ट योग्यताओं के आधार पर शैक्षिक व व्यवसायिक योजना निर्माण में सहायक है। व्यक्ति की अभिरूचि के अनुसार क्षेत्र चुनने में अभिवृत्ति ही आधार होती है। अत: परामर्श का भी आधार यही होता है।

**आदत -**

''आदत एक सीखा हुआ कार्य या अर्जित व्यवहार है, जो स्वत: होता है।''

**आदत की परिभाषा :-**

''आदतें व्यवहार करने की और परिस्थितियों एवं समस्याओं का सामना करने की निश्चित विधियां होती है।''

**आदतों के प्रकार -**

आदतें दो प्रकार की होती है - अच्छी और बुरी। इनका सम्बन्ध - जानने, सोचने, कार्य करने और अनुभव करने से होता है। वेलेन्टाइन से इनका वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया है -

1. **यांत्रिक आदतें -** इनका सम्बन्ध शरीर की विभिन्न गतियों से होता है और इनको हम बिना किसी प्रकार के प्रयास के करते हैं, जैसे - कोट के बटन लगाना या जूते के फीते बांधना आदि।

2. **शारीरिक अभिलाषा सम्बन्धी आदतें -** इनका सम्बन्ध शरीर की अभिलाषाओं की पूर्ति से होता है( जैसे - सिगरेट पीना या पान खाना।
3. **नाड़ी-मण्डल सम्बन्धी आदतें -** इनका सम्बन्ध मस्तिष्क के किसी विकास से होता है। ये व्यक्ति के संवेगात्मक असन्तुलन को व्यक्त करती है( जैसे - नाखून या कलम चबाना।
4. **भाषा सम्बन्धी आदतें -** इनका सम्बन्ध बोलने से होता है। जिस प्रकार दूसरे बोलते हैं, उसी प्रकार बोलकर हम इन आदतों का निर्माण करते हैं। यदि शिक्षक शब्दों का गलत उच्चारण करता है, तो बालकों में भी वैसी ही आदत पड़ जाती है।
5. **विचार सम्बन्धी आदतें -** इनका सम्बन्ध आंशिक रूप से व्यक्ति के ज्ञान और आंशिक रूप से उनकी रूचियों एवं इच्छाओं से होता है, जैसे - समय तत्परता, तर्क या कारण सम्बन्धी विचार।
6. **भावना सम्बन्धी आदतें -** इनका सम्बन्ध व्यक्ति की भावनाओं से होता है जैसे - प्रेम, घृणा या सहानुभूति की भावना।
7. **नैतिक आदतें -** इनका सम्बन्ध नैतिकता से होता है  जैसे - सत्य बोलना या पवित्र जीवन व्यतीत करना।

**आदत की विशेषाताएं -**

आदत को सीखने में महत्व ..... सीखना आदतों की निर्माण प्रक्रिया है जो हमसे जीवन के अधिक महत्व्पूर्ण कार्यों के लिये मानसिक शक्ति की बचत करने की क्षमता उत्पन्न करती है।

**आदतों का निर्माण -**

1. **संकल्प -** हम जिस कार्य को करने की आदत डालना चाहते हैं, उसके बारे में हमें दृढ़ संकल्प करना चाहिए। यदि हम सुबह दौड़ने की आदत डालना चाहते हैं, तो हमें यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम दौड़ अवश्य करेंगे। जेम्स का परामर्श है - ''हमें नये कार्य की अधिक से अधिक संभव दृढ़ता और निश्चय से आरम्भ करना चाहिए।''
2. **क्रियाशीलता -** हम जिस कार्य को करने की आदत डालना चाहते हैं, उसके लिए केवल संकल्प ही पर्याप्त नहीं है। संकल्प को कार्य-रूप में परिणत करना ही आवश्यक है। जेम्स का कथन है - ''जो संकल्प आप करें, उसे प्रथम अवसर पर ही पूर्ण कीजिए।''
3. **निरन्तरता -** हम जिस कार्य को करने की आदत डालना चाहते हैं, उसे हमें निरन्तर करते रहना चाहिए। उसमें कभी भी किसी प्रकार का विराम या शिथिलता नहीं आने देनी चाहिए। जेम्स के अनुसार - ''जब तक नई आदत आपके जीवन में पूर्ण रूप से स्थायी न हो जाए, तब तक उसमें किसी प्रकार का अपवाद नहीं होने देना चाहिए।''
4. **अभ्यास -** हम जिस कार्य को करने की आदत डालना चाहते हैं, उसका हमें प्रतिदिनि अभ्यास करना चाहिए। जेम्स का मत है - ''प्रतिदिन थोड़े से ऐच्छिक अभ्यास के द्वारा कार्य करने की शक्ति को जीवित रखिये।''

**आदत के प्रभाव -**

आदत के मुख्यत: चार प्रभाव हैं -

1. आदत कार्य को सरल बना देती है
2. आदत कार्य को अधिक सही बना देती है
3. आदत से थकावट कम होती है
4. आदत कार्य के लिए चेतन ध्यान की आवश्यकता को कम कर देती है।

**अभ्यस्त कार्य से लाभ -**

आदत के द्वारा ही हमारी परम्पराएं एवं रीति-रिवाज स्थायी रहते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे व्यक्तिगत जीवन की अनेक क्रियाएं आदत के ही कारण हमारे अन्दर बिना तनाव उत्पन्न किए ही सम्पन्न हो जाती है।

**अभ्यस्त कार्य से हानियाँ -**

अभ्यस्त कार्य करने में केवल लाभ ही नहीं, वरन् अनेक हानियां भी हैं। आदत की ही वजह से हम प्रगति करने से रूक जाते हैं। यह हमारी आदत के कारण ही होता है कि हम परिवर्तन को पसंद नहीं करते हैं। कईं बार हमारी आदतें इतनी शक्तिशाली हो जाती है कि उनको छोड़ना अत्यधिक कठिन हो जाता है। एक अफीम या पोस्त खाने वाला व्यक्ति इसे छोड़ने के चाहे कितना ही उत्सुक दिखाई पड़े, परन्तु वह इस आदत को छोड़ नहीं पाता।

**आदत निर्माण के पद -**

विलियम जेम्स आदत निर्माण के लिए निम्न चार नियम प्रतिपादित किये हैं -

1. नई आदत बनाने के लिए यथासंभव शक्तिशाली प्रेरणा-शक्ति से कार्य अभ्यास करो।
2. कभी भी नियम या अपवाद मत करो, जब तक आदत स्थायी रूप से बन जाए।
3. अपने निर्णय पर सबसे पहले अवसर पर कार्य करो।
4. अपनी चेष्टा करने की शक्ति को प्रत्येक दिन स्वतंत्र रूप से अभ्यास करके जीवित रखो।

**बुरी आदतों को हटाना-**

1. संकल्प
2. आत्म-सुझाव
3. ठीक अभ्यास
4. नई आदत का निर्माण
5. पुरानी आदत पर ध्यान
6. आदत का एकदम या धीरे-धीरे त्याग
7. अप्रत्यक्ष आलोचना
8. संगति में परिवर्तन

9. दण्ड
10. पुरस्कार

## 10.9 आदत और परामर्श

परामर्श के द्वारा अच्छी आदतों का निर्माण व बुरी आदतों को नष्ट किया जा सकता है। इसके लिये परामर्शदाता को आदत निर्माण व तोड़ने के विभिन्न नियमों व सिद्धान्तों के आधार पर बालक/व्यक्ति का विश्वास जीत सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति जीने में सफलता प्रगति उपलब्ध चाहता है। उसमें जो बाधायें आती है जिनको दूर करने के लिये परामर्श प्रक्रिया अपनायी जाती है। परामर्श का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है और इसके लिये अच्छी आदतों व रचनात्मक रूचि के साथ-साथ व्यक्ति की अभिरूचि व क्षमताओं के आधार पर सही दिशा चयन में मदद करना है। जायसवाल के अनुसार परामर्श एक प्रकार की ज्योति के समान है जिसके उपयोग से व्यक्ति को स्वयं अन्दर व बाह्य स्वरूप पहचानने में सहायता प्राप्त होती है।

अमेरिका में हुये एक शोध के परिणामों के उचित परामर्श की उपयोगिता या महत्व उजागर होता है। एक विद्यालय में बच्चों का आचरण सुधारने के अनेक प्रयत्न किये गये। यहां तक कि उनको स्कूल से निकालने की भी धमकी दी गयी। आचरण में वांछित परिवर्तन नहीं आया, परन्तु उचित परामर्श द्वारा उन्हें और विभिन्न श्रवय दृश्य माध्यमों से जब अच्छे आदतों-व्यवहार का महत्व बताया गया तो वांछित परिणाम सामने आये। अत: यह स्वत: सिद्ध है कि अच्छी आदतों के निर्माण व बुरी आदतों को तोड़ने में परामर्श का महत्वपूर्ण योगदान है। इस प्रकार स्पष्ट है कि परामर्श का आदतों, रुचि व अभिरुचि के विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

## 10.10 बोध प्रश्न

1 परामर्श की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये।
2 ''अभिरूचि को परामर्श से उत्पन्न नहीं किया जा सकता'' टिप्पणी कीजिये।
3 रूचि को विकसित करने में परामर्श की क्या भूमिका होती है ?
4 क्या बुरी आदतों के निवारण में परामर्श सहायक होता है ?
5 ''डांटना या भयभीत करना या दण्ड देना वह परिणाम नहीं ला सकता जो उचित परामर्श'' क्या आप इससे सहमत हैं ?

## 10.11 संदर्भ ग्रंथ


1. **अग्रवाल, जे.सी.** (1989) 'एजूकेशन वोकेशनल गाइडेन्स एण्ड काउन्सिलिंग', दिल्ली दोआबा हाउस।
2. डिन्क मॉयर डान सी. तथा काल्डवेल चाल्स ई. (1970) 'डेवलपमेण्टल काउन्सेलिंग एण्ड गाइडेन्स' मैकग्राहिल बुक कम्पनी न्यूयार्क लन्दन।

3. मायर्स जार्ज ई. (1941) 'प्रिन्सिपिल्स एण्ड टेकनिक्स ऑफ वोकेशनल गाइडेन्स' मैकग्राहिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क।
4. पाण्डेय, के.पी. (1987) 'शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के आधार' अमिताश प्रकाशन, दिल्ली।
5. जायसवाल, सीताराम (1987) 'शिक्षा में निर्देशन और परामर्श' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
6. वर्मा, रामपाल सिंह (1989) 'शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन तथा परामर्श' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
7. एडवर्ड, एलन एल. (1969) 'टेकन्किस ऑफ एटीट्यूट स्केल कन्स्ट्रक्शन' वकील्स फेफर साइमन्स प्राइवेट लिमिटेड, मुम्बई।
8. पाइने, डी.ए. (1967) 'एजूकेशनल एण्ड साइकोलोजीकल मैनेजमेन्ट' आक्सफर्ड पब्लिशिंग कम्पनी, मुम्बई।
9. फ्रीमेन, फ्रेन्कस एस. (1962) 'थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस ऑफ साइकोलोजीकल ट्रेनिंग', आक्सफार्ड पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली।
10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) 'प्रोग्राम ऑफ एक्शन, नेशनल पॉलिसी ऑफ एजूकेशन, मिनिस्ट्री ऑफ एजूकेशन ऑफ इण्डिया', नई दिल्ली।
11. Bloom, B.S., J.T. Hastings and G.F. Maduas, (1971) "Hand book on Formative and Summative Evaluation of Student Learning." New York : Mc Graw Hill Book Company.
12. Cronbach, L.J., (1970) "Essentials of Psychological Testing", New York : Harper and Row, Publishers.
13. Cronbach, L.J. and P.E. Meehl., (1955) Construct Validity in Psychological Tests "Psychological Bulletin," pp. 281-302.
14. Edwards, A.L. (1969) "Techniques of Attitude Scale Construction," Bombay : Vakils, Feffer and Simons Private Ltd.
15. Ferguson, L.W. (1952) "Personality Measurement." New York : Mc Graw Hill Book Company.
16. Guilford, J.P., (1965) "Fundamental Statistics in Psychology and Education." New York : Mc Graw Hill Book Company.
17. Krathwohl, D.R. et.al., (1964) "Taxonomy of Educational Objectives : Handbook II, Affective Domain." New Yourk : David MC Kay Company.

18. MC Ashan, H.H. (1970) "Writing Behavioural Objectives." New York : Harper and Row, Publishers, 1970.
19. Mehrens. W.A. and I.J. Lehamann, (1975) "Measurement and Evaluation in Education and Psychology" New York : Holt, Rinehart and Winston.
20. Sharma, R.A. (2003) Fundamentals of Guidance and Counselling, Meerut R. Lall Book Depot.
21. Simpson, E.J., (1964) 'The Classification of Educational Objectives : Psychomotor Domain' "Illinois Teacher of Home Economics" 10(4) pp. 110-144.
22. Torrance, E.P., (1962) "Guiding Creative Talent." Engle Woof Cliffs, N.J. : Prentice Hall, Inc.
23. Vernon, P.E. (1950) "The Structure of Human Abilities." London : Methuen and Co., Ltd.

# इकाई - 11

# मानसिक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता

**इकाई की रूपरेखा**


11.0 उद्देश्य
11.1 मानसिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का सम्प्रत्यय
11.2 मानसिक स्वास्थ्य. की आवश्यकता
11.3 मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य
11.4 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की आवश्यकता
11.5 मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ
11.6 मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के सिद्धान्त
11.7 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताऐं
11.8 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में समायोजन की प्रक्रिया
11.9 समायोजन के तनाव को कम करने के ढंग
12.10 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान और व्यक्तित्व
11.12 परामर्शदाता के उत्तरदायित्व
11.13 बोध प्रश्न
11.14 सन्दर्भ सूची


## 11.0 उद्देश्य

- मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम, संरक्षण, उपचार
- जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण का विकास
- सामाजिक परिस्थितियों में समायोजन
- सामाजिक स्वीकृति की सीमा में अपनी इच्छाओं की पूर्ति
- व्यक्तियों की सहायता करना ताकि वह एक पूर्ण प्रसन्न, समन्वित तथा प्रभावशाली जीवन व्यतीत कर सके।

## 11.1 मानसिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का सम्प्रत्यय

प्राचीन काल में प्राय: यह धारणा थी कि यदि शरीर पूर्णत: स्वस्थ है, तभी मन भी पूर्णत: स्वस्थ रहता है अर्थात् जब व्यक्ति किसी भी तरह की मानसिक बीमारी से मुक्त होता है तो उसे मानसिक रूप से स्वस्थ समझा जाता है और उसकी उस अवस्था को मानसिक स्वास्थ्य की संज्ञा दी जाती है। लेकिन कुछ

चिकित्सकों का मत है कि मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में भी कभी-कभी मानसिक बीमारी के लक्षण आवेशशीलता, सांवेगिक अस्थिरता, अनिद्रा आदि के लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

जिस प्रकार एक व्यक्ति के लिए उत्तम शारीरिक विकास व स्वास्थ्य के लिए स्वास्थ्य संबंधी नियमों व उपायों को जानना अति उपयोगी रहता है, ठीक उसी प्रकार, एक व्यक्ति के लिए मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा तथा संवृद्धि के लिए भी मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान होना भी अत्यधिक महत्वपूर्ण व आवश्यक होता है। वस्तुत: शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य एक दूसरे के पूरक ही हैं क्योंकि सामान्यत: स्वस्थ शारीरिक व मस्तिष्कीय विकास पर ही संबंधित व्यक्ति का व्यापक रूप से मानसिक विकास आधारित रहता है तथा मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य भी प्राय उत्तम स्तर का ही होता है।

यदि नैदानिक मनोविज्ञान तथा असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास पर ध्यान दे तो यह स्पष्ट होगा कि मनोवैज्ञानिकों की अभिरूचि मानसिक स्वास्थ्य के अध्ययन में एक विशेष आन्दोलन के फलस्वरूप हुआ। इस आन्दोलन का नाम मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन है जिसके शीर्ष नेता डी0 एल0 डिक्स जो माशासूटे में स्कूल शिक्षिका थी एवं क्लिफोर्ड डब्ल्यू0 बिर्स थे। इन लोगों के प्रयास से मानसिक अस्पतालों में रखे गए रोगियों के साथ किए जाने वाले अमानवीय व्यवहार में कमी आयी और मानवीय व्यवहारों में वृद्धि हुई एवं मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने की ओर लोगों का ध्यान गया।

सन् 1990 में येल विश्वविद्यालय का एक स्नातक क्लीफोर्ड बीयर्स अपने घर की चौथी मंजिल से आत्महत्या करने के लिए नीचे कूदा। किसी प्रकार वह बच गया। उसकी विकृत मानसिक स्थिति ने उसे तीन वर्ष तक विभिन्न मानसिक चिकित्सालयों में रखा। बीयर्स ने स्वास्थ्य लाभ करते रहने पर उसने जो अनुभव प्राप्त किए, उसके आधार पर उसने पुस्तक लिखी **'ए माइन्ड दैट फाउन्ड इट्सैल्फ'** । इस पुस्तक ने चिकित्सकों, मनोवैज्ञानिकों, मनोचिकित्सकों को मनुष्य के स्वास्थ्य तथा असामान्य व्यवहार के विषय में नये ढंग से सोचने पर विवश किया और इस प्रकार 'मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान' का सूत्रपात हुआ।

क्लीवर्ड बीयर्स की चिकित्सा एडोलफ मेयर ने की थी, उसी ने बीयर्स को मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन चलाने की प्रेरणा दी। उसी ने Mental Hygiene शब्द को गढ़ा। इन दोनों ने अनेक मानवतावादियों का सम्मेलन किया और **'नेशनल कमेटी फार मेन्टल हैल्थ'** का गठन किया। इसके पश्चात् विश्व भर में मानसिक चिकित्सालयों की स्थापना होने लगी। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के सिद्धान्तों, विषयवस्तु को मनोविज्ञान, जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान, समाजशास्त्र तथा चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्रों में चुना गया, मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान ने चिकित्सा के साथ-साथ, बचाव तथा संरक्षण पर बल दिया। इसके परिणामस्वरूप मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान बाल निर्देशन केन्द्रों में भी महत्वपूर्ण हो गया है।

वर्तमान माल में यह कार्य इतना विकसित हो चुका है कि मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के सिद्धान्तों को शिक्षा की क्रियाओं में भी स्थान दिया जाने लगा है। वर्तमान काल में मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान अब केवल उतना ही नहीं है, वरन् इसका क्षेत्र बहुत ही विस्तृत हो गया है। वह अब इस बात पर भी जोर देता है कि मानसिक विचारो को रोका जाय और इससे सुरक्षित कैसे रहा जाय। आजकल बालकों के

मानसिक आरोग्य की रक्षा करने वाले चिकित्सालय भी खोले जा चुके हैं। शिक्षा-संस्थाओं और उच्च विद्यालयों में मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान की उच्च शिक्षा दी जाती है। वह उनके पाठ्यक्रम का एक आवश्यक अंग बन गया है।

## 11.2 मानसिक स्वास्थ्य. की आवश्यकता

मनुष्य के भौतिकवादी होने से इसका प्रभाव पर्यावरण पर पड़ रहा है जिससे समाज में नयी समस्याओं ने जन्म ले लिया है और यही कारण है कि आज के व्यक्ति शारीरिक रोगों के साथ-साथ मानसिक रोगों से पीड़ित होने लगे हैं। अत: मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान अति आवश्यक हो गया है।

ये समस्याऐं व्यक्ति के व्यवहार को सरलता से जटिलता की ओर ले जा रही हैं। आज के व्यक्ति के सामने समस्याऐं और बाधाएँ अपेक्षाकृत अधिक हैं क्योंकि प्रतिस्पर्धा के कारण उसका जीवन अधिक गतिशील और जटिल है। यही कारण है कि आज के व्यक्ति शारीरिक रोगों के साथ-साथ मानसिक रोगों से अधिक पीड़ित होने लगे हैं।

अत: मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान ही आवश्यक नहीं है, अपितु मानसिक स्वास्थ्य की रोकथाम भी आवश्यक है। व्यक्ति का जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में प्रभावपूर्ण समायोजन मुख्यत: मानसिक स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ उस विज्ञान से है, जिसमें मानसिक रोगों की रोकथाम तथा मानसिक रोगों को दूर करने के उपाय आदि का वर्णन होता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है कि शरीर केवल शारीरिक रोगों से ही दूर या मुक्त न हो बल्कि मानसिक रोगों से भी मुक्त हो। व्यक्ति अपना प्रभावपूर्ण समायोजन तभी कर सकता है ज बवह शारीरिक और मानसिक रूप से पूर्णत: स्वस्थ और निरोग रहे।

## 11.3 मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य

सामान्यत: यह समझा जाता हैं कि जब व्यक्ति किसी भी तरह की मानसिक बीमारी से मुक्त होता है, तो उसे मानसिक रूप से स्वस्थ समझा जाता है और उसकी इस अवस्था को मानसिक सवास्थ्य की संज्ञा दी जाती है लेकिन कुछ चिकित्सकों का मत है कि मानसिक स्वास्थ्य को मानसिक बीमारी की अनुपस्थिति कहना उपर्युक्त नहीं है क्योंकि मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में कभी कभी-कभी मानसिक बीमारी के लक्षण जैसे- आवेगशीलताए सांवेगिक अस्थिरताए अनिद्रा आदि के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इसलिए आधुनिक नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक स्वास्थ्य को समायोजनशीलता की क्षमता को मुख्य कसौटी मानकर इसे परिभाषित किया है।

**हैडफील्ड** विचार करता है कि साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि मानसिक स्वास्थ्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण कृत्य है। हमारे अन्दर बहुत सी एषणाएँ, लालसाएँ, उततेजक धारणाएँ, रूचियाँ, व्यवहार आदि हैं- इनमें से कुछ वंशानुगत हैं और कुछ अर्जित हैं। जब हम इन सबको उचित रूप से पूर्ण विकसित होने का अवसर देते हैं तथा सुसंगठित होने की चेष्टा करते हैं, तभी मानव-व्यक्तित्व विकसित होता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए तीन मुख्य बातें आवश्यक है-

(i) पूर्ण अभिव्यक्ति

(ii) संगतिकरण, और

(iii) मूल तथा अर्जित प्रेरणाओं का सामान्य लक्ष्य की ओर निर्देशन।

**कार्ल मेनिंगर 1945** के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम खुशी तथा प्रभावशीलता के साथ वातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के साथ मानव समायोजन है- वह एक संतुलित मनोदशा, सतर्क बुद्धि, सामाजिक रूप से मान्यव व्यवहार तथा एक खुश मिजाज बनाए रखने की क्षमता है।

**स्ट्रेन्ज 1965** ने मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए कहते है कि मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य सीखे गए उस व्यवहार से होता है जो सामाजिक रूप से अनुकूली होते हैं और व्यक्ति को अपनी जिन्दगी के साथ पर्याप्त रूप से मुकाबला करने की अनुमति देता है।

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर मानसिक स्वास्थ्य के स्वरूप के बारे मेें कहा जा सकता हैं कि मानसिक स्वास्थ्य की मूल कसौटी अर्जित व्यवहार है। इस तरह का व्यवहार का स्वरूप कुछ ऐसा होता है जिससे व्यक्ति को सभी तरह के समायोजन करने में मदद मिलती है। मानसिक स्वास्थ्य एक संतुलित मनोदशा की अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति अपने जिन्दगी के विभिन्न हालातों में सामाजिक रूप से तथा सांवेगिक रूप से एक मान्य व्यवहार बनाए रखता है।

## 11.4 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की आवश्यकता

व्यक्ति की आवश्यकतायें पूर्ण नहीं हो पाती है, जिसके कारण जीवन में द्वन्द्व और विफलतायें बढ़ती जा रही है। ये मानसिक सन्तुलन पर बुरा प्रभाव डालती हैं। आज आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को मानसिक स्वास्थ्य के साधारण नियमों का ज्ञान हो।

जो व्यक्ति मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ या बीमार होते हैं, वे अपनी शारीरिक व मानसिक योग्यताओं का उचित विकास नहीं कर पाते हैं तथा दूसरों पर भार स्वरूप रहते हैं। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के द्वारा ऐसे व्यक्ति का अध्ययन और उपचार किया जा सकता है जिससे राष्ट्र की मानव शक्ति का उचित उपयोग हो सकता है।

अमेरिका में कुछ वर्ष पूर्व एक सर्वेक्षण किया गया था जिससे मालूम हुआ है कि प्रत्येक सोलह व्यक्तियों में से एक और प्रत्येक अठारह बच्चों में से एक मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ है। अमेरिका के चिकित्सलयों में लगभग 50 प्रतिशत व्यक्ति मानसिक रोगी हैं। भारत में भी मानसिक रोग बढ़ते जा रहे हैं और उनकी रोकथाम के लिए यह ज्ञान आवश्यक है।

- यूनेस्को प्रीएम्बल में कहा गया है कि युद्ध मानव के मस्तिष्क में होता है। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को दूर करने के लिए आवश्यक हे कि विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को मानसिक तनाव से बचाया जाय।
- अभिभावकों तथा माता-पिता को यदि मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञान हो तो वे अपने बालकों को समायोजित करने में सफलता प्राप्त रक सकते हैं। वे बालकों को मानसिक रोगी होने से बचा सकते हैं। वे बच्चों के विकास के साथ-साथ अन्य अभिभावकों की दृष्टि को भी विकसित करते हैं।

- मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की आवश्यकता अध्यापकों के लिए इसलिए है कि उन्हें छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य की जानकारी होनी चाहिए। इस ज्ञान के अभाव में उन्हें समायोजन के दोषों से बचाया नहीं जा सकता। साथ ही स्वयं को भी मानसिक रूप से स्वस्थ बनाने में इस ज्ञान का उपयोग कर सकते हैं।
- मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विकसित है। आजकल इनका उपयोग सेना तथा विभिन्न उद्योगों में भी किया जाता है।
- प्रत्येक क्षेत्र में प्रबन्धकों के लिए मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की आवश्यकता इसलिए है कि इसकी जानकारी से वे अपने कार्यकर्त्ताओं से सहायता प्राप्त कर सकेंगे।

## 11.5 मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ

**लैण्डिस तथा बोल्स (1950)** के अनुसार ßमानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान मानसिक स्वास्थ्य की रोकथाम या आरोग्य अथवा दोनों के उपायों का क्रमबद्व प्रयोग है।

**पेज (1960)** के अनुसार ßमानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान एक शिक्षा आन्दोलन है जिसका सम्बन्ध स्नायुविक तथा मानसिक विकृतियों के निरोग और निराकरण तथा स्वास्थ्यकर व्यक्तित्व विकास से है जिससे अधिकाधिक कार्यक्षमता और सुख की प्राप्ति हो।

**कोवाइल (1963)** और उनके साथियों ने मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ अमेरिकन साइक्रियाट्रिक एसोसिएशन के विचारों के आधार पर व्यक्त करते हुए लिखा है कि मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान में यह सभी साधन आते हैं जिनकी सहायता से उपयुक्त रोकथाम और प्रारम्भिक उपचार के द्वारा मानसिकता रोग की घटनाओं को कम किया जाता है तथा लोगों को बढ़ाया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि ßमानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें मानसिक और स्नायुविक विकृतियों की रोकथाम और निराकरण के सभी साधन आते हैं जिनसे स्वस्थ व्यक्तित्व विकास, अधिकाधिक कार्यक्षमता और सुख की प्राप्ति होती है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि मानसिक और स्नायुविक विकृतियों की रोकथाम और निराकरण ही इस विज्ञान का मुख्य लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति, समूह, समाज और राष्ट्र को प्रयास करना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति पर निश्चित रूप से व्यक्ति मानसिक रूप से निरोगी ही नहीं होंगे, बल्कि उनकी कार्यक्षमता अधिक होगी, उनका समायोजन प्रभावपूर्ण होगा तथा वह सुख और शान्ति का जीवन व्यतीत कर रहे होंगे। अपने देश में मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में न महत्वपूर्ण शोधकार्य ही हुएहैं और न अधिक सुविधाएँ ही उपलब्ध हैं। इसका मुख्य कारण यह दिखायी देता है कि अपने देश का जीवन दर्शन इस प्रकार का है कि अन्य विकाशील देशों की अपेक्षा यहाँ के लोगों में मानसिक और स्नायुविक विकृतियाँ अपेक्षाकृत कम उत्पन्न होती है। इस प्रकार मुख्य रूप से मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य का निर्माण करना है।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान मनुष्य को सदैव लाभ पहुंचाता है। विद्यालय में इसका सम्बन्ध पाठ्यक्रम तथा वातावरण से है तो जीवन में धर्म, विवाह, परिवार तथा अन्य सामाजिक संस्थानों से भी है। उद्योगों में भी इसकी आवश्यकता होती है।

**बोध प्रश्न :-**

1- मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान से आप क्या समझते हैं ?

2- मानसिक स्वस्थ व्यक्ति आप किसे कहेंगे?

**3-** मानसिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान में क्या सम्बन्ध है?

## 11.6 मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के सिद्धान्त

मानसिक स्वास्थ्य के सिद्धान्त निम्न प्रकार से है-

**1. व्यक्तित्व के आत्म-सम्मान के भाव -** मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए व्यक्ति के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है कि व्यक्ति अपने आत्म-सम्मान को बनाये रखे और दूसरों के आत्म-सम्मान को बनाये रखने का पूरा-पूरा प्रयास करे। इसके लिए व्यक्ति को चाहिए कि वह स्वयं सन्तुष्ट हो और दूसरों को भी सन्तुष्ट रखे।

**2. शारीरिक और मानसिक योगयताओं सम्बन्धी सीमाओं को पहचानना -** मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी विभिन्न शारीरिक और मानसिक योगयताओं सम्बन्धी सीमाओं को पहचानने तथा साथ ही साथ इस प्रकार की सीमाओं को उन व्यक्तियों में भी पहचाने जिनसे वह व्यवहार कर रहा है, करता है अथवा करेगा। जब एक व्यक्ति अपनी सीमाओं के अनुसार और दूसरे व्यक्ति की सीमाओं को ध्यान में रखकर व्यवहार करेगा तो सफलता मिलने की सम्भावना उतनी ही अधिक होती है।

**3. व्यवहार के कार्य-कारण सम्बन्ध का ज्ञान -** मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति को इस बात का ज्ञान कराया जाय कि प्रत्येक व्यवहार के कारण कोई न कोई बाह्य या आन्तरिक उद्दीपक अथवा कारण के व्यवहार या अनुक्रिया कभी घटित नहीं होती है। दूसरों से अन्त:क्रिया करते समय यदि व्यक्ति को व्यवहार के कार्य-कारण सम्बन्ध का प्रर्याप्त ज्ञान है तो उसे अपने मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने में सहायता मिलती है।

**4. व्यवहार सम्पूर्ण व्यक्ति का परिणाम -**मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए इस बात का ज्ञान भी आवश्यक है कि व्यक्ति को इस बात का ज्ञान कराया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार उस व्यक्ति के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों से सम्बन्धित है या उसका व्यवहार उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिणाम है।

**5. महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पहचान -** व्यक्ति की अनेक आवश्यकताएँ होती है। एक व्यक्ति को यदि अपनी इन आवश्यकताओं का ज्ञान है कि उसकी महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ क्या-क्या हैं। क्या उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है अथवा नहीं। व्यक्ति को केवल उन्हीं आवश्यकताओं को महत्व

देना और पूरा करने का प्रयास करना चाहिए जिन आवश्यकताओं को वह पूरा कर सकता है अथवा जिन्हें पूरा करने के योग्य है।

मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। अन्त:क्रियाओं की दृष्टि से सभी प्रकार की अन्त: क्रियाओं, व्यक्ति से व्यक्तिए व्यक्ति से समूह तथा समूह से समूह से संबंधितव्यवहार में व्यक्ति को अनेक कठिनाइयों का प्रतिक्षण सामना करना पड़ता है। इन कठिनाईयों के कारण उसमें द्वन्द्व, संघर्ष और कुण्ठाऐं उत्पन्न हो सकती है। मानसिक सवास्थ्य-विज्ञान की सहायता से विभिन्न मानसिक और स्नायुविक रोगों का निराकरण ही नहीं होताहै, वरन् उनकी रोकथाम तथा सन्तुलित व्यवहार, सुख और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए भी मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान उपयोगी है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का क्षेत्र वहाँ-वहाँ है, जहाँ-जहाँ व्यक्ति को जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में प्रभाव पूर्ण समायोजन करने और सुख शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने की कठिनाई और आवश्यकता का अनुभव होता है।

## 11.7 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताऐं

ऐसे व्यक्तियों की कुछ प्रमुख विशेषताऐं निम्न प्रकार से हैं।

1. **आत्म-मूल्यांकन.** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपने गुणों और सीमाओं का सही-सही मूल्यांकन कर सकता है। उसमें विभिन्न अन्त:निहित योग्तयताऐं क्या-क्या और कितनी मात्रा में हैं, इसका उसे सही-सही ज्ञान होता है। पारस्परिक अन्त:क्रियाओं में वह अपनी इन्हीं योग्यताओं के आधार पर सामान्य अन्त:क्रियाऐंक रने अथवा उपयुक्त समायोजन करने में सफल होता है।
2. **आत्म-विश्वास.** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में पर्याप्त मात्रा में आत्म विश्वास पाया जाता है। वह जीवन की विभिन्न संघर्षमय परिस्थितियों में धैर्य नहीं खोता है, वह आत्म-विश्वास और उत्साह के साथ संघर्षमय परिस्थितियों का सामना करता है और उन परस्थितियों पर विजय प्राप्त करने के लिए आशावान है।
3. **समायोजनशीलता** - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति पर्याप्त मात्रा में समायोजनशीलता पायी जाती है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में, चाहे वह कितनी जटिल हों, उसका समायोजन प्रभावपूर्ण होता है। वह विभिन्न समायोजन परिस्थितियों में ही शांतिपूर्ण ढंग से स्वयं और दूसरों को प्रसन्नचित रखने का प्रयास करता है।
4. **जीवन लक्ष्य का चुनाव** - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के जीवन के लक्ष्य समाज के मूल्यों और आंकाक्षाओं के अनुसार ही नहीं होते हैं बल्कि उसके परिवार और संस्कृति की मान्यताओं और परिस्थितियों के अनुसार भी होते हैं। उसके जो भी जीवन लक्ष्य होते हैं वह उन सभी लक्ष्यों को पूरा करने का प्रयास नहीं करते हैं बल्कि अधिकांश लक्ष्यों को भी प्राप्त कर लेते हैं।
5. संवेगात्मक स्थिरता - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में पर्याप्त मात्रा में संवेगात्मक स्थिरता पायी जाती है। उनके विभिन्न संवेग इतने नियंत्रित होते हैं कि वह संवेगों की अभिव्यक्ति परिस्थितियों के अनुसार आवश्यकतानुसार ही करता है। जहाँ जितनी सवेगात्मक अभिव्यक्ति की

आवश्यकता होती हैं, वहाँ वह उसी रूप में संवेगों की अभिव्यक्ति करता है। ऐसा नहीं होता कि यह हर समय प्रेम प्रदर्शित करे या क्रोध का भय प्रदर्शित करे।

6. **लैंगिक परिपक्वता -** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति का एक यह भी लक्षण है कि उसमें पर्याप्त लैंगिक परिपक्वता पायी जाती है। वह अपनी लैंगिक इच्छाओं की सन्तुष्टि केवल समाज द्वारा मान्य तरीकों और स्रोतों से प्राप्त करता है। वह समाज में सुसंस्कृत व्यक्तियों की तरह जीवन व्यतीत करता है और आवश्यक समय और साधनों के होने पर ही अपनी कामवासनाओं की सन्तुष्टि प्राप्त करता है।
7. **मुख्य कार्यों में सन्तुष्टि -** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपने विभिन्न लक्ष्यों से संबंधित कार्यों को करने में रूचि ही नहींलेता है। बल्कि पर्याप्त सन्तोष का अनुभव भी करता है। वह अपने कार्यों को करने में हमेशा प्रसन्नचित भाव से संलग्न रहता है।
8. **नियमित जीवन -** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति का जीवन पर्याप्त रूप से नियमित होता है। सुबह से शाम तक की दिनचर्या, उसका पहनावा, आदि सब नियमित तथा समाज और संस्कृति की परिस्थितियों के अनुसार होता है।
9. **अतिशयता का अभाव -** सामान्य रूप में मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में प्रत्येक प्रकार की अतिशयता का अभाव पाया जाता है। वह न अधिक सम्मान पाना चाहता है न अधिक प्रतिष्ठा। वह न अधिक कामुक होता है और न अधिक संवेगी।किसी भी चीज की अतिशयता अच्छी नहीं होती है क्योंकि व्यवहार में एक चीज की अतिशयता व्यवहार के अन्य क्षेत्रों में असन्तुलन उत्पन्न कर देती है।

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में उपर्युक्त विशेषताऐं पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। उपर्युक्त विशेषताऐं जिस व्यक्ति में भी पर्याप्त मात्रा में हैं, हम उसे मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति कह सकते हैं और यदि ये विशेषताऐं पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं तो हम उस व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य सामान्य लक्षण हैं - अत्यधिक संवेदनशीलता रूचियों का अभाव, भूख और नींद में कमी, अधिक जिद औरद चिड़चिड़ापन, दूसरों पर अधिक सन्देह और सामाजिक सम्पर्क के पलायन आदि कुछ ऐसे लक्षण हैं जिनकी साहयता से सरलता से पहचाना जा सकता है कि एक व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ है अथवा नहीं।

**बोध प्रश्न :-**

प्रश्न 1. मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 2. मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के सिद्धान्तों के बारे में लिखिये।

प्रश्न 3. अपने स्वास्थ्यवर्धन के लिए आप कौन कौन से चरणों केा अपनायेंगे?

## 11.8 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में समायोजन की प्रक्रिया

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में पर्याप्त मात्रा में समायोजनशीलता पायी जाती है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में, चाहे वह कितनी जटिल हों, उसका समायोजन प्रभावपूर्ण

होता है। वह विभिन्न समायोजन परिस्थितियों में ही शांतिपूर्ण ढंग से स्वयं और दूसरों को प्रसन्नचित रखने का प्रयास करता है।**समायोजन** में मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान बहुत सहायता प्रदान करता है। विद्यालयों में बालकों में कुसमायोजन रोकने के लिए तथा वहाँ का शिक्षण आनन्ददायक बनाने के लिए भी मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान बहुत सेवा करता है। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान की सहायता से हम विद्यालय में उचित अनुशासन का अर्थ समझ लेते हैं और उसे अपनाने की चेष्टा करते हैं।

व्यक्ति को घर, स्कूल, मित्र-मण्डली, पड़ोस, परिचितों, आदि के साथ समायोजन करना होता है। इसके साथ-साथ वह अपने व्यवसाय, अपनी पत्नी और अपने बच्चों आदि के साथ समायोजन करता है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में वह किस प्रकार प्रभावपूर्ण समायोजन करे कि उसका जीवन सुख और शान्तिपूर्ण ढंग से व्यतीत होता रहे, इनकी शिक्षा भी व्यक्ति को देना और कुसमायोजन जैसे परिस्थितियों से बचना और निबटना भीउसके लिए सीखना आवश्यक है।आजकल के भ्रष्टाचारी, गरीबी और बेजरोजगारी के वातावरण में समयोजन करना और प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करना यद्यपि कठिन है, फिर भी मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के ज्ञान के आधार पर ऐसी परिस्थितियों का सामना करना सरल हो जाता है।

मनुष्य अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अपने वातावरण तथा परिस्थतियों के साथ समायोजन करता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह समायोजन की प्रक्रिया में सफलता प्राप्त करे ही, इसलिए उसके मस्तिष्क में संघर्ष उत्पन्न होता ही है। व्यक्ति की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करते हएु हमें उसके सम्पूण्र व्यक्तित्व पर विचार करना पड़ता है।

बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक व्यक्तित्व का विकास होता है, बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक के विकास में कुछ वस्तुएँ इस मार्ग में विरोधी होती है, ओर कुछ असफलताएँ भी होती है जबकि व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ता है। इस प्रकार इन प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप उससे मस्तिष्क में द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। व्यक्ति के अन्दर बहुत सी इच्छाएँ शेष रहती है जिन्हें वह प्राप्त नहीं कर पाते। यदि वह ऐसा व्यक्ति है जो समन्वय कर लेता है तो वह अपने अनुकूलन को शीध्रता से स्थापित कर लेता है और यदि वह इस समायोजन में असफल रहता है तो मानसिक द्वन्द्व बढ़ जाता है। कुछ व्यक्तियों की यह इच्छा होती है कि उनके पास बहुत धन हो, कुछ चाहते हैं कि वे प्रसिद्ध हों, किन्तु बहुत थोड़े ही इनको प्राप्त कर पाते हैं। जो अपनी असफलता को यथार्थ रूप में ले लेते हैं और जो कुछ उनके पास है, उससे सन्तुष्ट हो जाते हैं और परिस्थितियों का साहस से सामना करते हैं, वे व्यक्ति भली प्रकार समायोजित कहे जा सकते हैं, किन्तु वे लोग जो सदैव अपनी असफलताओं के बारे में सोचते रहते हैं, अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए धन की पूर्ति के लिए, शक्ति आदि के लिए जो असाधारण ढंगों का सहारा लेते हैं या बड़े अभिमानी या हठी हो जाते हैं या कल्पना की अधिकता के कारण दिवा-स्वप्न देखने लगते हैं, ऐसे व्यक्तियों के व्यक्तित्व को 'कुसमायोजित व्यक्तित्व' कहते हैं।

आरम्भ से ही बालक अच्छी और बुरी बातों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेता है और अपने व्यवहार के लिए आदर्शों का भी निर्माण करता है और यह आदर्श उसकी प्राकृतिक इच्छाओं से द्वन्द्व भी उत्पन्न करते हैं। कुछ व्यक्ति अपने रास्ते को इसी कलह या प्रतिद्वन्द्वता के बीच में चुनते हैं, परन्तु कुछ में ये दोनों

विपरीत इच्छाएँ साथ-साथ बनी रहती है जिनके कारण वे स्वयं भी परेशान रहते हैं और दूसरों को भी परेशान करते हैं।

यह द्वन्द्व वाली स्थिति यदि सामाजिक स्वीकृति के अनुसार होती है तथा इसमें संवेगात्मक तनाव पैदा नहीं होता। यदि यह स्थिति इस प्रकार ठीक नहीं होती तो प्रतिफल में दो रास्ते होते हैं-

**(i) अप्रभावित ढंग-** व्यक्ति बहुत से कार्य करता है, फिर भी उसका द्वन्द्व कम नहीं होता। उसके मानसिक तनाव पर उसके द्वारा तनाव को कम करने के सब साधन व्यर्थ हो जाते हैं और तनाव में कोई कमी नहीं आती।

**(ii) अवांछित ढंग -** व्यक्ति इस प्रकार प्रतिक्रिया करता है कि बाह्य रूप से तो द्वन्द्व मिटते हुए प्रतीत होते हैं और स्थायी काल के लिए संवेगात्मक तनाव कम भी हो जाते हैं, परन्तु इसके ये व्यवहार नैतिक या सामाजिक स्वीकृति के अनुसार नहीं होते।

अधिकतर व्यक्ति उचित ढंग से ही द्वन्द्वात्मक स्थिति का सामना करते हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो अपनी प्रतिक्रिया के ढंग को अनिश्चित ढंग से प्रकट करते हैं वे लोग द्वन्द्व को दूर करने में असमर्थ होते हैं तथा कुसमायोजित व्यक्ति कहलाते हैं। शारीरिक तत्व, जैसे- ग्रन्थि असमानुपात पुरानी बीमारी अथवा शारीरिक या मानसिक ग्रस्तता व्यक्तियों के व्यवहार के प्रतिमानों पर प्रभाव डालते हैं। साथ ही साथ ये इस ओर भी संकेत करते हैं कि व्यक्ति किस प्रकार अपने को समायोजित करेगा। वातावरण के तत्व भी व्यक्तित्व के ऊपर प्रभाव डालते हैं। बहुत से तत्व जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं, कुसमायोजन उत्पन्न कर सकते हैं और इनका निर्माण त्रुटिपूर्ण सीखने के द्वारा होता है।

विभिन्न व्यक्तियों द्वारा व्यक्तित्व समायोजन की चेष्टा विभिन्न प्रकार से की जाती है। समायोजन के ढंग अलग-अलग होते हैं और इनका प्रभाव भी अलग-अलग होता है, जिससे द्वन्द्वमय स्थिति द्वारा उत्पन्न तनाव कम हो जाते हैं। साधारण रूप में मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से यह पसन्द किया जाता है कि हम द्वन्द्व का सामना करें। हमें द्वन्द्व कम करने के लिए उन ढंगों को नही अपनाना चाहिए जिसमें हम स्थिति से दूर रहना चाहते हैं या हम द्वन्द्व की उपस्थिति के सम्बन्ध में सोचना भी नहीं चाहते हैं।

## 11.9 समायोजन के तनाव को कम करने के ढंग

तनाव को कम करने के प्रत्यक्ष ढंग वे हैं, जिनमें व्यक्ति चैतन्य होकर प्रत्यत्न करता है, जिससे उसके तनाव कम हो सक। वे लक्ष्य, जिनकी प्राप्ति में कोई बाधा या रूकावट खड़ी हो जाती है, उनके प्रति सबसे प्रथम हमारी प्रतिक्रिया यह होती है कि बाधा को नष्ट कर दें। बहुत बार प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति की प्रतिक्रया बाधा के प्रस्तुत होने पर उसको नष्ट करने की होती है। उदाहरण के लिए, एक खिलाड़ी जिसे फुटबाल के खेल में प्रतिस्पर्धा के कारण भाग लेने से रोका जा रहा है, अपने प्रतिस्पर्धी पर प्रहार करता है और उसे टोली में से निकलजाने को बाध्य करता है।

- जब व्यक्ति बाधा को नष्ट नहीं कर पता तब तक वह दूसरा रास्ता निकालता है, जिससे वह अपने लक्ष्य तक पहुंच सके। उदाहरण के लिए, जब एक खिलाड़ी अपने प्रतिस्पर्धी को निकालने में असफल हो जाता है, तब वह उससे अपने खेल को उच्च प्रकट करने की चेष्ट करता है और इस

प्रकार टोली में स्थान ग्रहण करने का प्रयत्न करता है अथवा वह अपने मित्रों की सहायता लेकर अपने प्रतिस्पर्धी को टोली से बाहर निकाल देता है।

- यदि वास्तविक लक्ष्य तक पहुँचने के प्रयत्न असफल हो जाते हैं तब उस समय व्यक्ति किसी और लक्ष्य को उसकी जगह प्रतिस्थापन करने का प्रयत्न करता है। यह लक्ष्य तनाव को कम कर सकता है, यदि इनका सम्बन्ध पहले वाले लक्ष्य से होता है और साथ ही साथ उस आवश्यकता को भी पूरा करना हो जिसके लिए इस लक्ष्य की प्रतिस्थापना की गई है। उदाहरण के लिए, यदि एक शाम को टेनिस खेलने के बजाय ताश खेलते हैं, क्योंकि ज्यों ही आप टेनिस खेलने के लिए बाहर निकलते हैं त्यों ही पानी बरसने लगता है तो ताश खेलना आपके तनाव को कम कर देगा क्योंकि दूसरे लक्ष्य की प्रतिस्थापना आपकी मनोरंजन की आवश्यकता को पूरा कर देती है, किन्तु इस अवस्था में यह तनाव कम नहीं करेगी जब कि आप टेनिस के एक कुशल खिलाड़ी बनने के उद्देश्य से इसके अभ्यास के लिए खेल के मैदान में जाना चाहते हैं।

- तनावों को कम करने का एक ढंग विश्लेषण और उस व्यक्ति का निर्णय है। जब एक व्यक्ति के सामने दो विपरीत लक्ष्य होते हैं तब वह उनमें से एक लक्ष्य का त्याग कर सकता है या वह दोनों लक्ष्यों को छोड़ सकता है या वह दोनों लक्ष्यों के बीच कोई ऐसा रास्ता अपना सकता है जिससे दोनों सन्तुष्ट हो जायें।

  एक प्रकार की स्थितियों में व्यक्ति समस्या-समाधान करने के ढंग को अपनाता है और निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयत्न करता है अथवा इसके सम्बन्ध में अपने मित्र से चर्चा करता है। इस प्रकार मुँह-जबानी स्पष्ट रूप से समस्या को हल करने का प्रयत्न करता है और परिणामत: उसे निश्चय करने का प्रयत्न करता है, किन्तु ऐसी दशाओं में किसी निश्चय या परिणाम को प्राप्त करना बड़ा मुश्किल होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को अच्छी नौकरी मिल जाये तो उसके लिए इन दोनों में से एक को छाँटना बड़ा कठिन हो जाएगा। इस प्रकार का साहित्य या कहानी आपने अवश्य पढ़ी होगी जिसमें नायक के सामने ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती है जिनमें उसको दो बराबर की चीजों में से एक को छाँटना होता है और नायक एक को चुनकर जिन्दगी भर पछताता है, यद्यपि उसे अच्छी जग नौकरी मिल गई है। फिर भी एक लक्ष्य का चुनना दोनों को छोड़ देने से अच्छा है और इससे तनाव कम हो जाता है।

प्रारम्भिक कुसमायोजन के लक्षणों को पहचानने के द्वारा मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान ने व्यक्ति के उचित समायोजन के सम्बन्ध में महान सेवा की है। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के विचार ने ही मानसिक अस्पतालों के बनने में योगदान दिया है। इस प्रकार अब हमारे सामने कुसमायोजन के सुधारने के लिए बहुत से नीवन ढंग उपलब्ध हैं। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान की सबसे बड़ी देन यह है कि इसने हमें बताया कि समस्यात्मक व्यवहार पर हमें वैज्ञानिक रीति से विचार करना चाहिए। यही नहीं, यह भी बताया कि कुसमायोजित व्यक्ति के साथ हमारा व्यवहार दुयालुता और सहानुभूति का होना चाहिए। हमारा व्यवहार उनके ऊपर आरोप लगाने वाला या उन्हें हतोत्साहित करने वाला नहीं होना चाहिए।

प्रत्येक शिक्षा का यह उद्देश्य होता है कि बालकों को मानसिक रूप से स्वस्थ्य बनाये। इसका तात्पर्य है कि शिक्षक बालकों को पूर्ण अवसर दे जिससे वे अपने व्यक्तित्व को विकसित कर सकें। हमें उसके विकास के लिए अवसर देना चाहिए। हमें चाहिए कि उनकी शक्तियों को उचित रास्ते पर ले जायें जिससे वे उचित रूप से अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकें।

शिक्षालयों में भी मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का उपयोग होना आवश्यक है। विद्यालय ही ऐसा केन्द्र हैं जहाँ हम विद्यार्थियों में जीवन की अच्छी आदतें उत्पन्न कर सकते हैं। बाल्यावस्था के कुसमायोजन को रोने का उपाय भी किया जा सकता है। अच्छे-अच्छे व्यवहार, शरीर का पूर्ण ध्यान रखने की आदत, कार्य को आर्थिक-बौद्धिक रूप से समझने की आदत आदि विद्यालय में सिखाई जा सकती है। इनको विकसित करने का शिक्षालयों को बहुत बड़ा अवसर प्राप्त होता है।

शिक्षण स्वास्थ्य विज्ञान इस ओर प्रयत्न करता है कि पाठशाला का कार्य सुखदायी तथा पूर्ण हो। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह सरल शिक्षण को बल देता है। इससे तात्पर्य है- नवीन ढंगों से हमारे व्यक्तित्व को सम्पूर्ण रूप से विकसित करना, बालकों को जीवन के लिए ऐसी शिक्षा देना जिससे वे रचनात्मक तथा सामाजिक वातावरण में सहयोगात्मक रूप से समायोजन कर सकें। इसके साथ ही साथ बालक की श्रेष्ठ योग्यता का विकास करना तथा व्यक्तित्व के संगतिकरण के लिए साधारण क्रियाओं की सहायता प्राप्त करना भी इसका उद्देश्य है।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का व्यक्तित्व के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान हैं, क्योंकि इसकी सहायता से व्यक्ति समाज की विभिन्न परिस्थितियों में सामान्य ढंग से समायोजन करना सीखता है, सामान्य ढंग से संवेगात्मक अभिव्यक्ति सीखता है, सामान्य ढंग से दूसरों के साथ व्यवहार करना सीखता है और इस प्रकार व्यवहार करके वह अपने व्यक्तित्व को सामान्य ढंग से विकसित होने में मदद करता है।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की सहायता से बालकों के निर्देशन में भी सहायता मिलती है। शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक, शैक्षणिक, नैतिक विकास बालकों में सामान्य रूप से हो, इसके लिए आवश्यक है कि निर्देशनकर्ता को मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान होता है, वे अपने बालकों में सामान्य व्यक्तित्व और व्यवहार को विकसित कर सकते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का एक महत्व यह भी है कि इसके ज्ञान की सहायता से व्यक्ति जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावपूर्ण समायोजन बनाये रख सकता है, क्योंकि इसमें उन विभिन्न उपायों और विधियों का वर्णन है जिनकी सहायता से व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में सामान्य समायोजन कर सकता है। एक कुसमायोजित व्यक्ति मानसिक द्वन्द्व को दूर करने के कौन-कौन से ढंग अपनाता है?

## 11.10 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान और व्यक्तित्व

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का व्यक्तित्व के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान हैं, क्योंकि इसकी सहायता से व्यक्ति समाज की विभिन्न परिस्थितियों में सामान्य ढंग से समायोजन करना सीखता है, सामान्य ढंग से संवेगात्मक अभिव्यक्ति सीखता है, सामान्य ढंग से दूसरों के साथ व्यवहार करना सीखता है और व्यक्ति के व्यवहार और व्यक्तित्व में सन्तुलन बहुत-कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उस व्यक्ति में

संवेगात्मक स्थिरता कितनी है। पर्याप्त संवेगात्मक स्थिरता संबंधी व्यवहार की अभिव्यक्ति के लिए मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के ज्ञान की सहायता ली जा सकती है।

इस प्रकार व्यवहार करके वह अपने व्यक्तित्व को सामान्य ढंग से विकसित होने में मदद करता है।

व्यक्तित्व-समायोजन को प्राप्त करने के दो ढंगों का वर्णन करेंगे, यथा-

1. **इच्छित वातावरण :** इच्छित वातावरण द्वारा हम व्यक्तियों के तनाव को कम कर सकते हैं और उन्हें विकास के पथ पर अग्रसर किया जा सकता है, परन्तु ऐसा करने के लिए स्कूल व घरों के वातावरणप को उत्तम बनाना आवश्यक है। समायोजन तभी प्राप्त हो सकता है जबकि उत्तम वातावरण में व्यक्ति रहे, उदाहरण के लिए, स्कूलों में यदि प्रत्येक मनुष्य अच्छा व्यवहार करता है, दूसरों के लिए आदर की भावना रखता है, दूसरे व्यक्तियों के विचारों की कद्र करता है तो वहाँ का वातावरण उत्तम कहा जा सकता है। ऐसे वातावरण में जो भी बालक रखा जायगा, वह स्वत: ही उपर्युक्त गुणों को सीख जायगा और भविष्य में समायोजन सम्बन्धी समस्याएँ उनके साथ नहीं उठेंगी।

2. **रेचकता अथवा कैथर्सिस :** मूल आवश्यकताएँ मनुष्य के लिए हानि का कारण नहीं बनती है। वे मनुष्य के लिए कल्याणकारी हुआ करती है। प्रकृति ने हमें मूल प्रेरणाएँ अपने जीवन को सरल तथा सुखमय बनाने के लिए प्रदान की है। इस सिद्धान्त के प्रवर्त्तक मूल प्रेरणाओं को अत्यन्त सक्रिय समझते हैं, जो मनुष्य को व्यक्तिगत रूप से लाभ पहुँचाती है। मूल प्रेरणा की सक्रियता का सिद्धान्त हमें इस बात का विश्वास दिलाता है कि व्यक्ति को यदि अपने व्यवहार-प्रूरदर्शन में स्वतन्त्र कर दिया जाय, तब मानसिक तनाव कम हो जायेंगे, उसका व्यक्तित्व खराब होने से बच जायगा और उसकी शक्ति का विरेचन हो जायगा।

विरेचन से तात्पर्य है कि समस्त मूल-प्रेरणात्मक, शक्ति या संवेगात्मक शक्ति को स्वतन्त्र प्रकाशन के अवसर मिल जायँ। विरेचन में शक्ति को अपने स्वाभाविक रूप में विकसित होने का अवसर प्राप्त हो जाता है। न तो इनका मार्गान्तरीकरण ही होता है और न संशोधन ही। यह कहा जाता है कि मनुष्य गुणों और अवगुणों का समूह होता है। यदि बुरी भावनाओं या अवगुणों का दमन कर देते हैं तो एक न एक समय वे अवश्य ही भयंकर रूप से प्रकट होंगें। व्यक्ति को अपना सर्वस्व बनाने के लिए परम आवश्यक है कि उसे अपने विचारों को कभी-कभी स्वतन्त्र रूप से प्रकट होने के अवसर प्रदान करने चाहिए, जिससे उसका मस्तिष्क दमन आदि से मुक्त रह सके।

देखा गया है कि विरेचन के पश्चात् मनुष्य स्वयं को कुछ हलका अनुभव करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक बहुत बड़ा बोझा उसके सिर से उतार लिया गया है। तनाव को प्राकृतिक रूप से कम करना आजकल अधिक उचित समझा जाता है। बहुत से पश्चिमी विचारक इसी पर बल देते हैं लेकिन जब व्यक्ति सामाजिक आलोचना से दूर ही होगा, उसी समय विरेचन की क्रिया सम्पन्न हो सकती है।

भिन्न-भिन्न त्यौहार, विभिन्न समाजों के भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज, समाज के सदस्यों को अतिरेचन के अवसर प्रदान करते हैं। उदहारण के लिए, हम हिन्दुओं के पवित्र त्यौहार होली को ही ले सकते हैं। उस समय व्यक्ति अपने को स्वच्छन्द छोड़ देते हैं- कोई भी व्यक्ति दूसरे का मुँह रंग देता है अथवा कोई और

ऐसा ही कार्य करता है, परन्तु फिर भी यह कार्य सब सहन कर लेते हैं। अन्य किसी ओर अवसर पर समाज में वे कार्य अत्यन्त निन्दनीय तथा अश्लील समझे जाते हैं और न अन्य अवसरों पर कोई उन्हें सहन ही करता है। इस प्रकार जन-नृत्य आदि में भाग लेने वालों व देखने वालों में विरेचन क्रिया सक्रिय रहती है।

यह सत्य है कि यदि हमारी मूल प्रेरणाओं को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकाशित होने के अवसर प्रदान हो जाते हैं तो हमें इसमें आनन्द का अनुभव होता है, लेकिन यह स्वतन्त्रता सीमित ही होनी चाहिए। होली पर बहुत से अपराध किये जाते हैं। मनुष्य कभी-कभी इतने आनन्द-विभोर हो जाते हैं कि उनका व्यवहार उस समय बहुत अभद्रतापूर्ण अथवा अशिष्टतापूर्ण हो जाता है, जिसको हमें हतोत्साहित करना चाहिए। भाव-विरेचन हमें कुछ प्रतिबन्धों से मुक्ति दिलवाकर तनाव को कम करता है, परन्तु भाव-विरेचन की क्रिया कुछ सीमा के अन्दर ही होनी चाहिए।

स्कूल के अन्दर बालकों के लिए भी 'फैन्सी ड्रेस' आदि विभिन्न उत्सवों का प्रबन्ध करके भाव-विरेचन की क्रिया को प्रयोग में लाने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। उसके लिए वन-भ्रमणो का प्रबन्ध किया जाना चाहिए, जिसमें वे वहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक घूम-फिर सकें।

## 11.11 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान और परामर्श

प्रत्येक प्राणी का व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होता है। इनमें मानवजाति प्रमुख है। मानवव्यवहार न केवल उद्देश्यपूर्ण ही होता है वरन् कभी कभी व्यवहार समायोजन उपायों के रूप में भी किया जाता है। व्यवहार कैसे भी हों जब तक वे सामाजिक स्वीकृति तथा मान्यता प्राप्त करते रहते हैं वे कोई समस्या खडी नहीं करते है। किन्तु जब वे सामाजिक रीति रिवाजों तथा मान्यताओं के विरूद्ध हों या समाज के अन्य व्यक्तियों के लिए आपत्ति जनक हों तो वे समस्यात्मक व्यवहार की संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं। सक्षेप में यदि बालकों का व्यवहार समाज अथवा सामाजिक संस्थानों के रीतिरिवाजों, परम्पराओं, मान्यताओं तथा नियमों के उल्लेखनीय रूप में विरूद्ध होता है तो वह समस्यात्मक व्यवहार कहलाता है।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए परामर्श का किसी न किसी क्षेत्र में और किसी न किसी दृष्टि से अतिमहत्व होता है परन्तु फिर भी सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा कुछ विशिष्ट समूहों से सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए परामर्श की आवश्यकता रूप से होती है। विशेष समूहों के सदस्यों की प्रमुख समस्या है उनकी पहचान करना। प्रतिभाशाली, मन्दबुद्धि तथा शैक्षिक रूप से बालकों के लिए पृथक शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता होती है। किन्तु सामाजिक रूप से पिछडे वर्गों में आत्महीनता की भावना उन्हें विकास नहीं करने देती। उनमें वे सभी गुण विद्यमान होते हैं जो समाज के उन्नत वर्गों में होते हैं किन्तु जाति एवं वर्गगत हीनता के कारण उनमें उत्पन्न भावना ग्रन्थियों से उनका विकास नहीं हो पाता ऐसे में परामर्शदाता का सहयोग एक वरदान सिद्ध होता है।

परामर्श के सभी रूपों में परामर्शदाता व रोगी के बीच सम्बन्धों का अतिमहत्व है। प्राथमिक देखबाल में मानसिक स्वास्थ समस्याओं से ग्रस्त रोगियों का इलाज परामर्शदाता द्वारा किया जाता है। परामर्शदाता रोगी के जीवन की परिस्थितियों एवं उसके कार्य के आधार पर परामर्श देने का कार्य करते हैं। परामर्श

विभिन्न विधियों एवं तकनीकों के द्वारा किया जाता है, जिनमें मनोगतिकी परामर्श एवं संज्ञानात्मक व्यवहार परामर्श प्रमुख है।

**परामर्श के प्रकार -**

1- **समस्या समाधान परामर्श :-** यह तनावपूर्ण परिस्थितियों से जुडी हुई समस्याओं को हल करने के लिए एक संरचित और व्यवस्थित तरीका है। इसमें व्यवस्थित तरीके से समस्या को सुलझाने के लिए विभिन्न कौशलों को सिखाया जाता है। यह उन रोगियों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है जिनके जीवन पर समस्याओं का प्रभाव प्रतिकूल पडता है।

2- **गैर निर्देश परामर्श :-** इसमें रोगी को परामर्श दाता के साथ अपनी समस्याओं को साझा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है एवं परामर्शदाता रागी की समस्याओं को सुन कर उसकी समस्या की पहचान करता है जिसमें वह रोगी को अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए समझ प्रदान करता है।

3- **व्यवहार तकनीक परामर्श :-** इस तकनीक में व्यवहार परिवर्तन और पर्यावरणीय कारक जो व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं, के द्वारा रोगी की समस्या का समाधान किया जाता है।

## 11.12 परामर्शदाता के उत्तरदायित्व

परामर्श दाता प्रत्येक रोगी को सामाजिक स्तर पर एक समान समझे।

1- परामर्शदाता अपने व्यवहार को सन्तुलित बनाये रखें।

2- रोगी के आत्मसम्मान का आदर किया जाये।

3- रोगी की विशिष्ट आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाये।

यदि व्यक्ति साधारण समायोजन दोषों से पीड़ित है जैसे चिन्ता, विद्यालय एवं व्यावसायिक समस्या तो उसे निराकरण विधियाँ समझाई जा सकती है। इसके लिए उसके साथियों, मित्रों इत्यादि से सूचना प्राप्त करनी पड़ती है, लेकिन यह विधि कभी-कभी असफल रहती है।

उपचार - मानसिक अस्वस्थता की पहचान के बाद आवश्यक है कि व्यक्ति की मानसिक अस्वस्थता का उपचार किया जाय। उपचार के लिए राजकीय या प्राइवेट संस्थाओं में उपलब्ध चिकित्सा सुविधाओं का उपयोग किया जा सकता है। यदि लक्षण प्रारम्भिक स्तर के हैं तो उनका निराकरण केवल मनोवैज्ञानिक प्रविधियों द्वारा ही और शीघ्र हो जाता है, परन्तु तीव्र लक्षणों के उपचार में अन्य प्रविधियों का उपयोग आवश्यक हो जाता है। इस दिशा में सरकार द्वारा उपलब्ध साधन सीमित हैं। बहुधा शारीरिक चिकित्सा की अपेक्षा चकित्सा अधिक महंगी है।आज भारत में लगभग 45 मानसिक चिकित्सालय हैं,जो यहाँ की जनसंख्या और रोगों के बढ़ते हुए घटनाक्रम को देखते हुए अत्यधिक कम है। केन्द्रीय सरकार द्वारा जो श्रम हितकारी केन्द्र खोले गयेहैं वहाँ विशेष रूप से गरीब और मजदूर वर्गके लिए रचनात्मक योग्यताओं के विकास के लिए अधिक सुविधाओं की आवश्यकता है। मानसिक स्वास्थ्य को सामान्य के विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति अपने खाली समय का उपयोग सही कार्यों को करने, उपर्युक्त मनोरंजन करने तथा रचनात्मक कार्यों में करें।

यदि व्यक्ति साधारण समायोजन दोषों से पीड़ित है जैसे चिन्ता, विद्यालय एवं व्यावसायिक समस्या तो उसे निराकरण विधियाँ समझाई जा सकती है। इसके लिए उसके साथियों, मित्रों इत्यादि से सूचना प्राप्त करनी पड़ती है, लेकिन यह विधि कभी-कभी असफल रहती है।

## 11.13 बोध प्रश्न

1. . एक विद्यालय का उदाहरण देकर स्पष्ट समझाइए कि **परामर्श** मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान में दी जाने वाली शिक्षा को कैसे अच्छा बना सकता है?
2. समस्या समाधान परामर्श के द्वारा मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति की पहचान किस प्रकार की जाती है?
3 विशिष्ट बालकों के लिए परामर्शदाता की क्या भूमिका है?

मानसिक स्वास्थ्य वैयक्तिक समस्या के साथ-साथ एक गंभीर सामाजिक समस्या भी है, क्योंकि जिस समाज के अधिकांश व्यक्ति मानसिक और स्नायुविक रोगों से ग्रस्त हों उस समाज के लोगों को न सुख होगा, न शांति और न ही ऐसे समाज में कोई महत्वपूर्ण कार्य होंगे। समाज में सृजनात्मक कार्य तभी होंगे, समाज की उन्नति तभी होगी जबकि उस समाज के सभी व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ होंगे। इस सामाजिक समस्या की रोकथाम में और निराकरण में सामाजिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अत्यधिक महत्व है। एक व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य इस बात पर निर्भर करता है कि उसे विभिन्न व्यक्तियों और संस्थाओं से किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त हुई है। यदि उसके यह शिक्षा दोषपूर्ण है तो निश्चय ही वह दोषपूर्ण शिक्षा के कारण मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जायेगा। अत: आवश्यक है कि मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करते समय व्यक्ति ने किन लोगों से और किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त की है। इस ओर भी ध्यान दिया जाये। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की सहायता से बालकों के निर्देशन में भी सहायता मिलती है। शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक, शैक्षणिक, नैतिक विकास बालकों में सामान्य रूप से हो, इसके लिए आवश्यक है कि परामर्शदाता को मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान होता है, वे अपने बालकों में सामान्य व्यक्तित्व और व्यवहार को विकसित कर सकते हैं।

## 11.14 सन्दर्भ सूची


1 Kapoor, M. (1995) Mental Health of Children in Indian Schools, New Delhi : Sage Publication.
2 Rao, S. Narayana (1982) Counselling Psychology. New Delhi : Tata McGraw Hill Publiching Co. Ltd.
3 Symonds, P.M.: The Dynamics of Human Adjusment, (Appleton Century Crofts) 1994.
4 Verma, S.K. (1980 Mental Illness and Treatement. In Pandey, S.J. (Ed) Psychology in India, Sage Publication.
5 Tallent, N., Psychology of Adjustment, (Nostrand, 1978)

6 Patterson, C.H. (1973) Theories of Co9unselling and Psychotherapy, New York: Happer and Row.

7 Advance Educational Psychology, Dr. A.B.Bhatnagar, Dr. Meenakshi Bhatnagar, Anugag Bhatnagar, International publishing Meerut, 2009.

**8** आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान**,** अरूण कुमार सिंह**,** मोतीलाल बनारसीदास**, 41** यू**.**ए**.** बंगलो रोड़**,** जवाहर नगर**,** दिल्ली**, 2004**

**9** आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान**,** डॉ**.** प्रीती वर्मा**,** डॉ**.** डी**.**एन**.** श्रीवास्तव**,** विनोद पुस्तक मन्दिर**,** आगरा**, 2009**

**10** शिक्षा मनोविज्ञान**,** डॉ**.** एस**.**एस**.** माथुर**,** विनोद पुस्तक मन्दिर**,** आगरा**, 2005**

**11** निर्देशन एवं परामर्श**,** अमरनाथ राय**,** मधु अस्थाना**,** मोतीलाल बनारसीदास**, 41** यू**.**ए**.** बंगलो रोड़**,** जवाहर नगर**,** दिल्ली**, 2009**

**12** अपसामान्य मनोविज्ञान**,** एच**.**के**.** कपिल**,** एच**.**पी**.** भार्गव बुक हाउस**, 4/430,** कचहरी घाट**,** आगरा**- 282004, 2007**

# इकाई - 12

# निर्देशन एवं परामर्श में सांख्यिकी

इकाई की रूपरेखा


12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 सांख्यिकी का अर्थ

12.3 वर्णनात्मक सांख्यिकी

12.4 केन्द्रीय प्रवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा

12.5 केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप के उद्देश्य व कार्य

12.6 सांख्यिकीय माध्य के विविध प्रकार

12.7 समान्तर माध्य

12.8 सरल समान्तर माध्य ज्ञात करने की विधि

12.10 मध्यका

12.11 मध्यका की गणना

12.12 बहुलक

12.13 बहुलक की गणना

12.14 समान्तर माध्यका तथा बहुलक के बीच संबंमध्य ,

12.15 विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ

12.16 अपकिरण के उद्देश्य एवं महत्व

12.17 अपकिरण के विभिन्न माप

12.18 विस्तार

12.19 चतुर्थक विचलन या अर्द्ध अन्तर रचतुर्थक विस्ता-

12.20 प्रमाप विचलन

12.21 सहसंबंध का अर्थ व परिभाषाएं

12.22 सहसंबंध व कारण कार्य संबंध

12.23 सहसंबंध का महत्व

12.24 सहसंबंध के प्रकार

12.26 सरल सहसंबंध ज्ञात करने की विधियॉ

12.27 कार्ल पियर्सन सहसंबंध गुणांक

12.28 कार्ल पियर्सन के सहसंबंध गुणांक की गणना
12.29 शब्दावली
12.30 सारांश
12.31 निबंधात्मक प्रश्न
12.32 संदर्भ ग्रन्थ सूची/ पाठ्य सामग्री

## 12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप-

- सांख्यिकी का अर्थ बता पायेंगे।
- वर्णनात्मक सांख्यिकी का अर्थ बता पायेंगे।
- वर्णनात्मक सांख्यिकी के महत्व का वर्णन कर सकेंगे|
- वर्णनात्मक सांख्यिकी के संप्रत्यय की व्याख्या कर सकेंगे।
- केन्द्रीय प्रवृत्ति के विभिन्न मापकों का परिकलन कर सकेंगे|
- विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ बता पायेंगें।
- विचरणशीलता के महत्व का वर्णन कर सकेंगे|
- विचरणशीलता के विभिन्न मापकों का परिकलन कर सकेंगे|
- सहसंबंध का अर्थ बता पायेंगे।
- सहसंबंध के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- कार्ल पियर्सन के सहसंबंध गुणांक की गणना कर सकेंगे|

## 12.1 प्रस्तावना

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संख्याओं की भूमिका तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जो संख्यात्मक सूचना के प्रवेश से अछूता रह गया हो। ऑकड़ों का संकलनसूचनाओं का , र्ष निकालना एवनाओं का पता लगाना तथा इनके आधार पर निष्कसम्भा ,तीकरणप्रस्तुक प्रचलित वैज्ञानिक व सांख्यिकी विधि है। निर्देशन व परामर्श शिक्षण |अधिगम प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पहलू है- शिक्षण | निर्देशन व परामर्श के बिना किसी भी अधिगमकर्ता का समुचित विकास हो ही नहीं सकता अधिगम प्रक्रिया के तहत संपन्न की जाने वाली निर्देशन व परामर्श प्रक्रिया में शैक्षिक विश्लेषण , ,(उपलब्धि परीक्षण) मिशैक्षिक संम्प्राबुद्धि परीक्षण कन करना होता है जिनमें मूल्यांक्तित्वव्य , विकास निर्देशन व परामर्श के तहत होने वाली शोध एवं |विधियों के प्रयोग किया जाता है 'सांख्यिकीय' में सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग के बिना किसी भी वैज्ञानिक निष्कर्ष पर पहुँचा ही नहीं जा सकता | प्रस्तुत इकाई में आप निर्देशन व परामर्श में प्रयुक्त होने वाली सांख्यिकी का अर्थ तथा वर्णनात्मक

सांख्यिकी के रूप में केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों (Measures of Central Tendency)विचर ,ण शीलता का मापक (Measures of Variability or Dispersion) तथा सहसंबंध के मापक (Measures of Correlation) का अध्ययन करेंगे |

## 12.2 सांख्यिकी का अर्थ

अंग्रेजी भाषा का शब्द ) 'टिस्टिक्सस्टै'Statistics) जर्मन भाषा के शब्द ) 'टिस्टिकस्टै'Statistick) , लेटिन भाषा के शब्द'Status' या इटेलियन शब्द ) 'टिस्टास्टै'Statista) से बना है। वैसे 'कसटिस्टस्टै' )Statistics) शब्द का प्रयोग सन् द्वारा 'गॉट फ्रायड आकेनवाल' में जर्मनी के प्रसिद्ध गणितज्ञ 1749 दाता भी कहा जा सांख्यिकी का जन्मकिया गया था जिन्हेंता है।

**डा) बाउले 0एल0ए 0Dr. A.L. Bowley) के अनुसार -:** समंक किसी अनुसंधान से संबंधित विभाग में तथ्यों का संख्यात्मक विवरण हैं जिन्हें एक दूसरे से संबंधित रूप से प्रस्तुत किया जाता है )Statistics are numerical statement of facts in any department of enquiry placed in relation to each other)।

**यूल व कैण्डाल के अनुसार** सीमा तक से जो पर्याप्तक तथ्योंत्मसमंकों से अभिप्राय उन संख्या" **-:** "अनेक कारणों से प्रभावित होत हैं।

**बॉडिंगटन के अनुसार**) सांख्यिकी अनुमानों और संभावनाओं का विज्ञान है।" **-:**Statistics is the Science of estimates and probabilities)

सांख्यिकी के इन परिभाषाओं से निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट होती हैं -:

(i) "सांख्यिकी गणना का विज्ञान है। (Statistics is the science of counting)"

(ii) का विज्ञान कहा जसांख्यिकी को सही अर्थ में माध्यों"ा सकता है। Statistics may rightly be called the science of Averages) "

(iii) र्ण मानकर उनके सभी प्रकटीकरणों को सम्पूवस्थासांख्यिकी समाजिक व्य" में माप करने का एक विज्ञान है Statistics is the science of measurement of social organism regarded as a whole in all its manifestations) "

## 12.3 वर्णनात्मक सांख्यिकी

इनसे किसी क्षेत्र के भूतकाल तथा वर्तमान काल में संकलित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है और इनका उद्देश्य विवरणात्मक सूचना प्रदान करना होता है। अत रखते हैं । ये समंक ऐतिहासिक महत्व : य प्रवकेन्द्रीत्ति के मापकविवरणात्म , या वर्णनात्मक सांख्यिकी के उदाहरण हैं|

## 12.4 केन्द्रीय प्रवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा

एक समंक श्रेणी की केन्द्रीय प्रवृत्ति का आशय उस समंक श्रेणी के अधिकांश मूल्यों की किसी एक मूल्य के आस जिसे मापा जा सके और इस प्रवृत्ति के माप को ही माध्य ,त्ति से हैपास केन्द्रित होने की प्रवृ- य प्रवृत्ति का माप इसलिए कहा को केन्द्रीकहते हैं। माध्यजाता है क्योंकि व्यक्तिगत चर मूल्यों का जमाव अधिकतर उसी के आस होता र्ण समंक श्रेणी का एक प्रतिनिधि मूल्य सम्पूपास होता है। इस प्रकार माध्य- सांख्यिकीय माध्य , में ही होता है। दूसरे शब्दों मेंश्रेणी के मध्य :तन सामान्यहै और इसलिए इसका स्था को केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह समग्र के उस मूल्य को दर्शाता हैजिसके , |पास समग्र की शेष इकाईयों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति पायी जाती है-आस

## 12.5 केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप के उद्देश्य व कार्य

केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप के उद्देश्य एवं कार्य निम्न प्रकार हैं -

1. **सामग्री को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना-:** माध्य द्वारा हम संग्रहीत सामग्री को संक्षेप में प्रस्तुत करते हैंरण रख सकता है।क्ति शीघ्रता व सरलता से समझ कर स्मजिसे एक समान व्य ,
2. **तुलनात्मक अध्ययन-:** माध्यों का प्रयोग दो या दो से अधिक समूहों के संबंध में निश्चित सूचना देने के लिए किया जाता है। इस सूचना के आधार पर हम उन समूहों का पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन सरलता से कर सकते हैं। उदाहरणार्थहम दो कक्षाओं के छात्रों की अंकों की तु :लनात्मक अध्ययन के आधार पर उनकी उपलब्धि की तुलना का सकते हैं |
3. **समूह का प्रतिनिधित्व-:** माध्य द्वारा सम्पूर्ण समूह का चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। एक संख्या हो सकती है। प्रा जानकारी प्राप्तद्वारा पूर्ण समूह की संरचना के बारे में पर्याप्त (माध्य)यक्तिगत व्य : अस्थिर व परिवर्तनशील होती है जबकि औसत इकाईयॉ अपेक्षाकृत स्थिर होती है। इकाइयॉ
4. **अंक गणितीय क्रियाएँ-:** दो विभिन्न श्रेणियों के संबंध को अंकगणित के रूप में प्रकट करने हेतु माध्यों की सहायता अनिवार्य हो जाती है और इन्हीं के आधार पर अन्य समस्त क्रियाएँ सम्पन्न की जाती है।
5. **भावी योजनाओं का आधार-:** हमें माध्यों के रूप में समूह का एक ऐसा मूल्य प्राप्त होता है जो हमारी भावी योजनाओं के लिए आधार का कार्य करता है।
6. **पारस्परिक संबंध:** कभी ,कता होती हैरिक संबंध की आवश्यकभी दो समंक समूहों के पारस्प- ज ैसे ही दो समूहों में परिवर्तन एक ही दिशा में है या विपरीत दिशा में। यह जानने के लिए माध्य - सबसे सरल मार्ग है।

## 12.6 सांख्यिकीय माध्य के विविध प्रकार

सांख्यिकीय में मुख्यत -: का प्रयोग होता है माध्योंनिम्न :

I. स्थिति सम्बन्धी माध्य )Averages of position)
    a. बहुलक )Mode)

b. मध्यका )Median)

II. गणित सम्बन्धी माध्य )Mathematical Average)

a. समान्तर माध्य )Arithmetic Average or mean)

b. गुणोत्तर माध्य )Geometric Mean)

c. हरात्मक माध्य )Harmonic Mean)

केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप के रूप में आप यहाँ समान्तर माध्य )Arithmetic Mean)) कामध्य ,Median) व बहुलक )Mode) का ही अध्ययन करेंगे।

## 12.7 समान्तर माध्य

समान्तर माध्य गणितीय माध्यों में सबसे उत्तम माना जाता है और यह केन्द्रीय प्रवृत्ति का सम्भवत: सबसे अधिक लोकप्रिय माप है। क्रॉक्सटन तथा काउडेन के अनुसार " -किसी समंक श्रेणी का समान्तर माध्य उस श्रेणी के मूल्यों को जोड़कर उसकी संख्या का भाग देने से प्राप्त होता है। के होरेस सेक्रिस्ट " " -मतानुसारसमान्तर माध्य वह मूल्य है जो कि एक श्रेणी के योग में उनकी संख्या का भाग देने से प्राप्त होती है। "

## 12.8 सरल समान्तर माध्य ज्ञात करने की विधि

समान्तर माध्य की गणना करने के लिए दो रीतियों का प्रयोग किया जाता है -:

i. प्रत्यक्ष रीति )Direct Method)

ii. लघु रीति )Short-cut Method)

अवर्गीकृत तथ्यों या व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना -:

1. **प्रत्यक्ष रीति )Direct Method)-:** प्रत्यक्ष रीति में )i) समस्त मदों के मूल्यों का योग किया जाता है। )ii) प्राप्त मूल्यों के योग में मदों की संख्या का भाग देकर समान्तर माध्य ज्ञात किया जाता है। यह विधि उस समय उपयुक्त होती है जब चर मूल्यों की संख्या कम हो तथा वे दशमलव में हों।

सूत्रानुसार –

$$\overline{X} = \frac{X_1 + X_2 + X_3 + \ldots\ldots\ldots + X_n}{N}$$

$$\frac{\text{पदों का योग}}{\text{)TotaValue of Items}} \quad \text{अथवा} \quad \overline{X} = \frac{\sum X}{N}$$

$$\text{पदों की संख्या}$$

यहॉ $\overline{X}$ = समान्तर माध्य (Mean)

N = ) मदों की कुल संख्याNo. of Items)

$\sum$ = योग (Sum or Total)

X = या आकारमूल्य (Value or Size)

**उदाहरण-:** निम्नलिखित सारणी में कक्षा IX के छात्रों के गणित का अंक प्रस्तुत किया गया हैर समान्त | क्ष रीति द्वारा करें। का परिकलन प्रत्यमाध्य

| **S.N.** | **Marks** |
|---|---|
| 1. | 57 |
| 2. | 45 |
| 3. | 49 |
| 4. | 36 |
| 5. | 48 |
| 6. | 64 |
| 7. | 58 |
| 8. | 75 |
| 9. | 68 |
| **योग )Total(** | **500** |

सूत्रानुसार $\overline{X} = \frac{\sum x}{N}$

$\sum X = 500$

N = 9

$\overline{X} = \frac{500}{9} = 55.55$

माध्य )Mean( = 55.55

**.2सतत श्रेणी )Continuous Series)-:** अखण्डित या सतत श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना के लिए सर्वप्रथम वर्गान्तरों के मध्य मूल्य ज्ञात करके उसे खण्डित श्रेणी में परिवर्तित कर लेते हैं। मध्य मूल्य ज्ञात करने के लिए वर्गान्तरों की अपर और अधर सीमाओं को जोड़कर दो से भाग दिया जाता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि मध्यमूल्य उस वर्ग में सम्मिलित सभी मदों का प्रतिनिधि मूल्य होता है। इसके पश्चात् प्रत्यक्ष या लघु रीति द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात कर लेते हैं। इसकी विधि खण्डित श्रेणी के समान ही है।

**उदाहरण -:**निम्न आवृत्ति वितरण से समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए -:

| Marks (out of (50 | 10-0 | 20-10 | 30-20 | 40-30 | 50-40 |
|---|---|---|---|---|---|
| No. of Student | 10 | 12 | 20 | 18 | 10 |

**हल )Solution -:(**

समान्तर माध्य का प्रत्यक्ष व लघु रीति विधि से परिकलन )Calculation of Arithmetic Mean by direct & Short -Cut Method(

| **Marks** | **M.V.= X** | **f** | **fx** | **dx A= 25** | **f dx** |
|---|---|---|---|---|---|
| 10-0 | 5 | 10 | 50 | 20- | 200- |
| 20-10 | 15 | 12 | 180 | 10- | 120- |
| 30-20 | 25 | 20 | 500 | 0 | 0 |
| 40-30 | 35 | 18 | 630 | 10+ | 180+ |
| 50-40 | 45 | 10 | 450 | 20+ | 200+ |
| **Total** | | N70= | $\sum fx$ 1810= | | $\sum fdx$ = 380 + 320- 60 + = |

Direct Method

$$\overline{X} = \frac{\sum fx}{N}$$

$$= \frac{1810}{70}$$

25.86 =Marks

Short- Cut Method

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

$$= 25 + \frac{60}{70}$$

25.86 =0.86 +25 =Marks

समान्तर माध्य )Mean( 25.86 =Marks

**समान्तर माध्य की बीजगणितीय विशेषताएँ )Algebraic Properties of Arithmetic Mean)** की बीजगणितीय विशेषताएँर माध्यसमान्त -: निम्नलिखित हैं -:

1. विभिन्न मदों के मूल्यों का समान्तर माध्य से लिये गये विचलनों का योग हमेशा शून्य होता है। अर्थात् $\sum d = \sum(X - \overline{X}) = 0$
2. समान्तर माध्य से लिये गये विचलनों के वर्गों का योग से लिये गये किसी मूल्यअन्य , विचलनों के वर्गों के योग से कम होता है अर्थात् $\sum X^2 \langle \sum dx^2$ प्रमाप विचलन :अत ,

की इस विशेषता का प्रयोग र माध्यनतम वर्ग विधि व सह संबंध में समान्तकी न्यू किया जाता है।

3. यदि $\overline{X}$ ,N व $\sum X$ में से कोई दो माप ज्ञात हों तो तीसरा माप ज्ञात किया जा सकता है अर्थात् , $X = \frac{\sum X}{N} or \sum X = (\overline{X}N) or N = \frac{\sum \overline{X}}{X}$
4. समान्तर माध्य के अर्न्तगत प्रमाप विभ्रम अन्य माध्य की अपेक्षा कम होता है।
5. यदि एक समूह के दो या अधिक भागों के समान्तर माध्य व उसकी संख्या दी गई हो तो सामूहिक समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है।
6. यदि किसी श्रेणी की मदों की समान मूल्य से गुणा करेंजोड़ दें अथवा घटा दें ,भाग दें , पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। जैसे किसी समंक का समान्तर माध्यर माध्यतो समान्त मक मूल्यहै यदि इस समंक के पदों के प्रत्ये 20ेंं जोड़ दिया जाय तो नवीन 2 हो जायेंगे। 22 अर्थात् 2+20 र माध्यसमान्त

**समान्तर माध्य के गुण )Merits of Mean) -:**

1. **सरल गणना-:** समान्तर माध्य की परिकलन सरल है और इसे एक सामान्य व्यक्ति भी सरलता से समझ सकता है।
2. **सभी मूल्यों पर आधारित-:** समान्तर माध्य में श्रेणी के समस्त मूल्यों का उपयोग किया जाता है।
3. **निश्चित संख्या-:** समान्तर माध्य एक निश्चित संख्या होती जिस पर समयक्ति का न व व्यस्था , र में कोई अन्तर माध्यसमान्त ,कोई प्रभाव नहीं पड़ता। श्रेणी को चाहे जिस क्रम में लिखा जाए नहीं होगा।
4. **स्थिरता-:** समान्तर माध्य में प्रतिदर्श )Sample) के उच्चावचन का अन्य माध्य की अपेक्षा प्रभाव पड़ता है अर्थात् एक समग्र में से यदि दैव प्रतिदर्श के आधार पर कई प्रतिदर्श लिये जायें तो उनके समान्तर माध्य समान होंगे।
5. **बीजगणितीय प्रयोग सम्भव-:** समान्तर माध्य की परिगणना में किसी भी सांख्यिकी विश्लेषण में इसका प्रयोग किया जाता है।
6. **शुद्धता की जॉच -:**समान्तर माध्य में चार्लीयर जॉच के आधार पर शुद्धता की जॉच सम्भव है।
7. **क्रमबद्धता और समूहीकरण की आवश्यकता नहीं-:** इसमें मध्यका के तरह श्रेणी को क्रमबद्ध व व्यवस्थित करने अथवा बहुलक की भॉति विश्लेषण तालिका और समूहीकरण करने की आवश्यकता नहीं।

**समान्तर माध्य के दोष )Demerits of Mean) -:**

1. **श्रेणी के चरम मूल्यों का प्रभाव-:** समान्तर माध्य की गणना में श्रेणी के सभी मूल्यों को समान महत्व दिया जाता है का बहुत प्रभाव पड़ता है।इसकी गणना में बहुत बड़े व बहुत छोटे मूल्यों :अत ,

2. **श्रेणी की आकृति से समान्तर माध्य ज्ञात करना संभव नहीं-:** जिस प्रकार श्रेणी की आकृति को देखकर बहुलक अथवा मध्यका का अनुमान लगाया जा सकता है का अनुमान र माध्यसमान्त , लगाना संभव नहीं।
3. **श्रेणी की सभी मदों का वास्तविक मूल्य ज्ञान होना-:** समान्तर माध्य की गणना के लिए श्रेणी के सभी मूल्यों का ज्ञात होना आवश्यक है। यदि श्रेणी के एक मद का भी मूल्य ज्ञात नहीं है तो समान्तर माध्य ज्ञात नहीं किया जा सकता है।
4. **काल्पनिक संख्या-:** समान्तर माध्य एक ऐसा मूल्य हो सकता है जो श्रेणी की सम्पूर्ण संख्या में मौजूद नहीं हो। जैसे होने के कारण है जो श्रेणी के बाहर का मूल्य 11 र माध्यका समान्त 20 व 9 ,4 नहीं करता। का प्रतिनिधित्वउसके किसी मूल्य
5. **ह्रास्यास्पद परिणाम-:** समान्तर माध्य में कभीद परिणाम भी निकलते हैं। जैसे स्पकभी ह्रास्या- ,द हैस्प होगा जो ह्रास्याप्राप्त 1.6 हो तो माध्य 8 की संख्यापरिवारों में बच्चों 5 किसी गॉव के का कोई अर्थ नहीं होता है।बच्चे 1.6 किक्यों

**समान्तर माध्य के उपयोग-:** समान्तर माध्य का उपयोग उस दशा में उपयोगी सिद्ध होता है जब श्रेणी के सभी मूल्यों को समान महत्व देना हो व पूर्ण गणितीय शुद्धता की आवश्यकता हो। व्यवहार में इसका प्रयोग सबसे अधिक होता हैऔसत ,कि इसकी गणना सरलता से की जा सकती है। औसत प्राप्तांकक्यों , का ही प्रयोग किया जाता है। र माध्यआदि में समान्त ,दनऔसत उत्पा ,औसत मूल्य ,औसत आय ,बुद्धि यन के लिए नक अध्ययोग गुणात्मइसका प्रहीं किया जा सकता है।

## 12.9 अपनी अधिगम प्रगति जानिए

1. .....की गणना में श्रेणी के सभी मूल्यों को समान महत्व दिया जाता है|
2. विभिन्न मदों के मूल्यों का समान्तर माध्य से लिये गये विचलनों का योग हमेशा ..... होता है।
3. किसी समंक का समान्तर माध्य 42 है यदि इस समंक के पदों के प्रत्येक मूल्य में 4 जोड़ दिया जाय तो नवीन समान्तर माध्य .....हो जायेंगे।
4. केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप..... सांख्यिकी के उदाहरण हैं|
5. सांख्यिकी को वास्तव में..... का विज्ञान कहा जाता है।

## 12.10 मध्यका

मध्यका एक स्थिति संबंधी माध्यहै। यह किसी समंक माला का वह मूल्य है जो कि समंक माला को दो समान भागों में विभाजित करता है। दूसरे शब्दों में मध्यका अवरोही या आरोही क्रम में लिखे हुए विभिन्न मदों के मध्य का मूल्य होता है। जिसके ऊपर व नीचे समान संख्या में मद मूल्य स्थित होते हैं। डॉ ए के आधार पर क्रमबद्ध किया जाय यदि एक समूह के पदों को उनके मूल्यों" बाउले के अनुसार 0एल0 " -कॉनर के अनुसार "का होता है। ही मध्यतो लगभग बीच का मूल्यमध्यका समंक श्रेणी का वह चर

मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में विभाजित करता हैका से अधिक मध्यजिसमें एक भाग में मूल्य , उससे कम होते हैं।और दूसरे भाग में सभी मूल्य

## 12.11 मध्यका की गणना

मध्यका की गणना के लिए सर्वप्रथम श्रेणी को व्यवस्थित करना चाहिए। मदों को किसी मापनीय गुण के आधार पर आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करते समय मूल्यों से संबंधित सूचना समय,वर्ष ,दिन , के आधार पर बदल लिया जाना चाहिए। आरोही क्रम में सबसे र आदि को मूल्योंरोल नम्ब ,नस्था ,नाम पहले छोटे मद को और उसके बाद उससे बड़े को और इसी क्रम में अंत में सबसे बड़े मद को लिखते हैं अवरोही क्रम स औरः सबसे बड़े मद कोफिर उससे छोटे को और अंत में सबसे छोटे मद को लिखा , जाता है।

**मध्यका की गणना विधि) क्तिगत श्रेणीव्य :Individual Series) -:**इसमें मध्यका की गणना की विधि इस प्रकार है -:

a. श्रेणी के पदों को आरोही अथवा अवरोही क्रम में रखते हैं।
b. इसके पश्चात् निम्न सूत्र का प्रयोग कर मध्यका ज्ञात करते हैं -:

$$M = \text{Size of } \frac{(N+1)}{2} \text{ th item}$$

**विषम संख्या होने पर )Odd Numbers) -:**

**उदाहरण -:**निम्न समंकों की सहायता से मध्यका की गणना कीजिए-:

9 6 10 8 11

**हल:** श्रेणी के पदों को आरोही क्रम में रखने पर

6 8 9 10 11

मध्यका = $\frac{(5+1)}{2}$ वां पद का आकार

अर्थात तीसरा पद ही मध्यका का मान होगा 9 =

**सम संख्या होने पर )Even Numbers)-:** उपयुक्त उदाहरण में संख्या विषम थी। अत बिन्दुमध्य : बन जोड़ने पर ऐसी संख्या सम हो तो उसमें एक संख्या यदि संख्यासरलता से ज्ञात कर लिया गया परन्तु होगी। ऐसी स्थिति में सूत्र का प्रयोग क प्राप्तर्ण संख्याजायेगी जिसमें दो का भाग देने पर हमें सम्पूरके वास्तविक स्थिति ज्ञात कर लेनी चाहिए। ततपश्चात् जिन दो संख्याओं के बीच मध्यका होउन , विक मूल्यका का वास्त मध्य संख्या को जोड़कर दो से भाग देना चाहिए। इससे प्राप्तओं के मूल्योंसंख्या होगा।

**उदाहरण -:**निम्न समंकों की सहायता से मध्यका की गणना कीजिए-:

10 6 11 8 9

**हल :** श्रेणी के पदों को आरोही क्रम में रखने पर

6 8 9 10 15 11

मध्यका = $\frac{(9+10)}{2}$ = 9.5

**सतत् श्रेणी )Continuous Series)** लिखित क्रिया का ज्ञात करने के लिए निम्नसतत् श्रेणी में मध्य **-:**

-:विधि अपनायी जाती है

1. सबसे पहले यह देखना चाहिए की श्रेणी अपवर्जी है अथवा समावेशी। यदि श्रेणी समावेशी दी गई है तो उसे अपवर्जी में परिवर्तन करना चाहिए।
2. इसके बाद साधारण आवृत्तियों की सहायता से संचयी आवृत्तियॉ )C.F.) ज्ञात करना चाहिए।
3. इसके पश्चात् N/का मद ज्ञात की जाती है।की सहायता से मध्य 2
4. मध्यका मद जिस संचयी आवृत्ति में होती है उसी से संबंधित वर्गान्तर मध्यका वर्ग )Median group) कहलाता है।
5. मध्यका वर्ग में मध्यका निर्धारण का आन्तर्गणन निम्न सूत्र की सहायता से किया जाता है-:

$$M = L_1 + \frac{i}{f}(m-c) or M = L_1 + \frac{L_z - L_1}{f}(m-c)$$

M = )कामध्यMedian)

$L_1$ = सीमाका वर्ग की निम्नमध्य $L_z$ = का वर्ग मध्य सीमाकी उच्चf = का वर्ग की आवृत्तिमध्यm = का मदमध्य $(\frac{N}{2})$

C = का वर्ग से पहले वाले वर्ग की संचयी आवृत्तिमध्य

i = रका वर्ग का वर्ग विस्तामध्य

6. यदि श्रेणी अवरोही क्रम में दी गई है तो निम्न सूत्र का प्रयोग करेंगे-:

$$M = L_2 - \frac{i}{f}(m-c)$$

उदाहरण का ज्ञात कीजिए। सारणी से मध्यनिम्न -:

| अकं | 5-0 | 10-5 | 15-10 | 20-15 | 25-20 |
|---|---|---|---|---|---|
| छात्रों की संख्या | 5 - | 8 | 10 | 9 | 8 |

| Marks | No. of Student F | Cumulative Frequency c f |
|---|---|---|
| 5-0 | 5 | 5 |
| 10-5 | 8 | 13 |
| 15-10 | 10 | 23 |
| 20-15 | 9 | 32 |
| 25-20 | 8 | 40 |

$M = \frac{N}{2}th$ itemवीं मद) (or 40/2= 20th items(वीं मद) . यह मद संचयी आवृत्ति में 23 काहै। सूत्र द्वारा मध्य 0रू (15-10)= सम्मिलित है जिसका मूल्य $M = L_1 + \frac{i}{f}(m-c) = 10 + \frac{5}{10}(20-13)$ or 13.5=3.5+10

मध्यका )Median( = 13.50

**मध्यका की विशेषताएँ )Characteristics of Median):**

1. मध्यका एक स्थिति सम्बन्धी माप है।
2. मध्यका के मूल्य पर अति सीमान्त इकाइयों का प्रभाव बहुत कम होता है।
3. मध्यका की गणना उस दशा में भी की जा सकती है जब श्रेणी की मदों को संख्यात्मक रूप नहीं दिया जा सकता हो।
4. अन्य माध्यों की भॉति मध्यका का गणितीय विवेचन सम्भव नहीं है।
5. यदि मदों की संख्या व मध्यका वर्ग मात्र के विषय में सूचना दी हुई हैका की गणना तो भी मध्य , का निर्धारण संभव हैका मूल्यसंभव है अर्थात् अपूर्ण सूचना से भी मध्य

**मध्यका के गुण )Merits of Median)**

1. बुद्धिमत्ताक विशेषता आदि गुणात्मस्थरता एवं स्वसुन्द ,ताओं के अध्ययन के लिए अन्य माध्यों की अपेक्षा मध्यका श्रेष्ठ समझा जाता है।
2. मध्यका पर अति सीमांत और साधारण मदों का प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. मध्यका को ज्ञात करना सरल और सुविधाजनक रहता है। इसकी गणना करना एक साधारण व्यक्ति भी सरलता से समझ सकता है।
4. कभीका की गणना निरीक्षण मात्र से ही की जा सकती है।कभी तो मध्य-

5. मध्यका को बिन्दुरेखीय पद्धति से भी ज्ञात किया जा सकता है।
6. मध्यका की गणना करने के लिए सम्पूर्ण समंकों की आवश्यकता नहीं होती है। केवल मदों की एवं मध्यका वर्ग का ज्ञान पर्याप्त है।
7. यदि आवृत्तियों की प्रवृत्ति श्रेणी के मध्य समान रूप से वितरित होने की हो तो मध्यका को एक विश्वसनीय माध्य माना जाता है।
8. मध्यका सदैव निश्चित एवं स्पष्ट होता है व सदैव ज्ञात किया जा सकता है।
9. मध्यका अधिकतर श्रेणी में दिये गये किसी मूल्य के समान ही होता है।

**मध्यका के दोष )Demerits of Median):**

1. मध्यका की गणना करने के लिए कई बार श्रेणी को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करना होता हैजो कठिन है। ,
2. यदि मध्यका तथा मदों की संख्या दी गई हो तो भी इनके गुणा करने पर मूल्यों का कुल योग प्राप्त नहीं किया जा सकता।
3. मदों का अनियमित वितरण होने पर मध्यका प्रतिनिधि अंक प्रस्तुत नहीं करता व भ्रमपूर्ण निष्कर्ष निकालते हैं।
4. जब मदों की संख्या सम है तो मध्यका का सही मूल्य ज्ञात करना संभव नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति में मध्यका का मान अनुमानित ही होता है।
5. सतत् श्रेणी में मध्यका की गणना के लिए आन्तर्गणन का सूत्र प्रयुक्त किया जाता है , , आवृत्तियॉ पूरे वर्ग में समान रूप से फैली हुई हैता है कि वर्ग की समस्तमान्य जिसकी र्ष अशुद्ध और भ्रामक होते हैं।व में ऐसा न होने पर निष्कजबकि वास्त
6. जब बड़े एवं छोटे मदों को समान भार देना हो तो यह माध्य अनुपयुक्त हैकि यह क्यों , ता है।छोटे और बड़े मदों को छोड़ दे
7. मध्यका का प्रयोग गणितीय क्रियाओं में नहीं किया जा सकता है।
8. मध्यका ज्ञात करते समय में वृद्धि की जाय तो इसका मूल्ययदि इकाईयों की संख्या , बदल जायेगा।

**मध्यका की उपयोगिता :** जिन तथ्यों की व्यक्तिगत रूप से पृथकपृथक तुलना नहीं की जा सकती - का का प्रयोग बहुत उपयोगी उनकी तुलना के लिए मध्य ,क है समूहों में रखा जाना आवश्यअथवा जिन्हें नहीं कक्त परिणाम में व्यजिन्हें ,यन भी संभव होता हैओं का अध्यहै। इसके द्वारा ऐसी समस्याि्या जा सकता है। उदाहरणार्थ नहीं कर सकते। ऐसी क्तमें व्य आदि को परिमापस्थ्यस्वा ,बुद्धिमानी ,रतासुन्द - रहता है। उपयुक्तयहाँ माध्य , नहीं दिया जाता होस्थिति में जहॉ अति सीमांत मदों को महत्व

## 12.12 बहुलक

किसी श्रेणी का वह मूल्य जिसकी आवृत्ति सबसे अधिक होती हैबहुलक कहलाता है। अंग्रेजी भाषा , का'Mode' शब्द फ्रेंच भाषा के 'La Mode' से बना हैजिसका अर्थ फैशन या रिवाज में होने से है। ,

का प्रयोउसी वस्तु :क्ति प्रायअधिकांश व्य , का फैशन होता हैजिस वस्तुग करते हैंसांख्यिकी में :अत , चारों मदों के केन्द्रित होने है जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक होती है और जिसकेबहुलक श्रेणी वह चर मूल्य " -की प्रवृत्ति सबसे अधिक होती है। बॉडिंगटन के अनुसारबहुलक को महत्वपूर्ण प्रकाररूप या पद के , वाले मूआकार या सबसे अधिक घनत्वल्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।बहुलक के " " -दाता जिजेक के अनुसारजन्मबहुलक पद मूल्यों की किसी श्रेणी में सबसे अधिक बार आने वाला एक ऐसा मूल्य है " पद सबसे घने रूप में वितरित होते हैं।जिसके चारों ओर अन्य ,

क्रॉक्सटन एवं काउडेन के शब्दों में" -बहुलक किसी आवृत्ति वितरण का वह मूल्य है जिसके चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। यह मूल्य श्रेणी के मूल्यों का सर्वश्रेष्ठ चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। यह मूल्य श्रेणी के मूल्यों का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि होता है "|

## 12.13 बहुलक की गणना

**व्यक्तिगत श्रेणी )Individual Series) -:**अवर्गीकृत तथ्यों के संबंध में बहुलक ज्ञात करने की तीन विधियॉ हैं -:

i. निरीक्षण विधि।
ii. व्यक्तिगत श्रेणी को खण्डित या सतत श्रेणी में परिवर्तित करके।
iii. माध्यों के अंर्तसंबंध द्वारा।

**निरीक्षण द्वारा )By Inspection) -:**अवर्गीकृत तथ्यों का निरीक्षण करके यह निश्चित किया जाता है कि कौन सा मूल्य सबसे अधिक बार आता है अर्थात् कौन सा मूल्य सबसे अधिक प्रचलित है। जो मूल्य सबसे अधिक प्रचलित होता है का बहुवही इन तथ्यों ,लक मूल्य होता है।

उदाहरण ओं के समूहों के लिए बहुलक ज्ञात कीजिए।लिखित संख्यानिम्न -:

i. 7 ,4 ,5 ,3 ,2 ,6 ,8 ,2 ,5 ,9 ,5 ,6 ,2 ,5 ,3
ii. ,53.3 ,54 ,54.6 ,52 ,51.6 ,48.9 ,49.5 ,53.3 ,48.7 ,51.6
iii. 70 ,50 ,60 ,120 ,80 ,100 ,10 ,40 ,60 ,100 ,50 ,20 ,30 ,40 ,110 ,80

**हल -:** उपरोक्त संख्याओं को निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि –

i. 5 = बहुलक :अत ,आया है (चार बार) सबसे अधिक बारसंख्या 5है।
ii. यहॉ पर दो बहुलक :अत , हुआ हैदो बार आवृत्त-ऍ दोदोनों ही संख्या 51.6 व 53.3 53.3)व (51.6हैं। इस श्रेणी को द्वि) बहुलक-Bi-Modal) श्रेणी कहते हैं।
iii. होती है। हम यह कह सकते हैं कि यहॉ दो बार आवृत्त-ऍ दोसंख्या 100 ,80 ,60 ,50 ,40 ) बहुलक-पर पॉच बहुलक हैं। इसे बहुMulti Modal) श्रेणी कहते हैं। इस स्थिति में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि बहुलक विद्यमान नहीं है।

**अवर्गीकृत तथ्यों का वर्गीकरण करके**तो बहुत अधिक होती है की संख्यात मूल्योंयदि प्रस्तु **-:** को आवृत्ति क्तिगत मूल्योंबहुलक का निरीक्षण द्वारा निर्धारण करना सरल नहीं होता है। ऐसी स्थिति में व्य

त् खणश्चावितरण के रूप में खण्डित या सतत् श्रेणी में परिवर्तित कर लेते हैं। तत्प ्डित या सतत् श्रेणी से बहुलक निर्धारित करते हैं। बहुलक ज्ञात करने की यह रीति अधिक विश्वसनीय एवं तर्क संगत है।

**माध्यों के अंर्तसंबंध द्वारा-** यदि समंक वितरण सममित है अथवा आंशिक रूप से विषम है तो सम्भावित बहुलक मूल्य का निर्धारण इस रीति द्वारा किया जाता है। एक सममित समंक वितरण में समान्तर माध्य का व बहुलकमध्य ,$(\overline{X}, M, Z)$ का मूल्य समान होता है अर्थात् $\overline{X} = M = Z$ यदि वितरण आंशिक रूप से विषम या असममित हो तो इन तीनों माध्यों के मध्य औसत संबंध इस प्रकार होता है -

$$(\overline{X} - Z) = 3(\overline{X} - M) or Z = 3M - 2\overline{X}$$

**बहुलक 3 =X मध्यका - 2X समान्तर माध्य**

उदाहरण लिखित समंकों से बहुलक की गणना कीजिए।निम्न -:

| अंक ( | (में से 5 | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| छात्रों की संख्या | | 5 | 8 | 13 | 5 | 2 | 1 |

**हल -:** उपर्युक्त आवृत्ति वितरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ,है जो सर्वाधिक है 13 क की आवृत्तिप्राप्तां 2 2 :अतप्राप्तांक बहुलक होगा। यहॉ पर आवृत्तियॉ पहले बढ़ते क्रम में हैं में सर्वाधिक तथा फिर मध्य , यह नियमित आवृत्ति वितरण का उदाहरण :घटते क्रम में है। अत है।

**अखण्डित या सतत् श्रेणी )Continuous Series) में बहुलक ज्ञात करना-:** सतत् श्रेणी में बहुलक निश्चित करते समय सर्वप्रथम निरीक्षण द्वारा सबसे अधिक आवृत्ति वाले पद को बहुलक वर्ग के लिए चुन लेते हैं। बहुलक वर्ग में बहुलक मूल्य ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है -:

उपर्युक्त सूत्रों में प्रयुक्त विभिन्न चिन्हों के अर्थ इस प्रकार है -:

Z = बहुलक

$L_1$ =बहुलक वर्ग की अधर )Lower Limit) सीमा।

i = बहुलक वर्ग का वर्ग विस्तार या वर्गान्तर।

$D_1$ =प्रथम वर्ग अंतर )Delta) = Difference one ($f-_1f_0$)

$D_2$ =द्वितीय वर्ग अंतर )Delta) = Difference two ($f-_1f($$_2$

**उदाहरण-** निम्नलिखित समंकों से बहुलक मूल्य ज्ञात कीजिए -:

| वर्ग आकार - | 5-0 | 10-5 | 15-10 | 20-15 | 25-20 |
|---|---|---|---|---|---|
| बारम्बारता | 2 | 6 | 15 | 8 | 6 |

इस श्रेणी के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि श्रेणी का कि इस वर्ग क्यों ,वर्ग बहुलक वर्ग है 15-10 की आवृत्ति सर्वाधिक है। इस प्रकार

$$Z = L_1 + \frac{D_1}{D_1 + D_2} xi$$ यहॉ $D = {}_1f_1 – fo = 9 = 6 - 15$

$D = {}_2f - {}_1f7 = 8 - 15 = {}_2$

$$= 10 + \frac{9}{9+7} x5$$

$$= 10 + \frac{45}{16}$$

2.81+10=

12.81 =

बहुलक = 12.81

**बहुलक की प्रमुख विशेषताएँ)Principal Characteristics of Mode) -:**

1. बहुलक मूल्य पर असाधारण इकाईयों का प्रभाव नहीं पड़ता है अर्थात् इस माध्य पर श्रेणी के उच्चतम व निम्नतम अंकों का बहुत कम प्रभाव पड़ता है।
2. वास्तविक बहुलक के निर्धारण के लिए पर्याप्त गणना की आवश्यकता होती है। यदि आवृत्ति वितरण अनियमित है तो बहुलक का निर्धारण करना भी कठिन होता है।
3. बहुलक सर्वाधिक घनत्व वाला बिन्दु होता हैश्रेणी के वितरण का अनुमान :अत , सरलता से लगाया जा सकता है।
4. बहुलक के लिए बीजगणितय विवेचन करना संभव नहीं होता।
5. सन्निकट बहुलक आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

**बहुलक के गुण)Advantages of Mode) -:**

i. **सरलता-:** बहुलक को समझना व प्रयोग करना दोनों सरल हैं। कभीकभी - इसका पता निरीक्षण द्वारा ही लगाया जा सकता है।

ii. **श्रेष्ठ प्रतिनिधित्व-:** बहुलक मूल्य के चारों ओर समंक श्रेणी के अधिकतम मूल्य केन्द्रित होते है। अतसमग्र के लक्षणों तथा रचना पर भी कुछ प्रकाश : पड़ता है।

iii. **थोड़े मदों की जानकारी से भी बहुलक गणना सम्भव -:**बहुलक को गणना के लिए सभी मदों की आवृत्तियॉ जानना आवश्यक नहीं केवल बहुलक वर्ग के पहले और बाद वाले वर्ग की आवृत्तियॉ ही पर्याप्त है।

iv. **बिन्दु रेखीय प्रदर्शन सम्भव -:**बहुलक का प्रदर्शन रेखा चित्र से संभव है।

v. **चरम मूल्यों से कम प्रभावित -:**इसके मूल्य पर चरम मदों का प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि यह सभी मूल्यों पर आधारित नहीं होता है।

vi. **सर्वाधिक उपयोगी मूल्य -:**बहुलक एक व्यावहारिक माध्य हैजिसका , सार्वभौमिक उपयोग है।

vii. **विभिन्न न्यादर्शो में समान निष्कर्ष -:**समग्र से सदैव निदर्शन द्वारा चाहे जितना न्यादर्श लिये जाय उनसे प्राप्त बहुलक समान रहता है।

**बहुलक के दोष -:**

1. **अनिश्चित तथा अस्पष्ट-:** बहुलक ज्ञात करना अनिश्चित तथा अस्पष्ट रहता है। कभी होते हैं।कभी एक ही समंकमाला से एक से अधिक बहुलक उपलब्ध-
2. **चरम मूल्यों का महत्व नहीं-:** बहुलक में चरम मूल्यों को कोई महत्व नहीं दिया जाता।
3. **बीजगणितीय विवेचन कठिन-:** बहुलक का बीजगणितीय विवेचन नहीं किया जा सकतायह अपूर्ण है। :अत ,
4. **वर्ग विस्तार का अधिक प्रभाव -:**बहुलक की गणना में वर्ग विस्तार का बहुत प्रभाव पड़ता है। भिन्नर के आधार पर वर्गीकरण करने पर बहुलक वर्ग विस्ताभिन्न- आते हैं।भिन्न-भी भिन्न
5. **कुल योग प्राप्त करना कठिन -:**बहुलक को यदि मदों की संख्या से गुणा कर दिया जाय तो मदों के कुल मूल्यों का योग प्राप्त नहीं किया जा सकता।
6. **क्रमानुसार रखना -:**इसमें मदों को क्रमानुसार रखना आवश्यक हैइसके बिना , व नहीं होता है।बहुलक ज्ञात करना सम्भ

## 12.14 समान्तर माध्यका तथा बहुलमध्य ,क के बीच संबंध

एक सममित श्रेणी )Symmetrical Series) ऐसी श्रेणी होती हैका व मध्य ,र माध्यजिसमें समान्त , विषम श्रेणी परन्तु , समान नहीं होते हैं होता है। एक विषम श्रेणी में तीनों माध्यबहुलक का एक ही मूल्य व बहुलक के बीच की दूरी कर माध्यसमान्त ,कामें भी मध्यी औसतन एक तिहाई होती है।

इसका सूत्र इस प्रकार है-:

$$Z = \overline{X} - 3(\overline{X} - M) or Z = 3M - 2\overline{X}$$

$$M = Z + \frac{2}{3}(\overline{X} - Z)$$

$$\overline{X} = \frac{1}{2}(3M - Z)$$

**अपनी अधिगम प्रगति जानिए-II**

1. एक ……..श्रेणी (Series) में समान्तर माध्य, मध्यका व बहुलक का एक ही मूल्य होता है।

2. ……..किसी आवृत्ति वितरण का वह मूल्य है जिसके चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है।

3. ……..समंक श्रेणी का वह चर मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में विभाजित करता है|

4. चार भागों में बॉटने वाला मूल्य ……कहलाता है |

## 12.15 विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ

विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ फैलावविखराव या प्रसार है। अपकिरण किसी श्रेणी के , में क्तिगत पद मूल्यों के विखराव या विचरण की सीमा बताता है। जिस सीमा तक व्यमूल्यों-पद उसके माप को अपकिरण कहते हैं। ब्रुक्स ,ता होती हैभिन्न तथा डिक के मतानुसार य मूल्यएक केन्द्री" अपकिरण " के विचलन या प्रसार की सीमा ही अपकिरण है।के दोनों ओर पाये जाने वाले चर मूल्यों )Dispersion) को विखराव )Scatter)) प्रसार ,Spread) तथा विचरण )Variation) आदि नामों से जाना जाता है।

## 12.16 अपकिरण के उद्देश्य एवं महत्व

अपकिरण के विभिन्न माप के निम्नलिखित उद्देश्य एवं महत्व हैं -

i. संमक श्रेणी के माध्य से विभिन्न पद की औसत दूरी ज्ञात करना। मूल्यों-
ii. समंक श्रेणी की बनावट के बारे में जानकारी प्रदान करना अर्थात् यह ज्ञात करना कि माध्य के दोंनों ओर पदमूल्-यों का विखराव या फैलाव कैसा है।
iii. समंकर ज्ञात करना। का सीमा विस्तामूल्यों- पदश्रेणी के विभिन्न -
iv. दो या दो से अधिक समंक श्रेणियों में पायी जाने वाली असमानताओं या बनावट में अन्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना तथा यह निश्चित करना कि किस समंक श्रेणी में विचरण की मात्रा अधिक है।
v. यह जॉचना कि माध्य द्वारा समंक श्रेणी का किस सीमा तक प्रतिनिधित्व होता है। इस प्रकार अपकिरण की मापें माध्यों की अनुपूरक होती हैं।

## 12.17 अपकिरण के विभिन्न माप

अपकिरण ज्ञात करने की विभिन्न रीतियॉ निम्न चार्ट में प्रस्तुत है -:

| **सीमा रीतियॉ** **)Methods of Limits)** | **विचलन माध्य रीतियॉ** **)Methods of Average Deviation)** |
|---|---|
| 1. विस्तार )Range)<br>2. अन्तर) रचतुर्थक विस्ता-Inter-Quartile Range)<br>3. शतमक विस्तार )Percentile Range) | 1. माध्य विचलन )Mean Deviation)<br>2. प्रमाप विचलन )Standard Deviation) |

| 4. चतुर्थक विचलन )Quartile Deviation) | |
|---|---|

## 12.18 विस्तार

किसी समंक श्रेणी में सबसे अधिक मूल्य )H) और सबसे छोटे मूल्य या न्यूनतम मूल्य )L) के अन्तर को विस्तार कहते हैं। यह अन्तर यदि कम है तो श्रेणी नियमित या स्थिर कहलायेगी। इसके विपरीत यदि यह अन्तर अधिक है तो श्रेणी अनियमित कहलाती है। यह अपकिरण ज्ञात करने की सबसे सरल परन्तु अवैज्ञानिक रीति है।

**विस्तार की परिगणना-:** अधिकतम और न्यूनतम मूल्यों का अन्तर विस्तार कहलाता है। विस्तार ज्ञात करते समय आवृत्तियों पर ध्यान नहीं दिया जाता है। विस्तार की परिगणना केवल मूल्यों मापों ) र के आधार पर ही की जाती हैं।के अन्त (या आकारों

रविस्ता= अधिकतम मूल्य - यनतम मूल्न्यू

Range = Highest Value (H)- Lowest Value (L)

**उदाहरण 01-:** निम्नलिखित संख्याओं के समूहों में विस्तार )Range) की गणना कर उनकी तुलना कीजिए।

A = 7, 8, 2, 3,4 , 5

B = 6,8 , 10, 12, 5, 8

C = 9, 10, 12, 13, 15, 20

**हल:** विस्तार )Range) अधिकतम मूल्य = (H) – न्यूनतम मूल्य )L)

A = 8–2 =6

B = 12– 5 =7

C = 20– 9 =11

**विस्तार के गुण (Merits of Range) -:**

- इसकी गणना सरल है।
- यह उन सीमाओं को स्पष्ट कर देता हैयह :अत , में बिखराव है पदों के मूल्यजिनके मध्य , त चित्र दर्शाता है।विचलन का एक विस्तृ
- विस्तार की गणना के लिए आवृत्तियों की आवश्यकता नहीं होतीन पर ही ध्याकेवल मूल्यों , आवृत्तियों से प्रभावित नहीं होता है। :दिया जाता है। अत

**विस्तार के दोष (Demerits of Range)-:**

- विस्तार एक अवैज्ञानिक माप है की उपेक्षा की जाती हैकि इसमें माध्योंक्यों ,।
- विस्तार अपकिरण का एक अनिश्चित माप है।

- विस्तार में श्रेणी के सभी मूल्यों पर ध्यान नहीं दिया जाता अत का प्रतिनिधि इसे सभी मूल्यों : नहीं कहा जा सकता।मूल्य

## 12.19 चतुर्थक विचलन या अर्द्ध अन्तर रचतुर्थक विस्ता-

चतुर्थक विचलन श्रेणी के चतुर्थक मूल्यों पर आधारित अपकिरण का एक माप है। यह श्रेणी के तृतीय व प्रथम चतुर्थक के अन्तर का आधा होता है। इसलिए इसे अर्द्ध अन्तरर भी कहते है। यदि चतुर्थक विस्ता- ) कमितीय हो तो मध्यकोई श्रेणी नियमित अथवा समM) ) तृतीय चतुर्थक ,Q तथा प्रथम चतुर्थक ($_3$ )Qके ठी ($_1$क बीच होगा। इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

चतुर्थक विचलन(Quartile Deviation or Q.D.) = $\frac{Q_3 - Q_1}{2}$ ,Q तृतीय चतुर्थक = $_3$

Qप्रथम चतुर्थक = $_1$

**चतुर्थक विचलन का गुणांक)Coefficient of Quartile Deviation)**

Coefficient of Q.D. = $\frac{Q_3 - Q_1}{2} x \frac{2}{Q_3 + Q_1} = \frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}$

**उदाहरण 04 -:** निम्न समंकों के आधार पर चतुर्थक विचलन एवं उसका गुणांक ज्ञात कीजिए।

From the following data find Quartile Deviation and its Coefficient

| अंक )X) | 4 | 6 | 8 | 10 | 12 | 14 | 16 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बारंबारता )f) | 2 | 4 | 5 | 3 | 2 | 1 | 4 |
| संचयी बारंबारता )cf) | 2 | 6 | 11 | 14 | 16 | 17 | 21 |

**हल -:**

Q = 1 $\frac{N+1}{4}$ वॉ पद

$= \frac{21+1}{4}$ वॉ पद

5.5 = वॉ पद

6 =

$Q.D. = \frac{Q_3 - Q_1}{2} = \frac{14-6}{2} = 4$

$Q3 = \frac{D(N+1)}{4}$ वॉ पद

$= \frac{3(21+1)}{4}$ वॉ पद

16.5 = वॉ पद

17 =

Q.D. गुणांक $= \frac{14-6}{14+6} = 0.40$

वर्गीकृत आंकड़ों का Q.D. निकालने के लिए शतमक या दशमक विस्तार की तरह ही प्रक्रिया अपना कर निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$Q_1 = L_1 + \frac{i}{f}(q_1 - C) \qquad Q_3 = L_1 + \frac{i}{f}(q_3 - C)$$

$$Q.D. = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

**चतुर्थांक विचलन के गुण)Merits of QR) -:**

1. चतुर्थक विचलन की गणना सरल है तथा इसे शीघ्रता से समझा जा सकता हैकि इसकी क्यों , गणना में जटिल गणितीय सूत्रों का प्रयोग नहीं करना पड़ता है।
2. यह श्रेणी के न्यूनतम %25तथा अधिकतम %25मूल्यों को छोड़ देता है। अतयह अपकिरण : द्वारा कम प्रभावित होता है। मापों की अपेक्षा चरम मूल्योंके अन्य
3. यद्यपि यह श्रेणी की बनावट पर प्रकाश नहीं डालता फिर भी श्रेणी के उन %50मूल्यों का विस्तार परिष्कृत रूप से प्रस्तुत करता है से प्रभावित नहीं होते है।जो चरम मूल्यों ,

**चतुर्थांक विचलन के दोष ( Demerits of QR) -:**

1. यह पदों के बिखराव का प्रदर्शन करने में असमर्थ है।
2. यह चरम मूल्यों को महत्व नहीं देता है।
3. इसके आधार पर बीजगणितीय रीतियों का प्रयोग करके विश्लेषण करना संभव नहीं है।
4. निदर्शन के उच्चावचनों )Fluctuations) से यह बहुत अधिक प्रभावित होता है। इन दोषों को दूर करने के उद्देश्य से ही माध्य विचलन और प्रमाप विचलन की गणना की जाती है।

## 12.20 प्रमाप विचलन

प्रमाप विचलन के विचार का प्रतिपादन कार्ल पियर्सन ने में किया था। यह अपकिरण को 0ई 1893 र लोकप्रिय और वैज्ञानिक रीति है। प्रमाप विचलन की गणना केवल समान्त मापने की सबसे अधिक के प्रयोग से ही की जाती है। किसी समंक समूह का प्रमाप विचलन निकालने हेतु उस समूह के माध्य से वर माध्यसमान्तिभिन्न पद मूल्यों के विचलन ज्ञात किये जाते हैं। माध्य विचलन की भॉति विचलन लेते समय बीजगणितीय चिन्हों को छोड़ा नहीं जाता है। इन विचलनों के वर्ग ज्ञात कर लिए जाते हैं। प्राप्त वर्गों के योग में कुल मदों की संख्या का भाग देकर वर्गमूल निकाल लेते हैं। इस प्रकार जो अंक प्राप्त होता है उसे प्रमाप विचलन कहते हैं। वर्गमूल से पूर्व जो मूल्य आता हैउसे अपकिरण की द्वितीय घात , ) या विचरणांक अथवा प्रसरणVariance) कहते हैं। अत से समंक श्रेणी र माध्यप्रमाप विचलन समान्त : के विचलनों के वर्गों पद मूल्योंके विभिन्न के माध्य का वर्गमूल होता है । )Standard Deviation is the square root of the Arithmetic Mean of the squares of all deviations being measured from the Arithmetic mean of the observations).

प्रमाप विचलन का संकेताक्षर ग्रीक भाषा का छोटा अक्षर )Small Sigma) $\sigma$ होता है। प्रमाप विचलन को मध्यक विभ्रम )Mean Error)) क वर्ग विभ्रममध्य ,Mean Square Error) या मूल मध्यक वर्ग विचलन )Root Mean Square Deviation) आदि अनेक नामों से भी सम्बोधित किया जाता है।

**प्रमाप विचलन का गुणांक )Coefficient of Standard Deviation)** दो श्रेणियों की तुलना के लिए प्रमाप विचलन का सापेक्ष माप )Relative Measure of Standard Deviation) ज्ञात किया जाता है जिसे प्रमाप विचलन गुणांक )Coefficient of Standard Deviation) कहते हैं। प्रमाप विचलन में समान्तर माध्य $(\overline{X})$ से भाग देने से प्रमाप विचलन का गुणांक प्राप्त हो जाता है।

प्रमाप विचलन का गुणांक )Coefficient of S.D.) = $\frac{\sigma}{X} or \frac{S.D.}{Mean}$

**प्रमाप विचलन की परिगणना )Calculation of Standard Deviation)** -:

i. खण्डित श्रेणी में प्रमाप विचलन की गणना )Calculation of S.D. in Discrete Series)

a. प्रत्यक्ष विधि )Direct Method)

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$$

b. लघु रीति )Short-cut Method) = $\sigma \sqrt{\frac{\Sigma fd^2 x}{N} - \left(\frac{\Sigma fdx}{N}\right)^2}$

**उदाहरण 06-:** निम्न समंकों से प्रमाप विचलन की परिगणना कीजिए।

| अंक (X) | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | Total |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बारंबारता (f) | 1 | 5 | 11 | 15 | 13 | 4 | 1 | 50 |

**हल-:** प्रत्यक्ष विधि से प्रमाप विचलन की परिगणना

| **अंक X** | **बारंबारता (f)** | **से विचलन 4 D** | **विचलन का वर्ग $d^2$** | **विचलन का वर्ग व बारंबारता का गुणन $fd^2$** | **अंक व बारंबारता का गुणन fx** |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | 1 | 3- | 9 | 9 | 1 |
| 2 | 5 | 2- | 4 | 20 | 10 |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 3 | 11 | 1- | 1 | 11 | 33 |
| 4 | 15 | 0 | 0 | 0 | 60 |
| 5 | 13 | 1 | 1 | 13 | 65 |
| 6 | 4 | 2 | 4 | 16 | 24 |
| 7 | 1 | 3 | 9 | 9 | 7 |
| Total | 50 | | 28 | 78 | 200 |

$$X = \frac{\Sigma fx}{N} = \frac{200}{50} = 4$$

$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$ or $\sqrt{\frac{78}{50}} = \sqrt{1.50} = 1.25$ अत :SD=1.25

सतत श्रेणी में )Continuous Series) में प्रमाप विचलन

(A) प्रत्यक्ष रीति $= \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$

(B) लघु रीति $= \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2 x}{N} - \left(\frac{\Sigma fdx}{N}\right)^2}$

**उदाहरण 07-:** निम्न समंकों से प्रमाप विचलन की परिगणना कीजिए।

| कुल अंकों में प्राप्तांक | 2-0 -: | 4-2 | 6-4 | 8-6 | 10-8 | Total |
|---|---|---|---|---|---|---|
| छात्रों की संख्या -: | 2 | 5 | 15 | 7 | 1 | 30 |

| Marks | No. of Students | M.V. | Deviation from $\overline{X}$ = S | Square of Deviations | Product of f x $d^2$ | frequency X Value | Square of M.V. | Product of f and $X^2$ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **X** | **F** | **X** | **D** | **$d^2$** | **$fd^2$** | **fX** | **$X^2$** | **$fx^2$** |
| 2-0 | 2 | 1 | 4- | 16 | 32 | 2 | 1 | 2 |
| 4-2 | 5 | 3 | 2- | 4 | 20 | 15 | 9 | 45 |
| 6-4 | 15 | 5 | 0 | 0 | 0 | 75 | 25 | 375 |
| 8-6 | 7 | 7 | 2 | 4 | 28 | 49 | 49 | 343 |
| 10-8 | 1 | 9 | 4 | 16 | 16 | 9 | 81 | 81 |
| **Total** | **30** | **-** | **-** | **40** | **96** | **150** | **165** | **846** |

$$X = \frac{\Sigma fx}{N} = \frac{150}{30} = 5 Marks; \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}} = \sqrt{\frac{96}{30}} = 1.79$$

Coefficient of $\sigma = \frac{\sigma}{X} = \frac{1.79}{5} = or 0.36$

**प्रमाप विचलन की गणितीय विशेषताएँ )Mathematical Properties of Standard Deviation) -:**

1. एक से अधिक श्रेणियों के आधार पर विभिन्न प्रमाप विचलनों से सम्पूर्ण श्रेणियों का सामूहिक प्रमाप विचलन निकाला जा सकता है।
2. यदि दो श्रेणियों के मदों की संख्या व समान्तर माध्य समान हों तो सम्पूर्ण श्रेणी का प्रमाप विचलन निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है -: $\sigma_{12} = \sqrt{\frac{\sigma_1^2 + \sigma_2^2}{2}}$
3. क्रमानुसार प्राकृतिक संख्याओं का प्रमाप विचलन ज्ञात करने हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है -: $\sigma = \sqrt{1/12}(N^2 - 1)$
4. प्रमाप विचलन का सामान्य वक्र )Normal Curve) के क्षेत्रफल से एक विशिष्ट संबंध होता है।

$\overline{X} \pm \sigma =$ %68.26

$\overline{X} \pm 2\sigma =$ %95.44

$\overline{X} \pm 3\sigma =$ %99.76

**प्रमाप विचलन के गुण )Merits of Standard Deviation) -:**

1. प्रमाप विचलन श्रेणी के समस्त पदों पर आधारित होता है।
2. प्रमाप विचलन की स्पष्ट एवं निश्चित माप है।
3. प्रमाप विचलन की गणना के लिए विचलनों के वर्ग बनाये जाते है फलस्वरूप सभी पद धनात्मक हो जाते हैं। अतइसका अग्रिम विवेचन भी किया जा सकता है। :
4. प्रमाप विचलन पर आकस्मिक परिवर्तनों का सबसे कम प्रमाप पड़ता है।
5. विभिन्न श्रेणियों के विचरणशीलता की तुलना करने मापों की अर्थपूर्णता की ,जॉच करने , माप माना अपकिरण का सर्वश्रेष्ठ ,प विचलनवितरण की सीमाएँ निर्धारित करने आदि में प्रमा जाता है।
6. निर्वचन की सुविधा के कारण श्रेणी की आकृति को समझना सरल होता है।

**प्रमाप विचलन के दोष )Demerits) -:**

1. प्रमाप विचलन की परिगणना क्रिया अपेक्षाकृत कठिन व जटिल है।
2. प्रमाप विचलन पर चरम पदों का अधिक प्रभाव पड़ता है।

**अपनी अधिगम प्रगति जानिए-III**

1. ……..का अर्थ फैलाव, विखराव या प्रसार है।
2. किसी समंक श्रेणी में सबसे अधिक मूल्य (H) और सबसे छोटे मूल्य या न्यूनतम मूल्य (L) के अन्तर को …… कहते हैं।
3. चतुर्थक विचलन श्रेणी के ……मूल्यों पर आधारित अपकिरण का एक माप है।
4. चतुर्थक विचलन श्रेणी के तृतीय व प्रथम चतुर्थक के अन्तर का ……..होता है।
5. किसी भी श्रेणी के तृतीय चतुर्थक ($Q_3$) तथा प्रथम चतुर्थक ($Q_1$) के अन्तर को ……विस्तार कहते हैं।
6. प्रमाप विचलन के विचार का प्रतिपादन ……..ने किया।

## 12.21 सहसंबंध )Correlation) का अर्थ व परिभाषाएं

जब दो या अधिक तथ्यों के मध्य संबंध को अंकों में व्यक्त किया जाय तो उसे मापने एवं सूक्ष्म रूप में व्यक्त करने के लिए जो रीति प्रयोग में लायी जाती है उसे सांख्यिकी में सहसंबंध कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, दो या दो से अधिक चरों के मध्य अर्न्तसंबंध को सहसंबंध की संज्ञा दी जाती है। सहसंबंध के परिमाप को अंकों में व्यक्त किया जाता है) जिसे सहसंबंध गुणांक ,Coefficient of Correlation) कहा जाता है। विभिन्न विद्वानों ने सहसंबंध की अनेक परिभाषाएँ दी हैं-

प्रो) मूल्य- सिद्ध हो जाता है कि अधिकांश उदाहरणों में दो चरयदि यह सत्य" किंग 0Variables) सदैव एक ही दिशा में या परस्पर विपरीत दिशा में घटनेबढ़ने की प्रवृत्ति रखते हैं तो ऐसी स्थिति में यह समझा - जाना चाहिए कि उनमें एक निश्चित संबंध है। इसी संबंध को सहसंबंध कहते हैं।)If it is proved true that in a large number of instances, two variables tend always to fluctuate in the same or in opposite direction, we consider that the fact is established and relationship exists. This relationship is called correlation). "

बाउले " -जब दो संख्याएँ इस प्रकार सम्बन्धित हों कि एक का परिवर्तन दूसरे के परिवर्तन की सहानुभूति में होदूसरे की कमी या वृद्धि से संबंधित हो या विपरीत हो और एक में ,जिसमें एक की कमी या वृद्धि , परिवर्तन की मात्रा दूसरे के परिवर्तन की मात्रा के समान होइस "तो दोनों मात्राएँ सहसंबंध कहलाती है।, प्रकार सहसंबंध दो या दो से अधिक संबंधित चरों के बीच संबंध की सीमा के माप को कहते हैं।

## 12.22 सहसंबंध व कारण कार्य संबंध-

जब दो समंक श्रेणियॉ एक दूसरे पर निर्भर आश्रित हों तो इस पर निर्भरता को सहसंबंध के नाम से जाना / रूप दूसरी श्रेणी में होने एक समंक श्रेणी में परिवर्तन कारण होता है तथा इसके परिणामस्व :जाता है। अत तंत्र चर होता है तथा प्रभाव इस पर आश्रित वाला परिवर्तन प्रभाव या कार्य कहलाता है। कारण एक स्व है। कारणों में परिवर्तनों से प्रभाव परिवर्तित होता है न कि प्रभाव के परिवर्तन से कारण। सहसंबंध की गणना से पूर्व चरों की प्रकृति को अच्छी तरह समझना चाहिए अन्यथा गणितीय विधि से चरों के मध्य सहसंबंध की निकाली गयी मात्रा बहुत ही भ्रामक हो सकता है। गणितीय विधि से किसी भी दो या दो से अधिक चरों के मध्य सहसंबंध की मात्रा का परिकलन किया जा सकता है और इन चरों के मध्य कुछ न कुछ सहसंबंध की मात्रा भी हो सकती हैलेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि उन , -क कारणकार्य का संबंध विद्यमान है। प्रत्ये- कारणचरों के मध्यकार्य संबंध का अर्थ सहसंबंध होता है, कार्य संबंध को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए-क सहसंबंध से कारणलेकिन प्रत्ये यदि अभिप्रेरणा की मात्रा में परिवर्तन के फलस्वरूप अधिगम पर पड़ने वाले प्रभाव के बीच सहसंबंध गुणांक का परिकलन किया जाता है तो निश्चित रूप से उस सहसंबंध गुणांक के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन दोनों चरों के मध्य कारण में कों के मूल्योंकार्य संबंध है। लेकिन यदि भारत में पुस्त- में परिवर्तन के समंकों से सहसंबंध गुणांक का परिकलन किया यार्क में सोने के मूल्योंपरिवर्तन का न्यू जायतो इस गुणांक से प्राप्त परिणाम तर्कसंगत नहीं हो सकते व सोने के मूल्योंकों के मूल्यकि पुस्तक्यों , कार्य का संबंध सुनिश्चित नहीं किया किया जा सकता।-के मध्य कोई कारण

अतइससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्ये : कार्य संबंध को सुन-क सहसंबंध गुणांक कारण निश्चित नहीं करता।

## 12.23 सहसंबंध का महत्व

सहसंबंध का व्यावहारिक विज्ञान व भौतिक विज्ञान विषयों में बहुत महत्व है। इसे निम्न तरीके से समझा जा सकता है -:

- सहसंबंध के आधार पर दो संबंधित चरहोती है। में संबंध की जानकारी प्राप्तमूल्यों-
- सहसंबंध विश्लेषण शोध कार्यों में सहायता प्रदान करता है।
- सहसंबंध के सिद्धान्त पर विचरण अनुपात )Ratio of Variation) तथा प्रतीपगमन )Regression) की धारणाएँ आधारित हैजिसकी सहायता से दूसरी श्रेणी के संभावित , सनीय अनुमान लगाया जा सकता है। का विश्वमूल्यों-चर
- सहसंबंध का प्रभाव भविष्यवाणी की अनश्चितता के विस्तार को कम करता है।
- व्यावहारिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दो या अधिक घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने एवं उनमें पारस्परिक संबंध का विवेचन करके पूर्वानुमान लगाने में सहसंबंध बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

## 12.24 सहसंबंध के प्रकार

सहसंबंध को हम दिशा कर  के आधार पर कई भागों में विभक्त की संख्यामूल्यों-तथा चर ,अनुपात , सकते हैं।

i. **धनात्मक एवं ऋणात्मक सहसंबंध)Positive and Negative Correlation) -:** यदि दो पद श्रेणियों या चरों में परिवर्तन एक ही दिशा में हो तो उसे धनात्मक सहसंबंध कहेंगें। जैसे- अधिगम की मात्रा में वृद्धि से शैक्षिक उपलब्धि का बढ़ना। इसके विपरीत यदि एक चर के में विपरीत दिशा म में एक दिशा परिवर्तन होने से दूसरे चर के मूल्यों मूल्यों ें ं परिवर्तन हो तो ऐसा सहसंबंध ऋणात्मक सहसंबंध कहलाएगा। इसके अन्तर्गत एक चर में वृद्धि तथा दूसरे मूल्य- क एवं  बढ़ने लगते हैं। धनात्म घटने से दूसरे के मूल्य  में कमी होती है तथा एक के मूल्यमूल्य-चर रेखाचित्र की मदद से समझा जाक सहसंबंध को निम्नऋणात्मसकता है -:

**धनात्मक सहसंबंध** **ऋणात्मक सहसंबंध**

## 12.25 सहसंबंध का परिमाण

सहसंबंध का परिकलन सहसंबंध गुणांक )Coefficient of Correlation) के रूप में किया जाता है। इसके आधार पर धनात्मक )Positive) एवं ऋणात्मक )Negative) सहसंबंध के निम्न परिमाण हो सकते है -:

i. **पूर्ण धनात्मक अथवा पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध)Perfect Positive or Perfect Negative Correlation)**जब दो पद श्रेणियों में परिवर्तन समान अनुपात एवं एक ही **-:** (1+) क सहसंबंध कहेंगें। ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांकदिशा में हो तो उसे पूर्ण धनात्म में परिवर्तनदो मूल्यों होगा। इसके विपरीत जब समान अनुपात में ठीक विपरीत दिशा में हो तो उसे पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध कहेंगें। ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांक होगा। (1-) 1± तथा 0 हर दशा मेंसहसंबंध गुणांक का मूल्यके मध्य होता है।

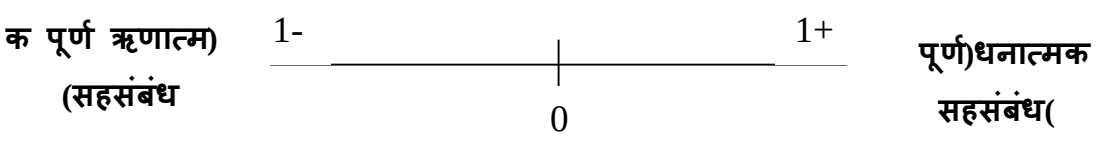

**सहसंबंध गुणांक का मान व इसका अर्थापन**

| **सहसंबंध परिमाण )Degree of Correlation)** | **धनात्मक सहसंबंध )Positive Correlation)** | **ऋणात्मक सहसंबंध )Negative Correlation)** |
|---|---|---|
| पूर्ण )Perfect) | 1+ | 1- |
| उच्च स्तरीय )High Degree) | 75. +से 1+के बीच | 75.-से 1-के मध्य |
| मध्यम स्तरीय )Moderate Degree) | 25. +से 75.+के बीच | 25.-से 75.-के मध्य |
| निम्न स्तरीय )Low Degree) | 25.+ से 0के मध्य | 25.- से 0 |
| सहसंबंध का पूर्णत) अभाव :No Correlation) | 0 | 0 |

## **12.26** सरल सहसंबंध ज्ञात करने की विधियॉ

1. बिन्दु रेखीय विधियॉ )Graphic Methods)-:
   i. विक्षेप चित्र )Scatter Diagram)
   ii. साधारण बिन्दु रेखीय रीति )Simple graphic Method)
2. गणितीय विधियॉ )Mathematical Methods) -:
   i. कार्ल पियर्सन का सहसंबंध गुणांक )Karl Pearson Coefficient of Correlation)
   ii. स्पीयरमैन की श्रेणी अंतर विधि )Spearman's Rank Difference Method)
   iii. संगामी विचलन गुणांक)Coefficient of Concurrent Deviations)
   iv. न्यूनतम वर्ग रीति )Least Squares Method)
   v. अन्य रीतियॉ )Other Methods)

1. **बिन्दुरेखीय विधियॉ )Graphic Methods) -:**

**विक्षेप चित्र )Scatter Diagram)** : दो समंकों के मध्य यह जानने के लिए कि वे एक दूसरे के संबंध में किस प्रकार गतिमान होते हैंविक्षेप चित्र बनाये जाते हैं। इसमें दो चर जहॉ , ) तंत्र चर जिसे भुजाक्षप्रथम स्वX-axis) पर तथा द्वितीय आश्रित चर जिसे कोटि अक्ष-Y पर प्रदर्शित कर X एवं Y श्रेणी के संबंधित दोनों मूल्योंके लिए एक ही बिन्दु अंकित किया जाता है। एक श्रेणी में जितने पद) युग्म-Pair-Values) होते हैं उतने ही बिन्दु अंकित कर दिये जाते हैं। विक्षेप चित्र को निम्न प्रकार समझा जा सकता है -:

vi. **साधारण बिन्दु रेखीय विधि**यह ब **-:**हुत ही सरल विधि है। इसके अन्तर्गत श्रेणियों )X एवं Y) को खड़ी रेखा पर तथा संख्या समय अथवा स्थान को पड़ी रेखा पर अंकित कर दोनों श्रेणियों में संबंध को आसानी से देखा जा सकता है।

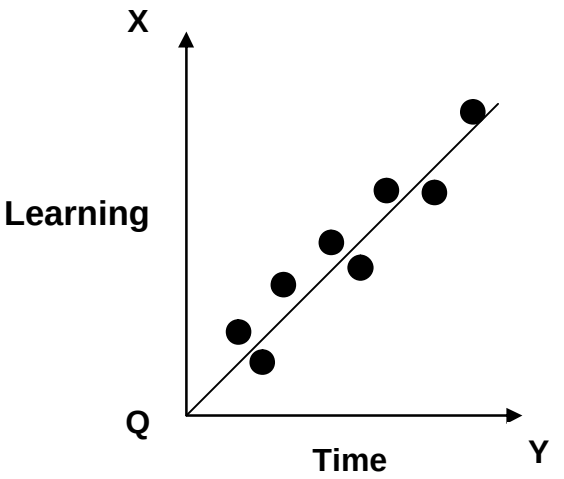


ii. **गणितीय विधियॉ) Mathematical Methods)-:** गणितीय विधि के अन्तर्गत हम यहॉ कार्ल पियर्सन सहसंबंध गुणांक (Karl Pearson's Coefficient of Correlation) का अध्ययन करेंगें।

## 12.27 कार्ल पियर्सन सहसंबंध गुणांक

सहसंबंध गुणांक ज्ञात करने कि लिए यह विधि सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। इस विधि में सहसंबंध की दिशा तथा संख्यात्मक मात्रा का माप भी किया जाता है। यह सहसंबंध गुणांक **माध्य एवं प्रमाप विचलन** पर आधारित है। अतइसमें गणितीय दृष्टि से पूर्ण शुद्धता पायी जाती है। :

**Different types of Scatter Diagram**

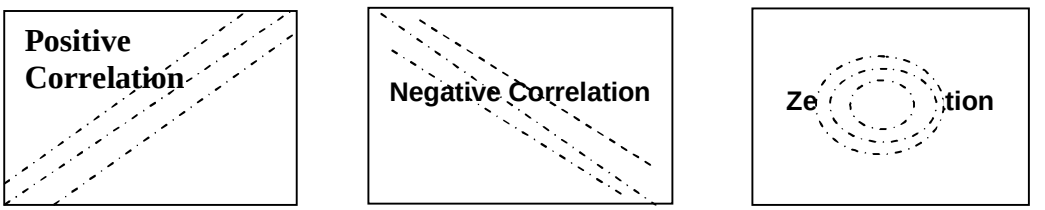


इस रीति का प्रयोग सर्वप्रथम कार्ल पियर्सन ने यन में ओं के अध्य की समस्यामें जीवशास्त्र 1890 ) सहसंबंध गुणांकर्मात दो चरों के मध्यकिया था। इस रीति के अन्तCoefficient Correlation) ज्ञात करते हैं जिसे संकेताक्षर ,'r' से संबोधित किया जाता है। इस विधि की मुख्य विशेषताएॅ निम्नवत हैं -:

1. इस विधि से सहसंबंध की दिशा का पता चलता है कि वह धनात्मक है या (+) ।(-) कऋणात्म

2. इस विधि के सहसंबंध गुणांक से मात्रा व सीमाओं 1-)से का ज्ञान सरलता (1+ से 0 से हो जाता है।
3. इसमें श्रेणी के समस्त पदों को महत्व दिये जाने के कारण इसे सह विचरण-)Covariance) का एक अच्छा मापक माना जाता है।

) सूत्रानुसारCovariance) = $\frac{\Sigma xy}{N}$ $x = X - \overline{X}$ $y = Y - \overline{Y}$

4. सहसंबंध गुणांक चरों के मध्य सापेक्ष संबंध की माप हैं अतहकाई नहीं होती। इसमें :
5. सहसंबंध गुणांक पर मूल बिन्दु तथा पैमाने से परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

6. सह विचरण से कार्ल पियर्सन के सहसंबंध की गणना की जा सकती है।-

जैसे $r = \frac{Co\,\mathrm{var}iance}{\sqrt{\sigma^2{}_x.\sigma^2{}_y}}$

**14.28** कार्ल पियर्सन के सहसंबंध गुणांक की गणना:

कार्ल पियर्सन का सहसंबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम सह) विचरण-Covariance) ज्ञात करते हैं। इसे सहसंबंध गुणांक में परिवर्तन करने के लिए दोनों श्रेणियों के प्रमाप विचलनों के गुणनफल से भाग दे दिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त परिणाम ही कार्ल पियर्सन का सहसंबंध गुणांक कहलाता है।

-:सूत्रानुसार $r = \frac{\Sigma xy}{N\sigma_x\sigma_y}$

व्यक्तिगत )Individual Series) -:क्तिगत श्रेणी में सहसंबंध गुणांक ज्ञात करने की दो विधियॉ हैंव्य -:

i. **प्रत्यक्ष विधि )Direct Method)-:** प्रत्यक्ष विधि से सहसंबंध गुणांक निम्न सूत्रों में से किसी एक के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है -:

प्रथम सूत्र -: $r = \frac{Co\,\mathrm{var}iance}{\sigma_x.\sigma_y}$

-:द्वितीय सूत्र $\frac{\Sigma xy}{N\sigma_x\sigma_y}$ तृतीय सूत्र -:$r = \frac{\Sigma xy}{N\sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N}.\frac{\Sigma y^2}{N}}}$

-:चतुर्थ सूत्र $\frac{\Sigma xy}{\sqrt{\Sigma x^2.\Sigma y^2}}$

r = सहसंबंध गुणांक

$\Sigma xy$ = से विचलनोंदोनों श्रेणियों के माध्यों के गुणनफल का योग। $\Sigma x^2$ = X श्रेणी के माध्य से विचलन वर्गों का योग।

$\Sigma y^2$ = Y श्रेणी के माध्य से विचलन वर्गों का योग।

$\sigma_x$ = X श्रेणी का प्रमाप विचलन $\sigma_y$ = Y श्रेणी का प्रमाप विचलन

N = पदों की संख्या

किसी भी सूत्र से सहसंबंध गुणांक की चारों ही सूत्र मूल रूप से एक ही हैं अतएव उपर्युक्त गणना करने पर परिणाम एक ही होगा।

**उदाहरण-:** अग्र समंकों के आधार पर प्रत्यक्ष रीति द्वारा कार्ल पियर्सन का सहसंबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

| X | 10 | 20 | 30 | 40 | 50 | 60 | 70 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| Y | 5 | 4 | 2 | 10 | 20 | 25 | 04 |

**हल -:**Calculation of the Coefficient of Correlation

| **X** | $\overline{X} = 40$ **से विचलन = x** | **विचलन का वर्ग $x^2$** | **Y** | $\overline{Y} = 10$ **से विचलन =y** | **$y^2$** | **xXy** |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 10 | -30 | 900 | 05 | -5 | 25 | 150 |
| 20 | -20 | 400 | 04 | -6 | 36 | 120 |
| 30 | -10 | 100 | 02 | -8 | 64 | 80 |
| 40 | 0 | 0 | 10 | 0 | 0 | 0 |
| 50 | 10 | 100 | 20 | 10 | 100 | 100 |
| 60 | 20 | 400 | 25 | 15 | 225 | 300 |
| 70 | 30 | 900 | 04 | -06 | 36 | -180 |
| $\Sigma X = 280$ $N = 7$ | | $\Sigma x^2 = 2800$ | $\Sigma Y = 70$ $N = 7$ | | $\Sigma y^2 = 616$ | $\Sigma xy = 570$ |

$$X = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{280}{7} = 40$$

$$\sigma_x = \sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N}} = \sqrt{\frac{2800}{7}} = \sqrt{400} = 20$$

$$\bar{y} = \frac{\Sigma Y}{N} = \frac{70}{7} = 10$$

$$\sigma_y = \sqrt{\frac{\Sigma y^2}{N}} = \sqrt{\frac{616}{7}} = 9.38$$

प्रथम सूत्र के अनुसार -: $r = \frac{Co\,var\,iance}{\sigma_x.\sigma_y} = \frac{\Sigma xy/N}{\sigma_x.\sigma_y} = \frac{570 \div 7}{20x9.38} = \frac{81.42}{187.6} = 0.434$

निष्कर्ष -:X तथा Y चरों में मध्यम स्तरीय धनात्मक सहसंबंध है।

**मूल बिन्दु तथा पैमाने में परिवर्तन का प्रभाव )Effect of Change in origin and scale)-:**

किसी श्रेणी के मूल बिन्दु में परिवर्तन का अर्थ है उस श्रेणी के सभी मूल्यों में एक निश्चित संख्या स्थिरांक को घटाना ,तथा जोड़ना। इसी प्रकार किसी श्रेणी के पैमाने में परिवर्तन का अर्थ है उस श्रेणी के सभी मूल्यों में एक निश्चित संख्या का भाग देना अथवा गुणा करना। वास्तव में सहसंबंध गुणांक पर मूल बिन्दु तथा पैमाने में परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरे शब्दों में, यह मूल बिन्दु तथा पैमाने के प्रति स्वतंत्र है।

**अपनी अधिगम प्रगति जानिए-IV**

1. जब दो पद श्रेणियों में परिवर्तन समान अनुपात एवं एक ही दिशा में हो तो उसे .....सहसंबंध कहते हैं।
2. यदि एक चर के मूल्यों में एक दिशा में परिवर्तन होने से दूसरे चर के मूल्यों में विपरीत दिशा में परिवर्तन हो तो ऐसा सहसंबंध .....कहलाता है।
3. जब दो चरों में परिवर्तन का अनुपात स्थिर नहीं होता तो ऐसे सहसंबंध को .....सहसंबंध कहते हैं।

## 12.29 शब्दावली

**सांख्यिकी )Statistics):** सांख्यिकी अनुमानों और संभावनाओं का विज्ञान है तथा यह गणना का विज्ञान है। सांख्यिकी को सही अर्थ में माध्यों का विज्ञान कहा जाता है।

**वर्णनात्मक सांख्यिकी (Descriptive Statistics)**: वर्णनात्मक सांख्यिकी संकलित तथ्यों का विवरणात्मक सूचना प्रदान करना होता है। केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकविवरणात्म , या वर्णनात्मक सांख्यिकी के उदाहरण हैं|

**केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप ( Measures of Central Tendency):** एक समंक श्रेणी की केन्द्रीय प्रवृत्ति का आशय उस समंक श्रेणी के अधिकांश मूल्यों की किसी एक मूल्य के आसपा-स केन्द्रित होने की प्रवृत्ति से है भी कहते हैं ।जिसे मापा जा सके और इस प्रवृत्ति के माप को माध्य ,

**मध्यका (Median):** मध्यका समंक श्रेणी का वह चर मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में विभाजित करता है|

**बहुलक (Mode):** बहुलक किसी आवृत्ति वितरण का वह मूल्य है जिसके चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है।

**विचरणशीलता (Dispersion)**: विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ फैलावविखराव या , जिस सीमा के विखराव या विचरण की सीमा बताता है।मूल्यों-प्रसार है। अपकिरण किसी श्रेणी के पद उसके माप को अपकिरण कहते हैं। ,ता होती है में भिन्नक्तिगत पद मूल्योंतक व्य

**विस्तार )Range):** किसी समंक श्रेणी में सबसे अधिक मूल्य )H) और सबसे छोटे मूल्य या न्यूनतम मूल्य )L) के अन्तर को विस्तार कहते हैं।

**चतुर्थक विचलन )Quartile Deviation):** चतुर्थक विचलन श्रेणी के चतुर्थक मूल्यों पर आधारित अपकिरण का एक माप है। यह श्रेणी के तृतीय व प्रथम चतुर्थक के अन्तर का आधा होता है।

**प्रमाप विचलन )Standard Deviation):** किसी समंक समूह का प्रमाप विचलन उस समूह के समान्तर माध्य से विभिन्न पद मूल्यों का विचलन होता हैइन विचलनों के वर्ग ज्ञात कर लिए जाते हैं। | का भाग देकर वर्गमूल न वर्गों के योग में कुल मदों की संख्याप्राप्तिकाल लेते हैं। इस प्रकार जो अंक प्राप्त होता है उसे प्रमाप विचलन कहते हैं।

**सहसंबंध )Correlation):** दो या दो से अधिक चरों के मध्य अर्न्तसंबंध को सहसंबंध की संज्ञा दी जाती है।

**सहसंबंध गुणांक)Coefficient of Correlation):** सहसंबंध के परिमाप को अंकों में व्यक्त किया जाता है) जिसे सहसंबंध गुणांक,Coefficient of Correlation) कहा जाता है।

**धनात्मक सहसंबंध )Positive Correlation):** यदि दो पद श्रेणियों या चरों में परिवर्तन एक ही दिशा में हो तो उसे धनात्मक सहसंबंध कहते हैं|

**ऋणात्मक सहसंबंध )Negative Correlation):** यदि एक चर के मूल्यों में एक दिशा में परिवर्तन होने से दूसरे चर के मूल्यों में विपरीत दिशा में परिवर्तन हो तो ऐसा सहसंबंध ऋणात्मक सहसंबंध कहलाता है।

**पूर्ण धनात्मक सहसंबंध )Perfect Positive Correlation):** जब दो पद श्रेणियों में परिवर्तन समान अनुपात एवं एक ही दिशा में हो तो उसे पूर्ण धनात्मक सहसंबंध कहते हैं। ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांक होता है। (1+)

**पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध )Perfect Negative Correlation):** जब दो मूल्यों में परिवर्तन समान अनुपात में ठीक विपरीत दिशा में हो तो उसे पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध कहेंगें। ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांक होता है। (1-)

कार्ल पियर्सन सहसंबंध गुणांकगुणांक यह सहसंबंध :**माध्य एवं प्रमाप विचलन** पर आधारित है। इस रीति के अन्तर्गत दो चरों के मध्य सहसंबंध गुणांक )Coefficient Correlation) ज्ञात करते हैंजिसे , संकेताक्षर'r' से संबोधित किया जाता है।

अपनी अधिगम प्रगति जानिए से सबंधित प्रश्नों के उत्तर:

I

1. समान्तर माध्य 2. शून्य 3. 46 4. विवरणात्मक या वर्णनात्मक 5. माध्यों

II

1. सममित 2. बहुलक 3. मध्यका 4. चतुर्थक )Quartiles)

III

1. अपकिरण 2. विस्तार 3. माध्य 4. आधा 5. अन्तर चतुर्थक 6. कार्ल पियर्सन

IV

1. पूर्ण धनात्मक 2. ऋणात्मक सहसंबंध 3. कार्ल पियर्सन

## 12.30 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने सांख्यिकी का अर्थ तथा वर्णनात्मक सांख्यिकी के रूप में केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों (Measures of Central Tendency) में समांतर माध्यमध्यका व बहुलक का अध्ययन , |इन सभी अवधारणाओं के बारे में संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है |किया

सांख्यिकी अनुमानों और संभावनाओं का विज्ञान है तथा यह गणना का विज्ञान है। सांख्यिकी को सही अर्थ में माध्यों का विज्ञान कहा जा सकता है।

वर्णनात्मक सांख्यिकीयिन करता का अध्यवर्तमान काल में संकलित तथ्यों किसी क्षेत्र के भूतकाल तथा , क सूचना प्रदान करना होता है। क विवरणात्महै और इनका उद्देश्येन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकविवरणात्म , या वर्णनात्मक सांख्यिकी के उदाहरण हैं |

एक समंक श्रेणी की केन्द्रीय प्रवृत्ति का आशय उस समंक श्रेणी के अधिकांश मूल्यों की किसी एक मूल्य के आसजिसे मापा जा सके और इस प्रवृत ,त्ति से हैपास केन्द्रित होने की प्रवृ-्ति के माप को ही माध्य कहते हैं।

केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप के उद्देश्य एवं कार्य हैंक तुलनात्म ,त करना रूप में प्रस्तुसामग्री को संक्षिप्त - माध्यों ,भावी योजनाओं का आधार ,अंक गणितीय क्रियाएँ ,समूह का प्रतिनिधित्व ,यन के लिएअध्य रके मध्य पारस्पिक संबंध ज्ञात करने के लिए आदि|

किसी भी आदर्श माध्य में गुण होनी चाहिए ,निश्चित निर्धारण ,ता एवं स्थिरताष्टस्प ,प्रतिनिधित्व -: |आदिनिरपेक्ष संख्या ,नतम प्रभावपरिवर्तन का न्यू ,सरलता व शीघ्रता

सांख्यिकीय में मुख्यत -: का प्रयोग होता है माध्योंनिम्न :

III. स्थिति सम्बन्धी माध्य )Averages of position)

a. बहुलक )Mode)

b. मध्यका )Median)

IV. गणित सम्बन्धी माध्य )Mathematical Average)

a. समान्तर माध्य )Arithmetic Average or mean)

b. गुणोत्तर माध्य )Geometric Mean)

c. हरात्मक माध्य )Harmonic Mean)

मध्यका समंक श्रेणी का वह चर मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में विभाजित करता हैजिसमें एक , की म होते हैं। जिन तथ्यों उससे कका से अधिक और दूसरे भाग में सभी मूल्य मध्यभाग में मूल्य समूहों में रखा जापृथक तुलना नहीं की जा सकती अथवा जिन्हें-क्तिगत रूप से पृथकव्यना आवश्यक है , यन भी ओं का अध्यका का प्रयोग बहुत उपयोगी है। इसके द्वारा ऐसी समस्याउनकी तुलना के लिए मध्य त नहीं किया जा सकता है।क् परिणाम में व्यजिन्हें ,संभव होता है

जिस प्रकार मध्यका द्वारा एक श्रेणी की अनुविन्यासित मदों को दो बराबर भागों में बॉटा जाता हैउसी , दस व सौ बराबर भागों में बॉटा जा सकता है। चार भागों में बॉटने ,आठ ,पॉच ,प्रकार श्रेणी को चार ) चतुर्थकवाला मूल्यQuartiles)) पंचमक्में बॉटने वाला मूल्य पॉच भागों ,Quintiles)आठ भागों , ) मक अष्ठवाले मूल्यOctiles)) दस वाले दशमक ,Deciles) व सौ बराबर भागों में बॉटने वाले मूल्य शतमक )Percentiles) कहलाते है। इन विभिन्न मापों का प्रयोग सांख्यिकीय विश्लेषण में किया जाता है।

बहुलक किसी आवृत्ति वितरण का वह मूल्य है जिसके चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। यह मूल्य श्रेणी के मूल्यों का सर्वश्रेष्ठ चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। यह मूल्य श्रेणी के मूल्यों का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि होता है।

एक सममित श्रेणी )Symmetrical Series) ऐसी श्रेणी होती हैका व मध्य ,र माध्यजिसमें समान्त , बह ुलक का एक ही मूल्य होता है। एक विषम श्रेणी में तीनों माध्य समान नहीं होते हैं विषम परन्तु , की दूी की औसतन एक तिहाई होती है। इसका व बहुलक के बीचर माध्यसमान्त ,काश्रेणी में भी मध्य -:सूत्र है $Z = \overline{X} - 3(\overline{X} - M) or Z = 3M - 2\overline{X}$

सांख्यिकीय विश्लेषण की शुद्धता के लिए विचरणशीलता के मापक को समझना अत्यंत आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में आप विचरणशीलता के मापकोंशतांक तथा प्रमुख सांख्यिकियों के प्रमाप ,चतुर्थांक , |इस भाग में इन सभी अवधारणाओं का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है| टियों का अध्ययन कियात्रु

विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ फैलाव-विखराव या प्रसार है। अपकिरण किसी श्रेणी के पद , ता होती भिन्न मेंक्तिगत पद मूल्यों के विखराव या विचरण की सीमा बताता है। जिस सीमा तक व्यमूल्यों उसके माप को अपकिरण कहते हैं। ,है

इस इकाई में आपने सहसंबंध का अर्थप्रकृति व इसके ,परिभाषा ,मापने के कार्ल पियर्सनद्विपंक्तिक , इन सभी अवधारणाओं का संक्षिप्त विवरण |यन कियाद्विपंक्तिक सहसंबंध गुणांकों का अध्य-तथा बिंदु |यहाँ दिया जा रहा है

दो या दो से अधिक चरों के मध्य अर्न्तसंबंध को सहसंबंध की संज्ञा दी जाती है। सहसंबंध के परिमाप को अंकों में व्यक्त किया जाता है) जिसे सहसंबंध गुणांक ,Coefficient of Correlation) कहा जाता है। गणितीय विधि से किसी भी दो या दो से अधिक चरों के मध्य सहसंबंध की मात्रा का परिकलन किया जा सकता है और इन चरों के मध्य कुछ न कुछ सहसंबंध की मात्रा भी हो सकती हैलेकिन ,इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि उन चरों के मध्य कारणकार्य -क कारणकार्य का संबंध विद्यमान है। प्रत्ये-कार्य संबंध को सुनिश्चित नहीं किया-क सहसंबंध से कारणप्रत्ये लेकिन ,संबंध का अर्थ सहसंबंध होता है जा सकता है।

सहसंबंध को हम दिशा-तथा चर ,अनुपात ,मूल्यों की संख्या के आधार पर कई भागों में विभक्त कर सकते हैं।

**धनात्मक एवं ऋणात्मक सहसंबंध )Positive and Negative Correlation) -:** यदि दो पद श्रेणियों या चरों में परिवर्तन एक ही दिशा में हो तो उसे धनात्मक सहसंबंध कहेंगें। इसके विपरीत यदि एक चर के मूल्यों में एक दिशा परिवर्तन होने से दूसरे चर के मूल्यों में विपरीत दिशा में परिवर्तन हो तो ऐसा सहसंबंध ऋणात्मक सहसंबंध कहलाएगा।

**पूर्ण धनात्मक अथवा पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध )Perfect Positive or Perfect Negative Correlation)** -: जब दो पद श्रेणियों में परिवर्तन समान अनुपात एवं एक ही दिशा में हो तो उसे पूर्ण होगा। इसके विपरीत जब दो म (1+) क सहसंबंध कहेंगें। ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांक धनात्मक मूल्यों में परिवर्तन समान अनुपात में ठीक विपरीत दिशा में हो तो उसे पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध कहेंगें। ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांक 1± तथा 0 हर दशा मेंहोगा। सहसंबंध गुणांक का मूल्य (1-)के मध्य होता है।

सरल सहसंबंध ज्ञात करने की निम्न विधियाँ हैं–

**.1बिन्दु रेखीय विधियॉ )Graphic Methods)-:**

i. विक्षेप चित्र )Scatter Diagram)

ii. साधारण बिन्दु रेखीय रीति )Simple graphic Method)

**.2गणितीय विधियॉ )Mathematical Methods) -:**

i. कार्ल पियर्सन का सहसंबंध गुणांक )Karl Pearson Coefficient of Correlation)

ii. ) यरमैन की श्रेणी अंतर विधिस्पीSpearman's Rank Difference Method)

iii. संगामी विचलन गुणांक)Coefficient of Concurrent Deviations)

iv. न्यूनतम वर्ग रीति )Least Squares Method)

v. अन्य रीतियॉ )Other Methods)

कार्ल पियर्सन सहसंबंध गुणांकसहस :ंबंध गुणांक ज्ञात करने कि लिए यह विधि सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। इस विधि में सहसंबंध की दिशा तथा संख्यात्मक मात्रा का माप भी किया जाता है। यह सहसंबंध

गुणांक **माध्य एवं प्रमाप विचलन** पर आधारित है। अतइसमें गणितीय दृष्टि से पूर्ण शुद्धता पायी जाती : स रहै। इ ीति के अन्तर्गत दो चरों के मध्य सहसंबंध गुणांक )Coefficient Correlation) ज्ञात करते हैं जिसे संकेताक्षर ,'r' से संबोधित किया जाता है।

## **12.31** निबंधात्मक प्रश्न

1. सांख्यिकी का अर्थ बताइए तथा वर्णनात्मक सांख्यिकी के महत्व का वर्णन कीजिए|
2. केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों विभिन्न मापकों की तुलना कीजिए |
3. केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों के महत्व का वर्णन कीजिए |
4. निम्नलिखित समंकों से समान्तर माध्य, मध्यका, व बहुलक का मूल्य ज्ञात कीजिए:- (उत्तर : समान्तर माध्य =67.5, मध्यका = 69.32, बहुलक = 72.96)

| वर्ग अंतराल | 90-94 | 85-89 | 80-84 | 75-79 | 70-74 | 65-69 | 60-64 | 55-59 | 50-54 | 45-49 | 40-44 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बारंबारता | 1 | 4 | 2 | 8 | 14 | 6 | 6 | 6 | 4 | 3 | 3 |

5. विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा विचरणशीलता के महत्व का वर्णन कीजिए |
6. विचरणशीलता के विभिन्न मापकों की तुलना कीजिए |
7. निम्न समंकों के आधार पर चतुर्थक विचलन ज्ञात कीजिए। From the following data find Quartile Deviation and its Coefficient. (उत्तर $Q_1$=4.13, $Q_3$= 7.11, Q.D.= 1.49, गुणांक=0.27)

| अंक )X) | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बारंबारता )f) | 2 | 9 | 11 | 14 | 20 | 24 | 20 | 16 | 5 | 2 |

8. निम्न समंकों से प्रमाप विचलन की परिगणना कीजिए। (उत्तर: प्रमाप विचलन= 13.9)

| अंक (X) | 0 | 10 | 20 | 30 | 40 |
|---|---|---|---|---|---|
| बारंबारता (f) | 80 | 60 | 50 | 35 | 10 |

9. सहसंबंध का अर्थ बताईये व इसके विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कीजिये|
10. सहसंबंध के विभिन्न मापकों का परिकलन कर सकेंगे|
11. सहसंबंध के विभिन्न मापकों की तुलना कर सकेंगे|
12. सहसंबंध गुणांक का अर्थापन कर सकेंगे|
13. निम्न आंकड़े से कार्ल पियर्सन के सहसंबंध गुणांक की गणना कीजिये| (उत्तर: r = 0.69)

| **छात्र** | **प्रथम परीक्षण में प्राप्त अंक** | **द्वितीय परीक्षण में प्राप्त अंक** |
|---|---|---|
| A | 8 | 6 |
| B | 6 | 5 |
| C | 5 | 4 |
| D | 5 | 3 |
| E | 7 | 2 |
| F | 8 | 7 |
| G | 3 | 2 |
| H | 6 | 3 |

## **12.32** संदर्भ ग्रन्थ सूची **/** पाठ्य सामग्री


1. Best, John W. & Kahn (2008). Research in Education, New Delhi, PHI.
2. Good, Carter, V. (1963). Introduction to Educational Research, New York, Rand Mc Nally and company.
3. Koul, Lokesh (2002). Methodology of Educational Research New Delhi, Vikas Publishing Pvt. Ltd.
4. Garret, H.E. (1972). Statistics in Psychology and Education, New York, Vakils, Feffers and Simans Pvt. Ltd.
5. सिंह, ए०के० मनोविज्ञान : (2007), समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉं, नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास
6. गुप्ता, एस०पी० मापन एवं मूल्या : (2008)ंकन, इलाहाबाद, शारदा पब्लिकेशन
7. शर्मा, आर०ए० एवं शोध प्रक्रियाशिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व: (2001), मेरठ, आर०लाल० पब्लिकेशन्स

1. Koul, Lokesh (2002). Methodology of Educational Research New Delhi, Vikas Publishing Pvt. Ltd.
2. Karlinger, Fred N. (2002). Foundations of Behavioural Research, New Delhi, Surjeet Publications.
3. Garret, H.E. (1972). Statistics in Psychology and Education, New York, Vakils, Feffers and Simans Pvt. Ltd.
4. सिंह, ए०के० मनोविज्ञान : (2007), समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉं, नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास
5. गुप्ता, एस०पी० कनमापन एवं मूल्यां : (2008), इलाहाबाद, शारदा पब्लिकेशन
6. राय, पारसनाथ अनुसंधान परिचय : (2001), आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन्स
7. Best, John W. & Kahn (2008). Research in Education, New Delhi, PHI.
8. Good, Carter, V. (1963). Introduction to Educational Research, New York, Rand Mc Nally and company.

# इकाई - 13

# वैयक्तिक भेद

**इकाई की रूपरेखा**


13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 वैयक्तिक भेद का अर्थ व परिभाशऐं

13.3 वैयक्तिक भेदों के कारण

13.4 वैयक्तिक भेद के आधार

13.5 वैयक्तिक भेद के प्रकार

13.6 वैयक्तिक भेदों का मापन

13.7 वैयक्तिक भेद और निर्देशन व परामर्श

13.8 वैयक्तिक भेद और मार्गदर्शन

13.9 वैयक्तिक भेद और परामर्श

13.10 सारांश


## 13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

- वैयक्तिक भेद का अर्थ से परिचित हो सकेंगे।
- वैयक्तिक भेद के कारण, आधार, प्रकार, मापन से समझ सकेगें।
- वैयक्तिक भेद में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका को समझ सकगें।

## 13.1 प्रस्तावना

आज मनोवैज्ञानिक इस बात को मानते लेगे हैं कि बालक शिक्षा का आधार बिन्दु है। उसकी शिक्षा उसके अनुरूप होनी चाहिएं व्यक्ति को क्या करना चाहिये, क्यों करना चाहिए, यदि वह अपनी योग्यता तथा क्षमता के अनुरूप कार्य नहीं करता है तो उसका क्या परिणाम होगा ? आदि प्रश्न ऐसे है जो मानव की बुद्धि, रूचि, अभिरूचि के वैभिन्नय को प्रकट करते रह है। इसलिए मनोविज्ञान में वैयक्तिक भेदों पर अधिक विचार किया जाने लगा। वैयक्तिक भेदों के अनुसार बालक को शिक्षा देने के लिए मार्ग-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। हम इस पाठ में वैयक्तिक भेदों तथा उसके अनुसार निर्देशन की आवश्यकता पर चर्चा करेंगे।

## 13.2 वैयक्तिक भेद का अर्थ एवं परिभाषाऐं

**अर्थ-** बालकों में शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक कई प्रकार के भेद पाये जाते है। बच्चों के व्यक्तिगत भेद शिक्षण में कई प्रकार की समस्यायें उत्पन्न कर देते है, जैसे अध्यापक किस कक्षा में किस प्रणाली से पढ़ाये कि सभी बच्चे समान रूप से लाभ उठा सकें। वैयक्तिक दृष्टि से वैयक्तिक भेदों का अध्ययन सब से पहले गाल्टन ने प्रारम्भ किया था। तब से इस विषय पर अनेक अनुसंधान हो चुके है, जिनके आधार पर मनोवैज्ञानिकों और शिक्षा-शास्त्रियों ने शिक्षा की कई नई प्रणालियों का विकास किया है। यद्यपि अध्यापक के लिये व्यक्तित्व भेद कई प्रकार की समस्याओं को उत्पन्न करते है, किन्तु समाज की और व्यक्ति की दृष्टि से यह बहुत महत्पपूर्ण है। एक समय था जब व्यक्ति की आवश्यकायें सीमित थी, जिनको वह सरलता से पूरा कर लेता था। आधुनिक युग में हमें विभिन्न प्रकार की विशेश योग्यताओं वाले व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो समाज के विभिन्न विकास में योगदान दे सकें। व्यक्तिगत भेद व्यक्ति विशेश के लिए भी महतपूर्ण होते है, क्योंकि उसको उनके विकास में सन्तोश तथा आनन्द मिलता है और वह आपनी योग्यताओं के अनुकूल विकास कर सकता है। व्यक्तिगत भेदों के अध्ययन से बच्चों की व्यक्तिगत योग्यताओं का पता लगा कर उनका उचित विकास कर सकते है।।

**परिभाषायें**

1- स्किनर- 'मापन क्रिया जानने वाला व्यक्तित्व का प्रत्येक पहलू व्ययक्तिक भिन्नता का अंश है।'

2- टायलर- 'शरीर के आकार और रूप , शारीरिक कार्य, गति की क्षमताओं, बुिद्ध, उपलब्धी, ज्ञान, रूचियों, अभिवृत्तियों और व्यक्तित्व के लक्षणों में मापी जाने वाली भिन्नताओं का अस्तित्व सिद्ध हो चुका है।'

3- जेम्स ड्रेवर- वैयक्तिक भेद की परिभाषा इस प्रकार दी गई है- 'औसत समूह से मानसिक, शारीरिक वेशेशताओं के सन्दर्भ में समूह के सदस्य के रूप भिन्नता या अन्तर को वैयक्तिक भेद कहते है।'

## 13.3 वैयक्तिक भेदों के कारण

वैयक्तिक भेदों के पाये जाने के अनेक कारण विद्यमान हैं। हम प्राय: यह देखते हैं कि किसी बालक की ऊंचाई अधिक है तो किसी की बुद्धि अधिक है। किसी का वातावरण ठीक नहीं तो , किसी की सांस्कृतिक परम्परा भिन्न है। वे सभी भिन्नतायें वैयक्तिक भेदों के कारण है। ये प्रमुख कारण इस प्रकार है।

1- **वंश परम्परा -** कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है क व्यक्तिगत भेदों का मुख्य कारण वंश परम्परा है क्योंकि मानव शारीरिक तथा मानसिक योग्यतायें अपनी वंश परम्परा से ग्रहण करता है। यदि बाप चोर, डाकू और मन्द-बुद्धि है तो बच्चा भी वैसा ही होगा क्योंकि बिल्ली के बिलोटे ही पैदा होंगे। अब प्रश्न यह उठता है कि वंश परम्परा का क्या अर्थ है। हम अपने मां-बाप से वंश परम्परा के द्वारा क्या चीज ग्रहण करते हैं। जे0ए0 थामसन के अनुसार- **'वंशक्रम प्रजातीय सम्बन्धों को संतति दर संतति प्रवाहित करने वाला सरल शब्द है।'** - मानव का अस्तित्व दो उत्पादक कोश-सूत्रों

के आपस में मिलने से होता है। ये स्त्री-कोश और पुरूश-कोश सूत्र कहलाते हैं। प्रत्येक स्त्री और पुरूश के कोश सूत्र में 23 जोड़े पित्र्य सूत्र होते हैं जब यह आपस में मिलते हैं तो स्त्री और पुरूश के 50% पित्र्य सूत्र मर जाते हैं। इस प्रकार से वंश परम्परा आधी-आधी विभक्त हो जाती है। प्रत्येक पित्र्य सूत्र में अनेक पित्र्यैक होते हैं, जो भिन्न-भिन्न शारीरिक व मानसिक योग्यताओं को एक संतति से दूसरी संतति में ले जाते हैं। मानव पित्र्य-सूत्र वंश-परम्परा से प्राप्त करता है। यही व्यक्तिगत भिन्नता का कारण बनते हैं।

2- **वातावरण** - वैयक्तिक भिन्नता पर वातावरण का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। भौतिक वातारण व्यक्ति की ऊंचाई, शक्ल, आकार-व्यवहार तथा मान्यताओं को निर्धारित करने में योग देते है। सामाजिक वातावरण भी सामजिक मान्यतायें निर्धारित करते हैं, जिनका प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है। वातावरण चाहे भौतिक हो, चाहे सामाजिक वह व्यक्ति में कुछ न कुछ विशेशतायें उत्नन्न करता ही है।

3- **जाति, प्रजाति एवं देश का प्रभाव** - व्यक्तिगत भिन्नता के कारणों में जाति, प्रजाति एवं देश की विचारधारा तथा मान्यताओं का प्रभाव पड़ता है यही कारण है कि काश्मीर में रहने वाला व्यक्ति, उत्तर भारत, मध्य भारत, पूर्वी भारत, तथा दक्षिणी भारत के व्यक्तियों से आचार-विचार, शरीर तथा स्वस्थ्य में भिन्न होता है। एक जाति का व्यक्ति भी दूसरी ताति के व्यक्ति से आचार-व्यवहार, सोचने-विचारने के तरीकों में भिन्न होता है और भारत तथा चीन, भारत तथा पाकिस्तान, इंग्लैंड के व्यक्तियों में साधारण भिन्नता को सहज ही पहचाना जा सकता है।

4- **यौन भेद** - व्यक्तियों में भी स्त्री-पुरूश की बनावट में तो अन्तर होता ही है, साथ ही उनके सोचने-विचारने में बुद्धि तथा कार्यक्षमता की भिन्नता पाई जाती है। लड़कियां परिपक्वता पहले प्राप्त कर लेती है। लड़कों में परिपक्वता बाद में आती है। आयु के बढ़ने के साथ-साथ योग्यता व कार्यक्षमता व कार्यदक्षता में अन्तर होने लगता है।

## 13.4 वैयक्तिक भेद के आधार

फ्री मैन के अनुसार- **'उच्च और जटिल प्रक्रियाओं में मानवीय भिन्नताओं का हमारा ज्ञान बुद्धि की परिभाषाओं में अन्तर और प्रयुक्ति परीक्षणों में कुछ अन्तर्गत कठिनाइयों के बावजूद, परिणाम, विस्तार ओर वैधता की दृष्टि से काफी बढ़ गया है।'** इसलिए वैयक्तिक भेदों का कोई एक आधार नही है, अनेक आधार इसके हो सकते हैं। यहां पर मुख्य आधार प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

1- **शारीरिक -** शरीर, रचना की दृष्टि से हम नित्य ही व्यक्तियों में भेद देखते है। गोरे, सांवले, लम्बे, छोटे, मोटे, दुबले, सामान्य आदि शारीरिक भेद है। एक ही कक्षा के बालकों में हमको कुछ बालक कमजोर, छोटे तथा हष्ट-पुष्ट और मजबूत मिलेंगे और अधिकांश औसत मिलेंगे।

2- **मानसिक -** बुद्ध परीक्षण द्वारा यह निर्धारित किया जा चुका है कि बालकों में मानसिक दृष्टि से भेद पाया जाता है। एक विद्यालय की किसी एक कक्षा में भिन्न-भिन्न बुद्धि के बालक मिलते है।

मन्द-बुद्धि, औसत बुद्धि तथा प्रखर बुद्धि की दृष्टि से बालकों का वर्गीकरण कठिन नहीं है। 60 से लेकर 140 तथा इससे ऊपर वाले बृद्धि-लब्धि तक के बालक कक्षा में पाये जाते है।

3- **रूचि -** बालक तथा बालिकाओं की रूचि में भेद पाया जाता है तथा भिन्न-भिन्न बालकों की रूचि में भी अन्तर मिलता है। पढ़ने-खेलने, वस्त्र पहनने आदि सभी बातों में भिन्न-भिन्न रूचियों के व्यक्ति मिलते है। रूचि वैभिन्नय बालकों में विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व का प्रकटीकरण करता है।

4- **अधिगम -** कुछ बालक सीखने में तीव्र होते हैं और कुछ मन्द होते है, जो तीव्र होते हैं उनको शिक्षा देने में थोड़ी सी सहायता पर्याप्त होती है। एक बार सीखने पर उनके मन में कोई बात बहुत समय तक धारण रह सकती है। जो बालक सीखने में मन्द होते है उनको शिक्षा देने में अध्यापक को बहुत परिश्रम करने की आवश्यकता होती है। यह भी व्ययक्तिक क्षमताओं पर निर्भर करता है।

5- **व्यक्तित्व** - दो व्यक्ति समान योग्यता के होते हुए भी अपने व्यवहार में भिन्न हो सकते हैं। व्यक्ति रूढ़िवादी है या आधुनिक विचार का, ईमानदार या बेईमान, प्रसारक या अप्रसारक आदि सभी व्यक्तित्व के भेद हैं। इसी प्रकार कुछ बच्चे सामाजिक कार्य में आगे आने वाले, सहायोग देने वाले होते हैं तथा कुछ चुपचाप बैठने वाले होते हैं।

6- **अभिरूचि और निष्पत्ति** - बालकों की अभिरूचि और ज्ञान में अन्तर होता है। कुछ बालक बहुत चतुर होते हैं, उनमें ज्ञान प्राप्त करने क्षमता अधिक होती है तथा कुछ इसके विपरीत होते हैं।

7- **स्वभाव** - कुछ बालक सदा प्रसन्न रहते हैं तथा कुछ बालक बड़े चिड़चिड़े होते हैं। लड़के और लड़कियों के स्वभाव में भी अन्तर होता है, जो कि भिन्न-भिन्न आयु में परिमार्जित होता है। इस प्रकार स्वभाव दृष्टि से अनेक व्यक्तिगत भेद होते हैं। स्वभाव-वैभिन्नय बालकों की रूचि, अभिरूचि, क्षमता आदि पर अपना प्रभाव डालता है।

8- **विशिष्ट योग्यतायें एवं अयोग्यतायें** - प्रत्येक विषय में समान योग्यता रखने वाले बालक कम होते हैं। हम अच्छे, मध्यम और पिछड़े हुए बालकों का वर्गीकरण करते अवश्य हैं परन्तु वास्तव में यह कह देना पूर्णतया सत्य नहीं कि मध्यम श्रेणी के बालक सभी विषयों में मध्यम होते हैं। एक बालक सभी विषयों में अच्छा होते हुए भी गणित में कमजोर हो सकता है या सभी विषयों में साधारण होते हुए भी अंग्रेजी में अच्छा हो सकता है।

## 13.5 वैयक्तिक भेद के प्रकार

वैयक्तिक भिन्नता से तात्पर्य किसी न किसी रूप में व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों से भिन्न होना है। **टरमन के अनुसार-'उच्च योग्यता वालों या प्रतिभाशाली बच्चों में से कुछ हद तक अपनी अनेक योग्यताओं के मामले में अपने ही भीतर या अन्य व्यक्तियों के साथ भिन्नतायें होती है।'**

एक व्यक्ति, आवश्यक, नहीं है कि दूसरे से सभी बातों में समान हो। उसके लिए आवश्यक है कि उसका अन्तर एक नहीं अनेक रूपों में हो सकता है। निम्नलिखित भिन्नतायें एक व्यक्ति में हो सकती है:

1- **शारीरिक भिन्नता** - शारीरिक भिन्नता से तात्पर्य कद, रंग, यौन-भेद, शारीरिक परिपक्वता के अन्तर से है। लम्बा तथा छोटा कद, मोटे-पतले आकार शारीरिक भिन्नता प्रकट करते हैं।

2- **मानसिक भिन्नता** - हर व्यक्ति कि मानसिक शक्ति भिन्न होती है। कोई बुद्धू होता है तो कोई बुद्धिमान।

3- **व्यक्तित्व में भिन्नता** - हर एक व्यक्ति का व्यक्तित्व अपने ढंग से तो पूर्ण होता है, पर उनके गुणों में आपस में समानता नहीं होती है। कोई अधिक प्रभावशाली होता है, कोई कम प्रभावशाली।

4- **रूचि एवं दृष्टिकोण में भिन्नता** - प्रत्येक व्यक्ति की रूचि भिन्न होती है। समस्या के प्रति दृष्टिकोण भिन्न होता है। यही भिन्नता व्यक्ति-व्यक्ति को अलग करती है।

5- **योग्यता में भिन्नता** - किसी भी कार्य को करने व सीखने की योग्यता में भी हर व्यक्ति भिन्न-भिन्न शक्ति रखता है। यही भिन्नता उसे समायोजन में सहायता देती है।

6- **भावात्मक भिन्नता** -हम प्राय: देखा करते है कि कुछ व्यक्ति जल्दी की क्रोधित हो जाते हैं और कुछ देर से कुछ व्यक्ति बहुत ही शांत रहते हैं और जल्दी ही चिढ़ जाते हैं। संवेगों की यह भिन्नता व्यक्तित्व समायोजन के लिए समस्या होती है।

7- **चरित्र में भिन्नता** - चरित्र भी सभी व्यक्तियों का समान नहीं होता है। कुछ अच्छे चरित्र वाले होते हैं और कुछ खराब, कुछ कामुक होते हैं, कुछ सज्जन आदि। चरित्र की विशेशतायें ही व्यक्ति-व्यक्ति में भेद उत्पन्न करते है।

**व्यक्तिगत भेदों का मापन**

वैयक्तिक भिन्नताओं का सीखने की गति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। ओसत रूप से व्यक्ति जो भी सीखता है, उसमें भी सीखने की गति में वैभिन्य रहता है। किसी भी प्रायोगिक स्थिति में समस्या समाधान में भी यही कारक (Factor) कार्य करता हैं वेयक्तिक भेदों की समस्या को सीखने के अंक (Degree of learning) के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। सीखने के स्थानान्तरण पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। वेयक्तिक भेदों के अध्ययन में सामान्यत: दो चरण (Step) होते है।

(1) अधिकम का अन्तरण

(2) निष्पत्ति का मापन।

ये दोनों ही वैयक्तिक भेद के अंश की अभिव्यक्ति के लिए उत्तरदायी हैं।

वैयक्तिक भेदों के मापन के लिए परिणामों की रचना की गई हैं। मानव व्यवहार की शुद्धता ज्ञात करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक परीक्षणों का निर्माण किया है। किन्ही निश्चित दशाओं में ये व्यवहार का मापन करते है। इनके माध्यम से व्यक्ति की निष्पत्ति तथा उसके भावी व्यवहार की भविष्यवाणी कर सकते हैं। वैयक्तिक भिन्नता, शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की होती है, अत: इन दोनों प्रकार की भिन्नताओं के मापन हेतु भिन्न-भिन्न परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

प्रयुक्त परीक्षणों में समानता का अभाव पाया जाता है। इनसे कभी-कभी परिणामों में बहुत भिन्नता आ जाती हैं अध्यापक द्वारा निर्मित परीक्षणों में, जो प्राय: कुशलता के मापन हेतु प्रयुक्त किये जाते है- केवल अच्छे तथा बुरे का ही पता चल पाता है। इनके सम्पादन में भी काफी कठिनाई आती है।

पदविश्लेशण के द्वारा इस समस्या को हल किया जा सकता हैं, इसलिए मनोवैज्ञानिक **क्रमसूचक परिणाम** का प्रयोग करके अशुद्धियों से बचते है।

वैयक्तिक भेदों का मापन करने हेतु अनेक अनुमान परीक्षण उपलब्ध हैं। ये अनुमान परीक्षण रूचि, अभिरूचि, अभिवृत्ति, निशत्ति तथा वैयक्तिक आदि का मापन करते हैं, ये वैयक्तिक तथा सामूहिक दोनों प्रकार के हैं। प्रचलित परीक्षणों के परिणामों को आधार पर छात्र का पाश्र्ववृत तैयार किया जा सकता हैं। किसी भी परीक्षण का प्रयोग करने से पूर्व इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि:

(1) छात्र ने परीक्षण की कार्य प्रणाली को समझ लिया है अथवा नहीं

(2) वह अपनी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति दे रहा है

(3) वह शारीरिक तथा सांवेगिक रूप से परीक्षण के लिए उपयुक्त है।

परीक्षणों से परिणाम प्राप्त करने के लिय परीक्षक को सांख्यिकी विद्या का ज्ञान होना आवश्यक है। उसे आंकड़ों की व्याख्या तथा विश्लेशण पर अधिकार होना चाहिएं उसे स्वयं संक्षिप्तीकरण, व्याख्या, विश्लेशण तथा भविष्यवाणी करने की योग्यता तथा क्षमता का विकास करना चाहिए।

वैयक्तिक भेदों का मापन करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कुछ परीक्षणों का विकास किया हैं इन परीक्षणों के आधार पर व्यक्ति के भावी व्यवहार की घोशणा की जा सकती है। प्रमुख परीक्षण इस प्रकार है।

1- **क्रम सूचक परिमाप** -चूंकि मनोवैज्ञानिक, बुद्धि परीक्षण के प्राप्ताकों के आधार पर व्यक्ति की भिन्नताओं के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते, अत: 1.क्रम सूचक परिणाप का निर्माण किया गया है। इसमें बुद्धि, व्यक्तित्व की विशेशताओं, अभिवृत्ति अभिरूचि आदि के आधार पर व्यक्ति का 1. क्रम निर्धारित किया जाता है।

2- **निर्धारण परीक्षण** - इस प्रकार परीक्षणों का प्रमापीकरण किया गया है और इनमें सामान्य सूचनायें दी होती हैं। इसका अर्थ यह है कि इन परीक्षणों के प्रयोगकर्ता को कक्षा स्तर की सभी बातें पता रहती हैं। उन्हीं के आधार पर अध्यापक छात्रों के वैयक्तिक भेदों का मूल्याकन करता है।

## 13.7 वैयक्तिक भेद और निर्देशन व परामर्श

अध्यापक कक्षागत परिस्थितियों में वैयक्तिगत भेदों का लाभ इस प्रकार उठा सकता है-

1- कक्षा में प्रतिभाशाली या मन्द बुद्धि बालकों को विशेश निर्देश देकर उनका मार्ग दर्शन करना।

2- छोटी कक्षाओं में व्यक्तिगत ध्यान देना।

3- भिन्न मानसिक आयु तथा स्तर के बालकों की अलग कक्षा आयोजन करना।

4- वैयक्तिक भेद वाले छात्रों की शंका समाधान तथा सीखने की क्रियाओं के अधिकतम आदान-प्रदान करना।

5- वैयक्तिक भिन्नताओं का ध्यान रखते हुए कक्षा में शिक्षण का सामान्य स्तर बनाये रखना।

6- छात्रों में अभिरूचि जागृत करनां

7- छात्रों को स्वयं ही कार्य करने के साधन प्रदान करना।

## 13.8 मार्ग प्रदर्शन

### 13.8.1 मार्ग प्रदर्शन का अर्थ-

**'मार्ग प्रदर्शन'** शब्द **'गाइडैन्स'** के समानान्तर प्रयोग में लाया जाता है। इसका सामान्यत: अर्थ सहायकता करने से लिया जाता है। कूज एवं केफेवर के अनुसार-'यह वह स्थिति है जहां से युवक शैक्षणिक तथा व्यावसायिक उपलब्धियों के लिए विभाजित होता है तथा प्राप्ति अवसर एवं परिस्थितियों के समायोजन करते है।' कारमाइकेल के अनुसार- प्रभावपूर्ण शिक्षा ही मार्ग प्रदर्शन है और वास्तविक मार्ग प्रदर्शन का उद्देश्य 'स्वयं मार्ग प्रदशन है।'

प्रत्येक व्यक्ति के सामने समायोजन की समस्या होती है। समस्याओं का समाधान वह अपनी व्यक्तिगत क्षमता के अनुसार करता है और कभी -कभी क्षमता की कमी के कारण वह समायोजन में असफल रहता हैं। ऐसी अवस्था में व्यक्ति को मार्ग प्रदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। मार्ग प्रदर्शन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति की समायोजन समस्या के समाधान में सहायता की जाती है। समायोजन की समस्या उस समय उत्पन्न होती है, जबकि व्यक्ति की आवश्यकता पूरी नहीं होती। वास्तव में समायोजन समस्याजीवन में प्रतिदिन आती रहती है। वैयक्तिक भिन्नता के कारण समायोजन की प्रक्रिया गलत हो जाती है तो उसका स्वरूप विकृत हो जायेगा। समायोजन के लिए मार्ग प्रदर्शन की आवश्यकता होती है।

### 13.8.2 मार्ग-प्रदर्शन : परिभाषायें

शिक्षा के क्षेत्र में मार्ग- प्रदर्शन की बहुत आवश्यकता है। शिक्षा समाज की वह प्रक्रिया है जो व्यक्ति में आवश्यक परिवर्तन लाती है। शिक्षा यदि वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखकर दी जाती है तो वह बालक के सर्वांगीण विकास को पूरा करने में असमर्थ है तो वहीं उसके कारणों की जांच होनी आवश्यक है। यदि बालक में कुछ दोष है तो उसका निराकरण मार्ग-प्रदर्शन के द्वारा सम्भव है।

1- आर्थर जे0 जोन्स- **'व्यक्तियों को बुद्धिमत्तापूर्वक चुनाव तथा समायोजन करने में दी जाने वाली सहायता निर्देशन है।**

2- **जेम्स ड्रेवर -** मार्ग- प्रदर्शन शब्द तीन अर्थो में प्रयुक्त होता है : (1) **बालकों का मार्ग प्रदर्शन -** जिसका अर्थ है चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक, शैक्षणिक एवं मनोचिकित्सात्मक तथा उपचारात्मक संगठन तथा सहयोग, जो कि जटिल या मन्दबुद्धि बालकों के व्यवहार अथवा शैक्षणिक समस्याओं का अध्ययन करता है (2) **शैक्षणिक मार्ग प्रदर्शन -** प्रमापीकृत मानसिक, शैक्षणिक परीक्षण के अर्थ में प्रथमिक पाठशालाओं के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है। (3) **व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन** - बालकों तथा उनके माता-पिता को बालकों के व्यावसायिक चयन में सहायता पहुंचाता है, इसी आधार पर बुद्धि परीक्षण, शैक्षिक परीक्षा, विशेश अभिवृत्ति, अयोग्यता परीक्षण, स्कूल रिकार्ड, रूचि, आकांक्षा आदि की सूचना देता है तथा राज्य के श्रमक्षेत्र की सूचनायें प्रदान करता है।

शिक्षा का अर्थ इस प्रकार लिया जाता है- (1) 'परिवर्तन की प्रक्रिया, जो व्यक्ति में होती है (2) सूचना देना (Instruction) (3) वे वेतन जो व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, भावात्मक नैतिक विकास के योग्य बनाने का निर्देश देते है जिससे व्यक्ति सामाजिक रूप में प्रभावशाली और व्यक्तिगत रूप में संतोशजनक हो सके।'

सैकण्डरी एजूकेशन कमीशन ने मार्ग प्रदर्शन की परिभाषा इस प्रकार की है- 'निर्देशन में लड़के और लड़कियों की सहायता करने की वह कठिन कला सम्मिलित है, जिसके द्वारा वे अपने भविष्य को बुद्धिमत्तापूर्वक, सभी कारणों को मद्देनजर रखते हुये अपनी योजना बनाते हैं, जिनके मध्य रहकर उन्हें संसार में काम करना होगा।'

इन परिभाषाओं के आधार पर हम थॉमस रिस्क के शब्दों में यह कह सकते हैं- **'मार्ग प्रदर्शन का उद्देश्य छात्रों को उनकी समस्याओं के समाधान में सहायता देना, समस्या के सुलझाने की क्षमता उत्पन्न करना है अर्थात आत्म निर्देशन करना है।'**

शिक्षा संबन्धों कार्यो में मार्ग-प्रदर्शन की आवश्यकता है। मार्ग-प्रदर्शन से विद्यार्थी विशेश में सभी आवश्यकताओं को पूरा करने की योग्यता उत्पन्न की जाती है।

शिक्षा सम्बन्धी कार्यो में मार्ग-प्रदर्शन का बहुत महत्व है। बालक कोमल पौधों के समान होते हैं और उनकी अनुकरण की शक्ति अधिक होती है। यदि शिक्षा में उनकी स्थिति सामान्य रहती है और उन्हें किसी प्रकार का निर्देशन नहीं दिया जाता तो उनका जीवन-वृक्ष समाजोपयोगी नहीं होगा। यदि उसे मार्ग-प्रदर्शन मिलता है तो जहां वह स्वयं स्वस्थ (मानसिक, शारीरिक रूप से) होगा, वहीं वह समाज के लिए भी बहुत उपयोगी होगा।

मार्ग-प्रदर्शन के तत्व इस प्रकार हैं-

**1-** मार्ग**-**प्रदर्शन व्यक्ति पर ध्यान देता है समस्या पर नहीं।

**2-** योग्यताओं की खोज**,** व्यक्ति की रूचि**,** अभिरूचि**,** आवश्यकता**,** परिसीमा**,** स्वभाव तथा आदर्शों के आधार पर की जाती है।

**3-** आत्म **-**निर्देशन तथा आत्म**-**विकास की ओर ले जाता है।

**4-** वर्तमान तथा भविष्य के प्रति आश्वस्त होना।

**5-** व्यवसाय में सफलता प्राप्त करना।

**6-** नवीन परिस्थिति में समायोजन की क्षमता उत्पन्न करना।

**7-** आवश्यकतानुरूप परामर्श की व्यवस्था करना।

मार्ग**-**प्रदर्शन की विधियां

**मार्ग-प्रदर्शन कार्य** 1. क्रम इतना व्यापक है कि किसी एक विधि से उसका काम नहीं चलता। इसमें अनेक विधियों का सहारा लेना पड़ता है। ये विधियां इस प्रकार है-

**1- परीक्षण विधि** - मार्ग-प्रदर्शन के लिए पहले बालक की विभिन्न योग्यताओं तथा उपलब्धियों की परीक्षा ले लेनी चाहिए। इसके बालक को किस प्रकार के निदेशन की आवश्यकता है, इसका ज्ञान प्राप्त हो जायेगा।

**2- अवलोकन विधियां -** इस विधि के अन्तर्गत बालक के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

**3- परिमापन -** इस विधि द्वारा बालकों की विभिन्न स्थितियों का परिमापन किया जाता है।

**4- घटना सम्बन्धी तथ्य -** समय-समय पर घटी घटनाओं का संग्रह भी बालकों को निर्देश देने में पर्याप्त सहायता देता है।

**5- स्वानुभव -** स्वयं, बालक के अनुभव भी निर्देशन में सहायकता करते हैं, ये अनुभव उसकी रूचि पर आधरित होते हैं।

**6- अन्य विधियों -** इसके अतिरिक्त अन्य विधियों से भी सूचनायें प्राप्त करके उनके अनुसार परामर्श देना आदि का उपयोग किया जा सकता है।

### 13.8.3 मार्ग-प्रदर्शन की आवश्यकता

सवरी एवं हेलफोर्ड के अनुसार- **"अच्छी मार्ग-प्रदर्शन परिपाटियां वे हैं जो व्यक्ति की अपने मामलों को सुलझाने तथा जीवन-मापन का अधिगम कराती हैं। इस का उद्देश्य व्यक्ति को पराश्रयी बनाना नहीं है अपितु उसे स्वयं निर्देशित करने में सहायता देना है। व्यक्ति की प्रतिष्ठा-मार्ग प्रदर्शन का चरम बिन्दु है।"** मार्ग-प्रदर्शन की आवश्यकता इस प्रकार है-

**1- व्यक्तिगत भेद-** प्रत्येक कक्षा में विभिन्न वातावरण के छात्र आते हैं जिनमें व्यक्तिगत भेद पाये जाते हैं। **" इन व्यक्तिगत भेदों का अध्ययन तथा समायोजन करने के लिए निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।"** अनिवार्य शिक्षा के कारण विद्यालयों में समाज के प्रत्येक स्तर से बच्चों का आना आरम्भ हो गया है, जिसके कारण कक्षा के छात्रों में व्यक्तिगत भेदों का प्रसार (Range) बढ़ गया है। इस बढ़ती हुई सीमा के लिए मार्ग-प्रदर्शन की परम आवश्यकता है जिसके द्वारा प्रत्येक छात्र को समयोजित किया जा सके और उसकी योग्यताओं का अधिकतम विकास हो सके।

**2- शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन-** आज की शिक्षा लगभग उसी परिपाटी पर चल रही है जिस पर वह वर्षों पहले थी। शिक्षा का आधार व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है अत: मार्ग-प्रदर्शन का लक्ष्य शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन लाना है। शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन तभी हो सकेगा जब मार्ग- प्रदर्शन द्वारा वैयक्तिक आधार पर शिक्षा के नवीन उद्देश्यों तथा विधियों का विकास होगा।

**3- कार्य की भिन्नता-** प्रत्येक व्यक्ति की कार्य करने की शक्ति भिन्न होती है। ऐसे कार्य, जिनमें बालक की रूचि नहीं होती है, वे सभी उनके विकास में बाधक होते है। उनकी कार्यक्षमता को मार्ग-प्रदर्शन के द्वारा ही उचित रूप में उपयोग किया जा सकता है और उनकी कुशलता को विकसित किया जा सकता है।

**4- औद्योगीकरण -** औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरों तथा तकनीशियनों में उचित मार्ग-प्रदर्शन द्वारा कार्यक्षमता तथा कार्य-कुशलता का विकास किया जा सकता है। सच तो यह है कि बालक की योग्यता का उचित निर्धारण व्यावहारिक रूप से भविष्य के लिए यहीं पर होता है।

**5- प्रतिभाओं के विकास का प्रबन्ध -** विद्यालय मानव-जीवन के निर्माण की प्रयोगशाला है। बालक मे निहित शक्तियों का विकास विद्यालय में होता है। आज-कल समूह-शिक्षा के कारण

बालकों के व्यक्तिगत भेदों पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है।मार्ग-प्रदर्शन की सुविधाओं द्वारा हर एक बालक का विकास उसकी कार्यक्षमता व योग्यता के अनुसार होगा।

**6- मानव शक्ति का विकास** - मानव की शक्ति विभिन्न क्षेत्रों में लगी रहने के कारण नष्ट हो जाती है और उसका उसे तथा समाज को कोई लाभ नहीं पहुंचता। मार्ग-प्रदर्शन से व्यक्ति की सभी शक्तियों का विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग होता है। जिसका लाभ समाज को उचित रूप से मिलता है।

### 13.8.4 मार्ग-प्रदर्शन के प्रकार

मार्ग-प्रदर्शन का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। यह व्यक्ति की हर प्रकार की क्रियाओं में उपयोगी हो सकता है। मार्ग-प्रदर्शन के मुख्य तीन प्रकार होते हैं-

**1- व्यक्तिगत मार्ग-प्रदर्शन** - व्यक्तिगत मार्ग-प्रदर्शन के अन्तर्गत व्यक्ति को अलग निर्देशन दिया जाता है। व्यक्ति की उसकी अपनी समस्याओं से अवगत कराया जाता है और उसे सलाह दी जाती है कि वह अमुक-अमुक तरीके अपनाते तो उसका जीवन सही राह पर लग जायेगा।

व्यक्तिगत मार्ग- प्रदर्शन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के सन्तुलन विकास में सहायता करना है। व्यक्ति कई प्रकार की समस्याओं से पीड़ित होता है और उसका निराकरण आवश्यक हो जाता है। उसे **समस्या का निदान** तथा उपचार किया जाता है, इसके लिये **सुझाव**, लगाव, शोधन, पुनर्शिक्षण, आदि विधियों से उपचार किया जाता है। जटिल समस्याओं के लिए मनोविश्लेशण तथा सामूहित चिकित्सा आदि का सहारा लिया जाता है।

2- **शैक्षणिक मार्ग-प्रदर्शन** - जोन्स ने शैक्षणिक मार्ग-प्रदर्शन की परिभाषा इस प्रकार की है- **''शैक्षणिक मार्ग-प्रदर्शन का अर्थ उस व्यक्तिगत सहायकता से है जो विद्यार्थियों को इसलिए प्रदान की जाती है कि वे अपने लिए उपयुक्त विद्यालय पाठ्य-1. क्रम पाठ्य-विषय एवं स्कूली जीवन का चयन कर सकें और उनसे समयोजन कर सकें।''** शैक्षणिक मार्ग-प्रदर्शन में छात्रों को सीखने की समस्याओं का निदान तथा उपचार किया जाता है। छात्रों को पाठ्य विषयों का चयन करते समय मार्ग-प्रदर्शन की विशेश आवश्यकता है। बालक की पारिवारिक पृष्ठभूमि की जानकारी शैक्षणिक उपलब्धि, व्यक्तिगत विशेशताओं की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हैं इसके लिए अनुस्थापन वार्ता, मनोवैज्ञानिक परीक्षण, तथ्यसंकलन, साक्षात्कार ताकि अनुवर्ती अध्ययन आवश्यक हैं।

**3- व्यावसायिक मार्ग-प्रदशन)**- व्यावसायिक मार्ग-प्रदर्शन के अन्तर्गत वे सुझाव दिये जाते हैं, जिनसे बालक भविष्य के लिए व्यवसाय अनुसार अपना व्यवसाय चुनता है।

### 13.8.5 मार्ग-प्रदर्शन प्रभारी

मार्ग-प्रदर्शन कार्य1.क्रम का प्रचार व्यापक होता जा रहा है। प्रत्येक विद्यालय शैक्षिक मार्ग-प्रदर्शन कार्य1.क्रम की आवश्यकता अनुभव करता है। कैली के अनुसार- मार्ग-प्रदर्शन वह समग्र कार्य1.क्रम है जो छात्रों को उनकी अभिवृद्धि के अधिक स्तर तक सहायता प्रदान करता है। अत: ऐसे कार्य1. क्रम के लिए छात्रों को उचित स्टाफ की आवश्यकता पड़ती हैं। प्रत्येक अध्यापक

को इसकी जानकारी आवश्यक है। कोई भी अध्यापक सीखने, परामर्श दाता के साथ परामर्श, प्रधानाचार्य के साथ संमजन के सम्बन्धों को पृथक नहीं कर सकता है। प्रत्येक इसमें निहित है।

प्रत्येक विद्यालय में मार्ग-प्रदर्शन का कार्य तीन व्यक्तियों की सक्रियता पर निर्भर करता है।

1- **प्रधानाचार्य-** प्रधानाचार्य का स्थान विद्यालय में केन्द्रीभूत होता है। वह विद्यालय को नेतृत्व प्रदान करता है। सच तो यह है कि यदि प्रधानाचार्य ही मार्ग-प्रदर्शन कार्य1.क्रम में रूचि नहीं लेगा तो विद्यालय का कोई भी अध्यापक किसी भी काय्र1.क्रम को सफलता प्रदान नहीं कर सकता यदि विद्यालय का परामर्श दाता, किसी बालक को बताता है कि वह अमुक पाठ्1. क्रम ले, तो ऐसी स्थिति में प्रधानाचाय्र ही मुख्य परामर्शदाता के रूप में अभिभावक को वास्तविक स्थिति से परिचय कराता है। प्रधानाचार्य की भूमिका मार्ग-प्रदार्शन कार्य1.क्रम में महत्वपूर्ण होती है। (1) वह मार्ग-प्रदर्शन कार्य1.क्रम को नेतृत्व प्रदान करता है। (2) वह मार्ग प्रदर्शन कार्य1.क्रम का सांगोपांगपरिचय प्राप्त करता है। वह अधुनिकतम साहित्य तथा सूचनाओं के सम्पर्क में रहता है। (3) वह अभिभावकों को मार्ग प्रदर्शन के सिद्धान्त तथा काम से परिचित कराता है। (4) वह अध्यापक, छात्र तथा अभिभावकों को आवश्यक एवं सहायक सामग्री प्रदान करता है। (5) वह मार्ग प्रदर्शन सम्बन्धी दायित्वों की रूच्यानुसार ही अध्यापकों को सौपता हैं। (6) वह अध्यापकों को मार्ग-प्रदर्शन सम्बन्धी सेमीनार आदि में भाग लेने के लिए प्रोत्साहन देता है। (7) वह मार्ग-प्रदर्शन कार्य1.क्रम हेतु समितियों का गठन करता है।

2- **कक्षा अध्यापक** - मार्ग-प्रदर्शन कार्य1. क्रम में कक्षा अध्यापक की भूमिका प्रमुख एवं महत्वपूर्ण है। कक्षा अध्यापक छात्रों के सीधे सम्पर्क में रहता है। एकिथ के अनुसार- **"मार्ग-प्रदर्शन कार्य1.क्रम में अध्यापक का सहयोग अपरिहार्य है। इसके सिद्धान्त चाहे कितने ही आकर्शक हों, इसकी भावना चाहे जितनी प्रायोगिक हो, अध्यापक ही इनको अन्तिम परीक्षण प्रदान करता है। प्रधानाचार्य तथा निरीक्षक उसकी सहायता के लिए रहते हैं परन्तु वह व्यक्ति के रूप में ही उसे शिक्षण प्रदान करता है।"**

अध्यापक मार्गप्रदर्शन कार्य1. क्रम की सफलता हेतु यह भूमिका प्रस्तुत करता है (1) वह कक्षा की रूचि, योग्यता, क्षमता तथा समस्याओं को पहचानता है (2) वह अनेक विषय अध्यापकों के साथ मार्गप्रदर्शन हेतु सम्पर्क स्थापित करता है (3) अभिभावकों के सम्पर्क में रहते हैं (4) छात्रों का विश्वास प्राप्त करके उनके विकास का प्रयत्न करता हैं (5) आवश्यकता पड़ने पर वह विशेशज्ञों की राय भी लेता है।

**3- अभिभावक :** मार्गप्रदर्शन काय्र1.क्रम की जानकारी अभिभावकों को होना भी आवश्यक हैं उन्हीं के बालकों के कल्याण के लिए ही तो यह कार्य1. क्रम हैं। वे मार्ग-प्रदर्शन अधिकारियों के परामर्श को ग्रहण करके अपने बालकों के भविष्य का निर्धारण करते हैं। इस कार्य के लिए अध्यापक अभिभावक संघों की स्थापना करके पर्याप्त सहायकता ली जा सकती है।

**4- विशेशत: :** मार्ग प्रदर्शन कार्य1. क्रम वस्तुत: एक तकनीकी कार्य1. क्रम है। इसमें परामर्शदाता मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सक तथा चिकित्सा विशेशज्ञों के रूप में सहायता देते हैं। **(1) परामर्शदाता,** मार्ग प्रदर्शन कार्य1.क्रम को नेतृत्व प्रदान कारता है। साथ ही वह प्रशासक का कार्य

भी करता है। इस कार्य1.क्रम की सफलता का दयित्व उसी पर आता है। वह विभिन्न पाठ्य1.क्रमों, व्यवसायों के चयन आदि के विषय में परामर्श देता है। **(2) मनोवैज्ञानिक,** समस्या बालकों की पहचान करता हैं समस्या बालकों का व्यवहार सम्पूर्ण कक्षा को प्रभावित करता है। ऐसे बालकों को मनोवैज्ञानिक को सौंपा जाता है। **(3) चिकित्सक,** विद्यालय की निष्पत्ति तथा छात्र के स्वास्थ्य के मध्य सकारात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है। छात्रों के स्वस्थ्य का परीक्षण तथा उनकी समस्याओं को स्वास्थ्य विशेशज्ञ ही अच्छी तरह हल कर सकता है। वह छात्रों की सामयिक स्वास्थ्य परीक्षा द्वारा रोग निदान करता है, अध्यापक तथा अभिभावकों की समिति सुविधाओं का ध्यान रखता है, स्कूल स्वास्थ्य को उन्नत करने के लिए कार्य1.क्रम चलाता है, इन सबसे ऊपर वह तत्सम्बन्धी सूचनायें प्रदान करता है।

### 13.8.6 मार्ग-प्रदर्शन सेवा का संगठन

आजकल विद्यालयों में मार्ग-प्रदर्शन सेवाओं की बहुत आवश्यकता अनुभव की जा रही है। ये आवश्यकतायें इस बात की प्रतीक है कि विद्यालयों में इन सेवाओं का संगठन होना चाहिये। विद्यालयों में यह सेवा (नीचे दिये चित्र) इस प्रकार संगठित की जा सकती है।

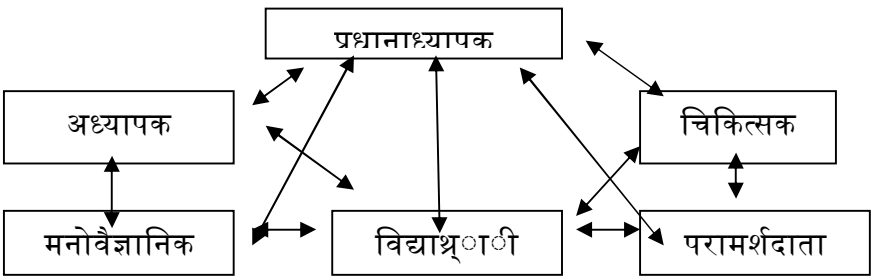


इसके साथ-साथ इन बातों पर भी अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए:

**(1) निर्देशन** - निर्देशन सेवाओं का संचालन करने के लिए एक प्रशिक्षित निर्देशक की आवश्यकता है। उसका काम मनोवैज्ञानिक परीक्षायें लेना, सामग्री तथा तथ्यों का संकलन, व्यवसाय चयन तथा दूसरी संस्थओं का सहयोग करना है। यह निर्देशक ही वस्तुत: इन सेवाओं के संगठन का केन्द्र बिन्दु है।

**(2) तथ्य एकत्रित करना** - इसके अन्तर्गत हर स्रोत से सामग्री एकत्र की जाती है। यह भी ध्यान रखा जाता है कि बालक की भावी योजना क्या है ? यह सामग्री समुदाय, परिवार, विद्यालय के वैयक्तिक रिकार्ड, तथा परीक्षा परिणाम छात्रों से व्यक्तिगत रूप में प्राप्त की जाती है।

**(3) मार्ग-प्रदर्शन कैसे दिया जाए** - इसके लिये दो प्रकार की विधियां अपनाई जाती है-

1- **सामूहिक विकास** - सामूहिक रूप से विचार, बैठकें, विज्ञापन, सामूहिक मिलन आदि विधियों से सामूहिक मार्ग-प्रदर्शन दिया जाता है।

2- **व्यक्तिगत मार्ग-प्रदर्शन** - साक्षत्कार के द्वारा सूचनायें प्राप्त करके आवश्यक मार्ग-प्रदर्शन दिया जा सकता है।

## 13.9 वैयक्तिक भेद और परामर्श

मार्ग-प्रदर्शन कार्य1.क्रम में परामर्श सेवा का महत्व सर्वाधिक है। वेबस्टर के अनुसार- **'परामर्श से अभिप्राय सलाह, विचार विनिमय तथा इच्छापूर्वक साहचर्य से है।'** स्ट्रेग के अनुसार- **परामर्शदाता तथा परामर्शग्राहक के मध्य आपने-सामने के सम्बन्ध है।'** इसी प्रकार हम्फ्री तथा ट्रैक्सलर के अनुसार- **'परामर्श, व्यक्ति की समस्याओं के विद्यालय अथवा संस्था से स्त्रोतों से समाधान की प्रक्रिया है।**

इन सभी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मार्ग-प्रदर्शन की एक आवश्यक विधा परामर्श है।

**परामर्श दो प्रकार के होते हैं-**

1- **प्रत्यक्ष परामर्श-** प्रत्यक्ष परामर्श में बालक से सीधे ही किसी कार्य को करने को कहा जाता है। इसमें बालक को निर्देश दिये जाते हैं।

2- **अप्रत्यक्ष परामर्श-** इस प्रकार के परामर्श में बालक को कोई परामर्श सीधे नहीं दिया जाता है। बालक को किस क्रिया में लगाना चाहिए, इस बात का निर्णय होने के पश्चात् बालक को इच्छित कार्य में लगा दिया जाता है।

जिन छात्रों को परामर्श दिया जाय, उनका अनुवृत्त तथा मूल्यांकन करना आवश्यक है, क्योंकि इससे यह तो पता लगा सकता है कि परामर्श का लाभ किसने कितना उठाया है। परामर्श का वास्तविक मूल्यांकन तभी हो सकता है, जब यह देखा जाय कि दिया गया परामर्श किस सीमा तक ग्रहण किया जाता है।

## 13.10 सार-संक्षेप

बालक शिक्षा का आधार बिन्दु है। शिक्षा कि क्षेत्र में यह आवश्यक है कि प्रत्येक बालक दूसरे बालक से भिन्न है, इस तथ्य को जान लिया जाऐ। इसी वैयक्तिक भिन्नता को आधार मापनते हुऐ अध्यापक को कक्षा में अधिगम योजना तैयार करनी चाहिए। इसके द्वारा विभिन्न कक्षा-कक्ष कार्यों का नियोजन करना चाहिए। वैयक्तिक भिन्नता को समझने के लिए निर्देशन व परामर्श दोनों की भूमिका है। बालक की बुद्धि, अभिरूचि, रूचि आदि में विभिन्नता के द्वारा निर्देशन करते हुए परामर्श देना चाहिए।

# इकाई -14

# मनोचिकित्सा और संशोधन व्यवहार

**इकाई की रूपरेखा**

14.0 **उद्देश्य**

14.1 **भारत में परामर्शन की आवश्यकताओं और उपलब्ध सेवाओं का स्वरूप**

14.2 भारतीय संदर्भ में परामर्श्न के आधुनिक उपागम

14.3 परामर्शन एवं मनोपचार की भारतीय प्रविधियाँ

14.4 परामर्शन प्रक्रिया में हस्तक्षेप नीतियाँ

145.5 व्यवहार

14.6 अभ्याय प्रश्न

## 14.0 उद्देश्य

**इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप**

- **विद्यार्थी भारत में परामर्श की आवश्यकताओं और उपलब्ध सेवाओं के स्वरूप को जान सकेंगे।**
- **विद्यार्थी परामर्श की भारतीय प्रविधियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।**
- **विद्यार्थी परामर्श प्रक्रिया में हस्तक्षेप नीतियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंग।**

## 14.1 भारत में परामर्शन की आवश्यकताओं और उपलब्ध सेवाओं का स्वरूप

परामर्श सम्बन्धी आवश्यकताओं को (i) शैक्षिक, व्यावसायिक, उपव्यावसांयिक निर्देशन से जुड़ी आवश्यकताओं; (ii) विशिष्ट मनोविकारों, तथा (iii) अन्य विशिष्ट आवश्यकताओं के रूप में देखा जा सकता है। अनेक दशको से निर्देशन एवं परामर्शन का संप्रत्यय और प्रविधियों के अस्तित्वच में होने के बाद भी भारतीय विद्यालयों में निर्देशन एवं परामर्श सेवाएँ अंगीकृत नहीं हो पायी हैं। इस उपेक्षा का मूल्य शिक्षा की गुणवत्ता के अतिरिक्त बच्चों, किशोरों और नवयुवकों में आचरण, व्यवहार और मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के रूप में देखा जा सकता है। विद्यालयों, शिक्षा क्षेत्र के प्रबन्धकों, प्रशासकों का ध्यान संख्यात्मक पक्ष पर केन्द्रित होने के कारण, संसाधनों के अभाव एवं आर्थिक दृष्टि से लाभ-हानि या लागत-लाभ के रूप में मूल्यांकन किये जाने के कारण परामर्श की इस रूप में उपयोगिता महानगरीय, धनिक वर्ग के लिए संचालित विद्यालयों तक ही सीमित रह जाती है।

भारतीय जनसमूह में मनस्पात, मनोविक्षप्तिता और मनोदैहिक समस्याओं के घटनाक्रम के बारे में अनेक सर्वेक्षण अध्ययनों द्वारा जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं। मनोदैहिक समस्याओं में वृद्धि के संकेत प्राप्त हो रहे हैं।

कुछ परामर्शदाताओं का मानना है कि प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और चिकित्सालयों के बहिरंग विभाग में उपचार के लिए आने वाले या दवा की दुकानों पर क्रय करने वाले पीड़ित व्यक्तियों में से बहुसंख्यक (आँकड़े 16 से 35 प्रतिशत तक फैले हुए हैं) लोगों को किसी प्रकार के दवा की आवश्यकता नहीं होती है। भारत जैसे विकासशील देशों में मनोवैज्ञानिक समस्याओं के दैहिक पीड़ा के रूप में अभिव्यक्ति एक सामान्य विशेषता है (A.K. Agrawal, 1991)। प्रमुख समस्याएँ दर्द (पेट सीना, सिर), चकराना, कमजोरी, थकान, अनिद्रा, भूख की कमी और सेक्स सम्बन्धी कमजोरी आदि के रूप में पायी जाती है। गृहणियों में ऐसी समस्याएँ अधिक पायी जाती है। ऐसे लोगों की पीड़ा को प्रकार्यात्मक पीड़ा कहा जाता है।

हिस्टीरिया जो कि पश्चिम में अब कदाचित ही देखा जाता है, की घटना अभी भी कुल रोगियों में 10 से 15 प्रतिशत तक पायी जाती है। (N.N. Wig et. al. 1982)। मनस्ताप के अन्य रूपों में चिन्ता मनस्ताप, मनोग्रस्तता-बाध्यता प्रमुख हैं।

कुछ संस्कृति-विशिष्ट संलक्षणों (Culture bound syndromes) का वर्णन देखा गया है जिनमें धातु, कोरो और झिनझिनी प्रमुख हैं। सिंह (G. Sing] 1985) ने पुरूष नपुंसकता की शिकायत वाले व्यक्तियों में से 62 प्रतिशत में 'धातु' की हानि की शिकायत पायी। यह बताने पर भी कि वीर्य हानि कोई समस्या नहीं है, व्यक्ति को प्राय: लाभ नहीं हो पाता है। नन्दी एवं अन्य (1992) ने 'झिनझिनी' की घटना का वर्णन किया है जिसमें व्यक्ति में अचानक गूँगापन, पक्षाघात, असहायता, भय से बेहोश होने जैसी समस्याएँ प्रकट होती हैं। इस झिनझिनी को लोग प्राय: बुरी आत्माओं का प्रभाव मानते हुए पाये गये हैं। चौधरी एवं अन्य (1988, 1991, 1992) ने 'कोरो' संलक्षण का अध्ययन किया जिसमें शिश्न स्तम्भन (Penile erection), शिश्न सिकडने महिलाओं में लेबिया (labia) या स्तन सिकुड़ने और उसके कारण अंतत: मृत्यु हो जाने की आशंका पायी जाती है। इसकी घटना शिकायत आसाम और बंगाल के क्षेत्रों में देखी गयी है।

मेहता एवं अन्य (Mehta, Joseph and Vergherse, 1989) ने तमिलनाडु में प्रति 1000 व्यक्तियों में 14.1 घटना मनोविक्षिप्तता की पायी जबकि पद्मावती एवं अन्य (1987) के अध्ययन में प्रति 1000 की जनसंख्या में 2.49 मनोविदालता (schizophrenia) तथा मनोविक्षिप्तता 5.6 प्रति 1000 का दर पाया गया। पंजाब में (Kappor & Singh 1983) प्रति 1000 भावात्मक विकार 49.1 में पाया गया।

महिलाओं, गरीब लोगों, ग्रामीण और गन्दी बस्तियों में रहने वालों में इस समस्या की आवृत्ति अधिक पायी गयी है।

युवकों में मनोविकार अधिक पाया जाता है किन्तु बच्चों में संवेदनशीलता, ध्यान आकृष्ट करने एवं सक्रियता की समस्या (ADHD) और चारित्रिक समस्याएँ देखी जाती है। महानगरों में जहाँ बच्चों पर अच्छे परिणाम हेतु दबाब डाला जाता है और माता-पिता समुचित समय देने की स्थिति में नहीं होते हैं वहाँ बच्चों में ADHD के अतिरिक्त तनाव की दैहिक पीड़ा के रूप में अभिव्यक्ति अधिक पायी जाती है। वृऋ जनों में (fVenkoba Rao and Madhavan, 1983) भावात्मक समस्याएँ पायी गयी हैं। वृद्ध

लोगों का जनसंख्या में अनुपात बढ़ रहा है तथा छोटे परिवारों की कल्पना में वृद्धि के साथ-साथ वृद्ध जनों की उपेक्षा की घटनाएँ बढ़ रही हैं।

उपरोक्त विशिष्ट समस्याओं के अतिरिक्त औषधि व्यसन, मद्यपान, प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ (HIV/AIDS) किशोरों एवं युवकों के मध्य परामर्शन के नये आयाम के रूप में प्रकट हो रही है। पारम्परिक होने के बावजूद युवकों में आधुनिकता, यौनिक स्वच्छन्दता एवं भौतिकवादी प्रतिस्पर्धा में वृद्धि देखी जा सकती है जिसके फलस्वरूप अनेक प्रकार की चिंताएँ, भय, तनाव, पारिवारिक जीवन में कलह, विवाह-विच्छेदन (divorce) जैसी समस्याओं के घटनाक्रम में वृद्धि का अनुभव किया जा रहा है।

भारतीय समाज में पुत्र वरीयता और पुत्री उपेक्षा जैसी समस्या सर्वत्र देखी जा सकती है। इसी विभेद के कारण मादा भ्रूण हत्या, कन्या हत्या और दहेज हत्या की शिकायत सभी जगहों पर सुनी जाती है। 2001 की जनगणना मे 0-5 आयुवर्ग में बालिकाओं की संख्या में (विशेषकर उ0प्र0, बिहार, पंजाब, दिल्ली राज्यों में) बहुत कमी आ गयी है। यह समस्या आने वाले 10-15 वर्षों में अनेक नयी व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं, नारी असुरक्षा, युवकों का विवाह न हो पाने, अनुचित यौन सम्बन्धों में वृद्धि के रूप में प्रकट हो सकती हैं। बालिकाओं के लिय घर भी पूर्णत: सुरक्षित नही रह गया है, ऐसी शिकायतें समाचार पत्रो में देखी जा रही हैं।

यद्यपि मनोविकृतियाँ एवं समाज मनोवैज्ञानिक व्यवहारात्मक समस्याएँ विविध रूपों में विभिन्न आयु वर्गो एवं सामाजिक/सामुदायिक वर्गों में व्यापक रूप में प्रकट होती हुई पायी गयी हैं किन्तु इनके समाधान के लिए न तो लोगों में आवश्यक जागरूकता देखी जाती है औश्र न ही वांछित परामर्शन सेवाओं की उपलब्धता ही पायी जाती है। मालविका कपूर (2002) ने सूचनाओं के अभाव में या लांछन के आधार पर मानसिक समस्याओं के प्रति स्थापित अभिवृत्तियों म परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए सामुदायिक स्तर पर यथार्थवादी, मानवीय एवं सहिष्णुतापूर्ण ऐसी अभिवृत्तियों को विकसित किये जाने की आवश्यकता पर बल दिया है जिसमें समस्याग्रस्त व्यक्तियो/मनोरोगियों तथा उनके परिवार द्वारा अनुभव किये जा रहे समस्या की तीव्रता का ध्यान रखा गया हो। गुप्ता एंव अन्य (Gupta] Gautam & Kamal, 1992) के अध्ययन द्वारा ज्ञात हुआ कि सामान्य चिकित्सों की दृष्टि मे मानसिक समस्याओं को आनुवंशिक तथा तनाव की दशा में सामान्य व्यक्तियों में भी प्रकट हो सकने वाला बताया गया किन्तु समाज में सकारात्मक अभिवृत्ति का अभाव पाया गया है।

मानसिक समस्याओं के बारे में उपयुक्त दृष्टिकोण आवश्यक है किन्तु अपने आप में पर्याप्त नहीं हो सकता है।मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की आवश्यकता किन्तु उपलब्धता का अभाव परामर्शदाताओं एवं मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनुभव किया जा रहा है। मेहता, जोसेफ एवं वर्जीस (1984) ने प्राथमक स्वास्थ्य एवं काग्रकर्त्ताओं को (i) मनोरोगों के परिहार के लिए शिक्षित करने एवं मानसिक स्वास्थ्य के आधारों को मजबूत करनें: (ii) मनोवैज्ञाकि समस्याओं की पहचान करनें: (iii) समर्पण (referral) के मानदण्डों को समझने की क्षमता: और (iv) एक संसाधन (resource) के रूप में कार्य कर सकने योग्य बनाने के लिए प्रशिक्षित किये जाने की आवश्यकता को रेखांकित किया है। नारायण रेड्डी एवं अन्य (1986) ने

मानसिक स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने के लिए मुख्य चिकित्सालयों के चतुर्दिक क्लीनिक स्थापित करने का प्रस्ताव किया। निमहान्स (Nimhans) बंगलौर के पास चार तालुकों में क्लीनिक स्थापित भी किये गये। कुल मिलाकर भारत में जनसंख्या तथा उसमें मनोरोगियों की बड़ी संख्या के अनुपात में मनोचिकित्सकों का अभाव है। इसलिए नारायण रेड्डी, चन्नावासवान्ना और श्रीनिवासमूर्ति ने स्वास्थ्य-व्यवस्था से जुड़े लोगों को प्रशिक्षित करेन की आवश्यकता पर बल दिया है। मालविका कपूर (1992) ने आम लोगों एवं अध्यापकों को इस दृष्टि से प्रशिक्षित करने पर बल दिया है। वस्तुत: भारत में मनोचिकित्सकीय सेवाओं का अभाव है। मनोविज्ञान के अध्यापकों एवं विद्यार्थियों का विशेष उत्तरदायित्व है कि वे मानसिक विकृतियों से बचाव और मानसिक स्वास्थ्य के विकास के लिए अपनी समझ का उपयोग करे। इतने बड़े, अल्प-शिक्षित, अल्प-विकसित राष्ट्र में हमें बहुत कुछ अपने स्तर से करने की आवश्यकता है। राय एवं अन्य (Rai, A.N.; Singh, Y.K., 2003) ने विद्यालया के स्तर पर अध्यापकों को प्रेरित करके, अध्यापकों में प्राथमिक विद्यालयों के बच्चों को सुनने की प्रवृत्ति अपनाने के लिए विगत पाँच-छ: वर्षों से कार्य किया है। यह अनुभव किया गया हे कि आज के एकाकी परिवारों में, ऐसे लोगों का अभाव है जिनके साथ बच्चे बातचीत कर सके, उन्हें अपना समय दे सके। ऐसे बच्चों को विद्यालय प्रांगण में अध्यापक या अन्य श्रोताओं की आवश्यकता होती है। राय (Rai, A.N. 2002) ने यह विचार व्यक्त किया है कि यदि विद्यालयों तथा सेवानिवृत्त व्यक्तियों के मध्य सहयोग स्थापित किया जाय तो बच्चों एवं वृद्धों के अतिरिक्त समाज की समस्याओं के समाधान में भी सहायता की प्राप्ति हो सकती है।

## 14.2 भारतीय संदर्भ में परामर्श्र के आधुनिक उपागम

जैसा कि पिछले अध्याय में वर्णन किया गया है मनोवश्लेषणात्मक उपागम के विकास के बाद पिछले लगभग 100 वर्षों में सैकड़ों उपागमों एवं प्रक्रियाओं का विकास हुआ है। व्यक्ति की समस्याओं और उसके समाधान में संज्ञानात्मक संरचनाओं एवं शैलियों एवं शैलियों के महत्व को अनेक उपागमों में स्वीकार किया जाता है तथा व्यक्ति की संज्ञानात्मक शैलियों, रूढ़ियों, अपेक्षाओं, जीवन शैली, मूल्यों आदि का व्यक्ति की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है। इसलिए अनेक परामर्शदाताओं को पश्चिमी संदर्भों में विकसित उपागमों और उनकी प्रविधियों की भारतीय संदर्भ में वैधता एवं उपयोगिता पर संदेह है किन्तु प्रभु (1988) और शामसुन्दर (ैीेंउेंनदकंतए 1988) का कथन है कि वे भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में भी उपयोगी हैं। हाँच (Hoch, 1990) मे भारतीय क्लायंट के लिए तथा मनोचिकित्सकीय प्रशिक्षण के लिए पाश्चात्य उपागमों की उपयोगिता का पक्ष लेते हुए बताया है कि संक्रमणशील समाज के आधुनिक वर्ग के लिए, जहाँ मिश्रित मूल्य एवं व्यवहार का प्रचलन है, विशेष रूप में उपयोगी है। यद्यपि अग्रवाल (A.K. Agrawal, 1989) यह विचार प्रकट करते है कि क्लायंट और परामर्शदाता क पृष्ठभूमि में अन्तर के कारण लाभ प्राप्ति में कठिनाई आती है किन्तु हॉच (1990) का कथन है कि प्रकट अन्तराल मात्र एक भ्रम है। हॉच ने परामर्शदाताओं और क्लायंट के मध्य अनेक समानताओं के आधार पर यह विचार प्रकट किया है कि वस्तुत: दोनों के मध्य सांस्कृतिक सहभागिता के अनेक आधार होते हैं।

मालविका कपूर (Malvika Kappor, 2001) का विचार है कि मनोचिकित्सकीय शोध को मनोचिकित्सकीय प्रक्रिया के सभी पक्षों- क्लांयट, परामर्शदाता, प्रविधियों और परिस्थितियों, पर ध्यान देना चाहिए। किसी संदर्भ विशेष के लिए अधिक उपयुक्त प्रविधियों का अन्वेषण किया जाना महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक है किन्तु हमें यह सतर्कता भी बरतनी होगी कि देशज सम्प्रत्ययों एवं प्रविधियों के नाम पर अनुंचित, अनुपयुक्त, अवैज्ञानिक प्रविधियाँ स्थापित न हो जाये तथा कोई उपयुक्त प्रविधि मात्र इस कारण से नकार न दी जाय कि एसका विकास दूसरे सांस्कृतिक संदर्भों मे हुआ है। अधिक उपयुक्त यह होगा कि शोध कार्य में तीव्रता लाकर वैज्ञानिक रूप में वैध सिद्ध हुई विधियों में आवश्यकतानुसार अनुकूल एवं परिमार्जन के तत्त्व सम्मिलित किये जाएँ।

## 14.3 परामर्शन एवं मनोपचार की भारतीय प्रविधियाँ

मनोविकारों, व्यवहारगत समस्याओं एवं जीवन में प्राय: घटित होने वाली सामान्य समस्याओं के समाधान के लिए; तथा मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, नैतिक स्वास्थ्य के विकास हेतु अर्थात व्यक्ति के समग्र/सर्वांगीण स्वास्थ्य के विकास के लिए समूची दुनिया में आज वैकल्पिक पद्धतियों की खोज की जा रही है। मनोपचार की प्रचलित पद्धतियों की अनेक सीमाएँ हैं। भारत में अनेक प्रविधियाँ प्रचलित रही हैं जिनमें से अनेक रूढ़िवादी, अतार्कित, असंगत, अनुपयुक्त एवं लाभ की दृष्टि से अत्यन्त संदिग्ध प्रतीत होती है किन्तु कुछ प्रणालियों के महत्व एवं उपयोगिता के वैज्ञानिक साक्ष्य प्राप्त होने के पश्चात उनकी स्वीकृति सर्वत्र देखी जा सकती है। भारतीय संदर्भ में विकसित उक्त वैकल्पिक प्रणालियाँ आज अत्यन्त प्रचलित प्रविधियों की श्रेणी में सम्मिलित हो गयी हैं। स्वास्थ्य के प्रति भारतीय दृष्टिकोणों का उद्देश्य सदैव ही समग्रतावादी या सर्वांगवादी (jolistic) रहा है। भारतीय उपागमो का बल रोग के उपचार के साथ-साथ व्यक्ति के सम्पूर्ण स्वास्थ्य के विकास पर होता है। भारतीय पद्धतियाँ मुख्यत: प्राचीन हैं किन्तु इसमें कुछ नवीन आयाम जोड़ने के प्रयास भी समय-समय पर होते रहे हैं। मंत्र-तंत्र, वैदिक, बौद्ध और जैन उपागम भारतीय मनोविज्ञान एवं उपचार/मनोपचार की चार प्रमुख परम्पराएँ हैं। उक्त सभी उपागम 2500 वर्षों से भी अधिक प्राचीन हैं। आधुनिक युग में चैतन्य महाप्रभु, राकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द और महर्षि महेशयोगी के द्वारा आध्यात्मिक/आधिभौतिक पराध्यान (Transcedental meditation-TM) की प्रणाली विकसित की गयी है। यंत्र-तंत्र प्रणाली आज भी प्रचलन में है किन्तु इसके वैज्ञानिक प्रमाण के अभाव में यहाँ वर्णन योग्य नहीं है। वैदिक उपागम के अन्तर्गत योग की विविध प्रणालियाँ सम्मिलित है। बौद्ध उपागम की मुख्य पद्धति विपश्यना के नाम से जानी जाती है। यहाँ पर मुख्यत: योग पद्धतियों, आधिभौतिक परिध्यन की पद्धतियों का वर्णन प्रस्तुत है क्योंकि उनकी लोकप्रियता में वृद्धि आयी है। विपश्यना पद्धति का भी प्रभाव क्षेत्र विस्तृत हो रहा है अत: इस पद्धति का परिचय वांछित हो जाता है। समस्त भारतीय मनोपचार पद्धतियों का परिचय प्राप्त करने के लिए सिंह (H.G. Singh, Psychotherapy in mdia, from Vedic to Modern Times, 1977, National Psychological Corporation) द्वारा लिखी गयी पुस्तक अधिक जानकारी के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। सिंह ने 16 श्रेणियों के अन्तर्गत आने वाली 36 प्रणालियों का वर्णन किया है।

### 14.3.1 स्वास्थ्य एवं मनोपचार की योग पद्धति

योग पद्धति के तत्वों का समुचित महत्त्व मूल्यांकन करने के लिए वैदिक दर्शन में निहित इसके आधारों का परिचय प्राप्त किया जाना उपयोगी होगा। वैदिक साहित्य के चार मूलग्रंथ है- ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन वेदों का सम्बन्ध क्रमश: ज्ञान, कर्त्तव्य, आदर्श की पूजा और आत्मज्ञान से है। अथर्ववेद में आत्मज्ञान एवं सांसारिक उपलब्धियों की प्रविधियों का वर्णन किया गया है। अथर्ववेद का ही एक उपवेद आयुर्वेद है जो व्याधियों का वर्गीकरण एवं उपचार साधन का वर्णन प्रस्तुत करता है। वेदों के अतिरिक्त उपनिषद, ब्राम्हण, आरण्यक प्रमुख वैदिक साहित्य है। इनके द्वारा धर्मदर्शन, जीवन दर्शन, स्वस्थ जीवन की पद्धति, व्याधियों के परिहार/निरोधन एवं उपचार की प्रविधियों का पचिय प्राप्त होता है। स्वास्थ्य, व्याधि निरोधन एवं उपचार में आत्मज्ञान का महत्त्व है।

आत्मज्ञान के दो प्रकार होते हैं- निपुर्ण एवं सगुण वेंदान्तियों के अनुसार निर्गुण एवं सगुण दोनों ही रूप में होता है। तार्किक आत्मा को सगुण मानते हैं तथा सांख्य दर्शन के अनुयायी इसे निर्गुण मानते हैं। परमर्षि कपिल ने निर्गुण आत्मज्ञान को प्रकाशित किया। वेद की अपेक्षा में यह ज्ञान उपनिषद् में अधिक स्पष्ट रूप में देखा जाता है। महाभारत के टीकाकारों के अनुसार ''जो महान ज्ञान महान व्यक्तियों में, वेदों के भीतर तथा योगशास्त्रों में देखा जाता है और पुराण में भी विविध रूपों में पाया जाता है वह सांख्य से आया है'' (स्वामी हरिहरानन्द आरण्य, 1980)। स्वामी हरिहरानन्द लिखते हैं कि पहले कर्मकाण्ड का उद्भव हुआ, बाद में सगुण आत्मज्ञान और उसके सांख्यीय निर्गुण पुरूष ज्ञान प्रकट हुआ। महर्षि प◌ंचशिख ने कपिल के उपदेशों का अवलम्बन करके लिस सांख्यसूत्र का प्रणयन किया वह अब अंशमात्र ही उपलब्ध है। कपिल ने निर्गुण पुरूष विद्या तथा कैवल्य प्राचक योग का प्रवर्तन किया है।

भारत में धर्म के दो भेद हैं, प्रवृत्ति धर्म और निवृत्ति धर्म। जिस धर्म से इहलोक और परलोक में सर्वाधिक सुख लाभ होता है उसे प्रवृत्ति धर्म कहते हैं। निवृत्ति धर्म द्वारा निर्वाण और शान्ति लाभ होता है। निवृत्ति धर्म के दो सम्प्रदाय हैं; आर्ष और अनार्ष। आर्ष सम्प्रदाय में सांख्य और वेदान्त तथा अनार्य सम्प्रदाय में बौद्ध और जैन आदि की गणना की जाती है। प्रवृत्ति धर्म में (i) ईश्वर या महापुरूष की अर्चना, तथा (ii) दान, परोपकार, मैत्री आदि सम्मिलित है। निवृत्ति धर्म का मत है कि सम्यक दर्शन द्वारा जन्म परम्परा या संसार की निवृत्ति होती है; और, सम्यक योग् तथा सम्यक वैराग्य, सम्यक दर्शन या प्रज्ञा के कारण हैं। सांख्य का साधन रूप योग है। काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास का दमन करने ध्यान-मग्न होना सांख्य योग का साधन है।

सांख्य दर्शन के अनुसार व्यक्ति एक आत्म मनोदैहिक इकाई है जिसकें तीन तल-दैहिक, मानसिक, आरिम्भक। इस आत्म मनोदैहिक इाकई के दैहिक तल पर तीन गुण-वायु, पित्त, कफ होते हैं; मानसिक तल पर तीन गुण-सत्व रज, और तन; एवं आत्मिक तल निर्गुण होता है। दैहिक और मानसिक तल पर व्याप्त गुणों के संतुलन से स्वास्थ्य ओर असंतुलन से रोग की उत्पत्ति होती है।

सांख्य दर्शन मनुष्य के दो पक्ष- पुरूष (आत्मा) और प्रकृति (चित्त एवं देह) होता है। चित्त अर्थात मानस प्रकृति का सूक्ष्म रूप है और देह इस प्रकति का स्थूल रूप है।

चित्त अर्थात मानस का तात्पर्य बुद्धि, अहंकार और मन के समुच्चय से है। चित्त के त्रिगुणात्मक स्वरूप के कारण चित्त वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं अर्थात व्यक्ति को अहंकार होता है, उसे मैं और मेरा का बोध होता है तथा मन की चंचलता के कारण व्यक्ति विभिन्न प्रकार से उलझनों में लिप्त होता है। आत्मा (पुरूष) निर्गुण, निर्विकार द्रष्टा है किन्तु चित्त के साथ सम्बन्ध के कारण उसकी दृष्टि तद्रूप हो जाती हैं। पुरूष (आत्मा) और प्रकृति (चित्त एवं देह) के मध्य इस तादात्म्य के कारण दु:ख दूर करने के लिए पुरूष और प्रकृति के मध्य के तादात्म्य को दूर किया जाना आवश्यक है। जब पुरूष त्रिगुणो के बन्धनों से मुक्त होकर कैवल्य अवस्था को प्राप्त करता है, त्रिगुणातीत हो जाता है तब मोक्ष या निर्वाण की प्राप्ति होती है। चित्तवृत्तियों के निरोधन के लिए महर्षि पातंजलि ने योग प्रणाली का विकास किया। पातंजलि द्वारा रचित योग सूत्रों के आठ अंग हैं इसीलिए इसे अष्टांग योग कहते हैं। संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत है।

### 14.3.2 आधिभौतिक परिध्यान कार्यक्रम

अधिभौतिक, या अनुभवातीत प्रणाली के विकास में चैतन्य-महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द एवं महर्षि महेश योगी का योगदान स्वीकार किया जाता है। इस प्रविधि का प्रभाव क्षेत्र आज समूचे विश्व में महर्षि महेश योगी द्वारा स्थापित संस्थाओं के माध्यम से विस्तृत हुआ है।

महर्षि के अनुसार आधिभौतिक परिध्यान ( **T.M.**) व्यक्ति के बोध को विस्तृत करता है, सृजनात्मक बुद्धि को विकसित करता है, संज्ञान की स्पष्टता में वृद्धि करता है तथा गहरी विश्रांति प्रदान करता है। यह पद्धति मन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को ही विकसित करके सीमाओं से परे जाकर असीमित बोध अर्जित करने में उसकी सहायता करता है। टी.एम. प्रविधि को किसी शिक्षण के सहयोग द्वारा सरलतापूर्वक सीखा जा सकता है इसीलिए उन्नीस सौ साठ के दशक में इस प्रविधि के प्रति पश्चिमी देशों मे रहने वाले आधुनिक जीवन शैली के लोगों का आकर्षण बढ़ा। यह प्रणाली व्यक्ति को शारीरिक विश्रांति की अवस्था में रहते हुए, विचारों के ठहराव की प्रक्रिया के माध्यम से चेतना की गहन अनुभूति प्राप्त करने में सहायता देती है। चेतना की इस अवस्था में किसी विशिष्ट तत्त्व का बोध नहीं होता है। महर्षि के अनुयायी टी.एम. को सृजनात्मक बुद्धि का विज्ञान बताते है।

टी.एम. (**T.M.**) चिन्तन प्रक्रिया/ध्यान प्रक्रिया (mditation) से भी आगे या उत्कर्ष की ओर जाने की प्रविधि है। टी.एम. सीखने के लिए महर्षि ने सात सोपानों वाले अधिगम प्रणाली को विकसित किया है। पहले दो सोपानों में इस प्रविधि के लाभ बताये जाते हैं, तत्पश्चात इस प्रविधि की क्रिया पद्धति बतायी जाती है। तृतीय चरण में प्रशिक्षक के साथ व्यक्तिगत साक्षात्कार सम्पन्न होता है। यदि प्रशिक्षु सब कुछ समझकर आगे टी.एम. को सीखना चाहता है तो आवेदन करता है। जब शिक्षक प्रशिक्षु को एक मंत्र देता है और उसका भली प्रकार उच्चारण करना सिखाता है। चौथे चरण में प्रशिक्षु सुबह और शाम 15-20 मिनट तक आँखे मूँदकर मन में मंत्रोच्चारणं करता है जिसके फलस्वरूप विचारों का प्रवाह रोकने में सहायता मिलती है और व्यक्ति को चेतना की गहन अवस्था की प्राप्ति होती है। पाँचवें, षष्टम और सप्तम सोपानों की अवधि में एक प्रशिक्षण के साथ जुड़वें सभी परीक्षार्थी व्यक्तिगत एवं सामूहिक सभालाप (meeting) में सम्मिलित होते हैं। किसी प्रकार के संदेह या समस्या के निवारण के लिए अनुवर्ती कार्यक्रम की व्यवस्था की जाती है।

लॉरेन्स (Domash H. Lawrence, 1977) के अनुसार व्यक्ति प्राय: यह बताते हैं कि शरीर अविलम्ब विश्रांति का अनुभव करता है तथा विचार प्रक्रिया ठहर जाती है, शारीरिक संवेदना विलुप्त हो जाती है किन्तु पूर्ण चेतना पहले से कहीं अधिक स्पष्ट एवं विस्तृत चेतन बोध का अनुभव करता है। कभी-कभी टी.एम. की अवधि में लोगों को विचार क्रिया पूर्णत: रूक जाने का अनुभव होता है, उन्हें केवल चेतना या बोध का अनुभव होता है, उसमें कोई तत्त्व नहीं होता है। इस प्रक्रिया द्वारा गहन सुखानुभूति प्राप्त होती है, व्यक्ति को ताजगी, शक्ति चित्त (मन) की स्पष्टता की प्राप्ति होती है।

वैज्ञानिक अध्ययनों द्वारा ज्ञात हुआ है कि टी.एम. द्वारा ऑक्सीजन ग्रहण और कार्बन-डाई-ऑक्साइड निष्कासन के दर मे वृद्धि आती है, हृदयगति और श्वसन गति में कमी आती है। टी.एम. द्वारा अनिद्रा, ब्लड प्रेसर मे लाभ बताया गया है। टी.एम. चेतना की तीन पूर्व ज्ञात अवस्थाओं-जागृति, स्वप्न, गहन निद्रा से भी आगे की चौथी अवस्था विश्रामयुक्त सजगता (restifil alertness) की अवस्था होती है।

## 14.4 परामर्शन प्रक्रिया में हस्तक्षेप नीतियाँ

परामर्शन प्रक्रिया में क्लाइंट के साथ परामर्शदाता द्वारा सम्मिलित रूप में निर्धारित किये गये लक्ष्यों की सिद्धि के लिए परामर्शदाता अनेक प्रकार से सहायता देता है। परामर्शदाता परामर्शी के सम्मान और अधिकार की रक्षा करते हुए लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त तकनीक का उपयोग करता है। परामर्शन तकनीकों का उद्देश्य व्यक्ति को सशक्त करना होता है और ऐसा करने के लिए व्यक्ति की पसंद, वरीयता, तकनीकी उपागम की वरीयता को भी ध्यान में रखा जाता है। विभिन्न परामर्शन उपागमों में व्यक्ति की सहायता करने के लिए हस्तक्षेप का बिंदु उस व्यक्तित्व सिद्धान्त के आधार पर सुनिश्चित किया जाता है जिसके साथ उस उपागम का सम्बन्ध होता है। व्यक्तित्व सिद्धान्त द्वारा समस्या की व्याख्या अलग-अलग ढंग से की जाती है किन्तु जैसा कि गार्डन जिक्स (Gardon Jinks, 2000) का विचार है कि सैद्धान्तिक आधार सम्बन्धी विभिन्नताओं के बावजूद विभिन्न उपागम कुछ हस्तक्षेप तकनीकों का सुविधापूर्वक कतिपय अनुकूलनों (adaptations) के साथ उपयोग कर सकते हैं। हस्तक्षेप की प्रमुख तकनीकों का पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है। वर्गीकरण का आधार उन बिन्दुओं को बनाया गया है जहाँ परामर्शन तकनीकें अपनी गतिविधियों को केन्द्रित करते हैं। हस्तक्षेप नीतियाँ व्यवहार (behaviour) अनुभूति (feeling) संज्ञान (cognition), बिम्ब (inagery) और अंतर्वैयक्तिक कारकों को प्रभावित करने का प्रयत्न करती है।

## 14.5 व्यवहार

व्यवहार में परिवर्तन के आधार पर कार्य करने वाले परामर्शन उपागम कई प्रकार की तकनीकों-व्यवहार प्रतिरूपन (बिहेवियल मॉडलिंग), विंसवेदीकरण (डिसेंसीटाइजेशन), अनावरण (एक्सपोजर), प्रति अनुबंधन/पुनर्अनुबंधन अनुक्रिया परिहार (डी-कन्डीशनिंग/री-कन्डीशनिंग/रेस्पान्स प्रिवेन्शन) होम वर्क, डायरी-कीपिंग, शिथिलीकरण (रिलैक्शेसन) आदि का उपयोग किया जाता है। परामर्शन उपागमों से सम्बन्धित अगले अध्याय (अध्याय-18) में व्यवहार उपागम के खण्ड में विस्तृत विवरण दिया गया है।

यहाँ पर अन्य तकनीकों के साथ इन तकनीकों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है। विस्तृत विवरण के लिए अगले अध्याय पर ध्यान दिया जाना वांछित है।

**(i)** **व्यवहार परिमार्ज्ान, अभ्यास, पुनर्बल** (Behaviour Modification, Rehearsal, Reinforcement)- व्यवहार में सकारात्मक अधिगम के लिए अर्थात नये व्यवहार के अधिगम, प्रभुत्व द्योतन (assertiveness), सामाजिक दक्षताओं के विकास या भयदायी परिस्थितियों का सामना करनें के लिए प्रतिरूप (मॉडल) के व्यवहार का अधिगम करने, अभ्यास (रिहर्सल) करने और अधिगमित व्यवहार के पुनर्बलन की तकनीकों का उपयाग किया जाता है। प्रतिरूप अधिगम में सामाजिक दृष्टि से सम्मानित व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन, अनुकरण अपने व्यवहार में क्रियान्वयन (enacting), व्यवहार के प्रत्यक्ष या परोक्ष (vicarious) पुनर्बलन की तकनीक अपनायी जाती है।

वास्तविक प्रतिरूप या वीडियों टेप में प्रतिरूप पात्र के विकल्प के रूप में परामर्शदाता स्वयं भी प्रतिरूप की भूमिका का निर्वाहन कर सकता है।

**(ii)** **व्यवहार सुघटन** (Behaviour shaping)- अनुबंधन की विधि का उपयोग करके अच्छी अनुक्रियाओं का व्यक्ति के अनुकूलन/आदत भण्डार में समावेश किया जा सकता है। भय जैसी प्रक्रियाओं से बचने के लिए भी व्यक्ति को श्रृंखलाबद्ध तरीके से अनेक अनुक्रियाओं का अधिगम कराया जा सकता है जिससे किअंतत: उस परिस्थिति में भय की उत्पत्ति न हो।

**(iii)** **विसंवेदीकरण** (Desensitization)- जब व्यक्ति में किसी उद्दीपक के उपस्थित होने पर अनुपयुक्त चिन्ता या भय उत्पत्ति होती है तब विसंवेदीकरण या व्यवस्थित विसंवेदीकरण (systematic desensitization) की तकनीक लाभकारी रूप् में प्रयुक्त की जाती है। विसंवेदीकरण की प्रक्रिया प्रति अनुबंधन (conuted –condititiong ) की तकनीक होती है जिसमें चिन्ता या भय उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के साथ ही अच्छे उद्दीपक (भोजन) को भी रखा जाता है तत्पश्चात नकारात्मक उद्दीपक को धीरे -धीरे प्रयोज्य के पास लाते है और भय को समाप्त करते हैं। व्यवस्थित विसंवेदीकरण प्रक्रिया में पहले शिथिलीकरण तकनीकी का अभ्यास कराया जाता है और चिन्ता या भय उत्पन्न करने वाली अनुक्रिया को कम तीव्रता में प्रस्तुत करते आरामपूर्वक (ralaxed) रहना सिखाया जाता है। उद्दीपक की तीव्रता को क्रमश: बढ़ाते हुए धीर-धीरे उसकें प्रभाव को समाप्त किया जाता है।

**(iv)** **अनावृत्ति/अनावरण** (Exposure)- अनावृत्ति (या अनावरण अथवा विगोपन) तकनीक इस तथ्य पर आधृत है कि यदि किसी व्यक्ति के लिए चिनात का भ्य उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में कुछ देर तक टिके रहना संभव हो पाये अर्थात् परामर्शी पीछे न लौटे तो समय बीतने के साथ चिन्ता या भय की मात्रा स्वाभाविक रूप में घट जायेगी। उद्दीपन के एक ही स्तर के प्रति शरीर धीर-धीरे प्रतिक्रिया घटा देता है और मनोवैज्ञानिक स्तर पर जब व्यक्ति को यह प्रतीत होता है कि उसे कोई क्षति नहीं हो रही है तब भय का सामना करने के लिए उसका व्यवहार पुनर्बलित होता है।

**(v)** **अनुक्रिया परिहार** (Response preventionv)- यदि कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति में एक प्रकार की प्रतिक्रिया (व्यवहार) करने के लिए बाध्यता का अनुभव करता है तब उसे परिस्थिति के प्रति बढ़ते हुए क्रम में अनुक्रिया थोड़े विलम्ब से करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, विलम्ब की मात्रा को क्रमश: बढ़ाते हुए अनुक्रिया को बिना किसी क्षति के पूर्णतया रोक लेने के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है। धूम्रपान, खान-पान आदतों, खर्चीलेपन और अन्य मनोग्रस्तता बाध्यता मूलक प्रतिक्रियाओं में इस तकनीक का उपयोग किया जा सकता है।

**(vi)** **अन्य तकनीके -** ऊपर वर्णित तकनीकों के अतिरिक्त के व्यवहार में हस्तक्षेप करके उसे लाभ पहुँचाने की अन्य तकनीके -गृह कार्य, डायरी लेखन शिथलीकरण व्यायाम, अन्तर्विस्फोटन (इम्प्लोजन) जैसा ही सकती है। सभी तकनीकों का विस्तृत विवरण अगले अध्याय में प्राप्य है।

**भावनाएँ/ अनुभूतियाँ**

भावनाओं और अनुभूतियों के स्तर पर हस्तक्षेप करने के लिए परामर्शदाता परानुभूति के विविध स्तरों का संप्रेषण करने, आवनात्मक अभिव्यक्ति के लिए क्लायंट को अवसर देने और रिक्त-कुर्सी कार्य (empty-chair work) जैसी तकनीकों का उपयोग करता है।

**(i)** **परानुभूति के स्तर की अभिव्यक्ति और संप्रेषण** (Expressing and Communicating levels of empathy) - परामर्शदाता की गतिविधियाँ परामर्शी के बारे में प्रत्यक्षण, संज्ञान और भावनुभूति का विकास और संप्रेषण करने जैसी होती हैं। परानुभूति के स्तरों का अर्थ परामर्शी के बारे में बोध की प्राप्ति की गहनता ओर उसके संप्रेषण से है। (Carkhuff, 1969; Egan, 1998 Gordon Jinks, 2000) परानुभूति के स्तरों को जिंक्स तीन रूपों में विभाजित करते हैं: सरल परानुभूति प्रतिक्रियाएँ (अनुभूतियों का प्रत्यावर्तन, वार्ता का सार-संक्षेपण आदि) ; उच्च परानुभूति प्रतिक्रियाएँ (क्लायंट के अनुभावों के उन पक्षों के संदर्भ में संचार करना जिसके विषय में वह अनभिज्ञ था, यथा- वार्ता के समय प्रयुक्त रूपकों/बिम्बों का वर्णन, उसके चेहरे पर तनाव, परामर्शदाता की क्लायंट के बारे में गहन अनुभूति का वर्णन) ; और सांस्कृतिक परानुभूति (क्लायंट और उसकी संस्कृति के बीच की अंतर्क्रिया के बारे में समझा विकसित करना, और क्लायंट को परामर्शदाता और उसी संस्कृति के विषय में ऐसी ही समझ/ परानुभूति विकसित करने के लिए प्रेरित करना) उक्त तीन स्तरों पर परानुभूति का विकास और संप्रेषण परामर्शन सम्बन्ध को मजबूत करता है और भावनानुभूति के क्षेत्र में हस्तक्षेप की क्रिया को संभव एवं सहज रूप प्रदान करते हुए परामर्शी की सहायता करता है।

**(ii)** **भावनात्मक अभिव्यक्ति** (Catharsis)- परामर्शी के द्वारा भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति समायोजनात्मक एवं संवेगात्मक समस्याओं के क्षेत्र में परामर्श कार्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। भावनाओं को अभिव्यक्ति करने का अर्थ होता है कि क्लायंट उन अनुभूतियों को जो कि दु:खद है, जिनका सम्बन्ध विगत अनुभवों से है, जिनके विरूद्ध क्लायंट ने मनोरचनाएँ प्रयुक्त की हुई हैं (और वह ऐसी भावनानुभूतियों का सामना नहीं करना चाहता है) के साथ पुन: स्थापित करे और उन्हें अभिव्यक्त करें। जिंक्स के अनुसार परामर्शदाता विरेचन कार्य

(cathartic work) दो रूपों में करा सकता है। प्रथम परिस्थिति अत्यल्प संरचित उपागम है और दूसरा विरेचन कार्य के लिए संरचित उपागम है।

अत्यल्प संरचित उपागम में परामर्शदाता सावधानीपूर्वक सरल/मौलिक परानुभूति और उच्च परानुभूति पर शुद्धातापूर्वक ध्यान केन्द्रित करता है और यह क्रिया स्वाभाविक रूप में क्लायंट को उसे संवेगो के साथ गहन सम्पर्क की दिशा में उत्प्रेरित करती ह। विरेचन कार्य में परानुभूति सम्बन्धी व्यवहार उस समय अधिक प्रभावोत्पादक होता है जबकि क्लायंट के वर्तमान अनुभवों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए वह अपने विगत मनोघातों और दुखद स्मृतियों के क्षेत्र में भी प्रवेश कर जाये। ऐसी दशा में परामर्शदाता उसके अनुभावों (जैसे कि वह अपने विगत जीवन का पुर्न अनुभव कर रहा है) परानुभूतिपूर्ण अनुक्रिया करता है। परामर्शदाता द्वारा बातचीत के साथ उपयुक्त चुप्पी का उपयोग परामर्शी को भावनात्मक अनुभूति का अवसर देता है। परामर्शी को सुरक्षित परिवेश की अनुभूति होनी चाहिए जिसमें वह सहजतापर्वूक भावानुभूतियों का प्रवाहित कर सके। यह भी आवश्यक होता है कि इस कार्य के लिए निर्धारित सत्र लचीला हो, समय लगभग 90 मिनट दिया जाये। विरेचन कार्य के अन्त में परामर्शी को सत्र से बाहर जाने के लिए मानसिक तैयार हेतु थोड़ा समय दिया जाता है और उसे संत्र की संज्ञानात्मक समीक्षा का अवसर- क्या हुआ है, क्लायंट ने क्या अन्वेषण किया है या सत्र में क्या सीखा है जानने के लिए अवसर दिया जाना चाहिए।

अधिक संरचित विरेचन कार्य में (Heron, 1990 ; Mahrer, 1996) किसी एक विशेष मनोआघात का वर्ण करने के कार्य पर इस रूप में केन्द्रित किया जाता है जैसे कि घटनाएँ अभी घटित हो रही है परामर्शदाता विवरण के भावनात्मक पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करता है। परामर्शी की चुप्पी, खालीपन, टिप्पणी, लिस्प ऑफ टंग, वार्ता में रूकावट और अवाचिक सूचनाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है तथा परामर्शी को इनकी व्याख्या करने के लिए कहा जाता है जिसके परिणामस्वरूप वह अपनी अनुभूतियों का और गहराई के साथ अन्वेषण करता है।

**(iii)** **रिक्त स्थान कार्य** (Empty chair work)- इस तकनीक का उपयोग ऐसे क्लायंट के लिए किया जाता है जो अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए संघर्ष कर रहे होते है। क्लायंट को दो पक्षों (स्वयं एवं अन्य कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति ; या 'आश्वस्त -आत्म एवं असुरक्षित-आत्म ; या, वर्तमान स्व एवं विगत/ भविष्यकालिक स्व') के मध्य की वार्ता में दोनों पक्षों का भूमिका निभाने (act out) के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिंक्स (2000) इस नाटक की द्विपक्षीय भूमिका निभाने के लिए दो या अधिक कुर्सियों पर बारी-बारी से बैठते हुए यह कार्य करना अधिक लाभकार बताते हैं। क्लायंट यह कार्य जब कभी जिस किसी बिंदु करना चाहता है तब उसे अनुमति दी जाती है और प्रतिरोध/ अनिच्छा के प्रति परानुभूतिपूर्ण अभिव्यक्ति करते हुए अन्वेषण कार्य सम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार रिक्त स्थान कार्य विधि प परामर्शी के बोध के स्तर को उठाने और जीवन की अनुभूतियों, सम्बन्धों, द्वन्दों को परामर्श कक्ष में लाने में उपयोगी सिद्ध होती है (Houston, 1990 ; Zinker, 1977)।

## 14.6 अभ्याय प्रश्न

1 भारत में परामर्श सेवाओं के स्वरूप की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
2 परामर्श के आधुनिक उपागमों की व्याख्या कीजिए।
3 परामर्श की भारतीय प्रविधियों की व्याख्या कीजिए।
4 परामर्श में कौन कौन सी हस्तक्षेप नीतियां होती है किन्हीं दो का वर्णन कीजिए।

# इकाई - 15

# मनोवैज्ञानिक परीक्षण के विशेषतायें और प्रयोग

**इकाई की रूपरेखा**


15.0 उद्देश्य

15.1 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के अनुप्रयोग

15.2 मनोवैज्ञानिक परीक्षण का मुख्य वर्गीकरण

15.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपयोगिता

15.4 निर्देशन एवं परामर्श में मनोवैज्ञानिक परीक्षण का उपयोग -

15.5 मनोवैज्ञानिक परीक्षण की सीमायें

15.6 मनोवैज्ञानिक परीक्षण के उपयोग में सावधानियां

15.7 बोध प्रश्न

15.8 संदर्भग्रन्थ


## 15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी -

- मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपयोगिता बता सकेंगे।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग का विश्लेषण कर सकेंगे।
- निर्देशन एवं परामर्श में परीक्षणों के उपयोग बता सकेंगे।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सीमायें बता सकेंगे।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षण के प्रयोग में उचित सावधानियां जान सकेंगे।

## 15.1 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के अनुप्रयोग

मनुष्य का व्यक्तित्व बहुआयामी होता है, मनुष्य में अनेकों गुण हैं, इन्हीं गुणों में बुद्धि, अभियोग्यता, रूचि, समायोजन आदि में विविधतायें पायी जाती है। उपलब्धि में एक प्राणी अन्य से भिन्न होता है। व्यक्तिगत विभिन्नताओं की इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुये व्यक्ति अपने विषयों, व्यवसायों का चयन करता है, इस चयन प्रक्रिया को अधिक उपयोगी एवं गुणात्मक बनाने हेतु स्तरीय मापन की विधियों की आवश्यकता होती है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग अध्यापकों, परामर्शदाताओं, डॉक्टरों, मनोवैज्ञानिकों एवं प्रशासकों द्वारा किया जाता है। यह प्रयोग केवल शैक्षिक नहीं वरन्

व्यावसायिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप में व्यक्ति को सही चयन एवं निर्णय लेने में मददगार साबित होते हैं।

## 15.2 मनोवैज्ञानिक परीक्षण का मुख्य वर्गीकरण

मनोवैज्ञानिक परीक्षण को मुख्यत: जिसके लिये तैयार किया जाता है, प्रकरण, उद्देश्य माध्यम, गुणों का मापन के आधार पर मुख्यत: (11) ग्यारह भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. **क्रोनबैक मुख्यत: दो प्रकार के परीक्षण का सुझाव देते हैं -** वह परीक्षण जो अत्यधिक प्रदर्शन का व्यक्तिगत रूप में मापन करता है और जो आदतीय प्रदर्शन का मापन करता है। पहले योग्यता आधारित बाद में व्यक्तित्व आधारित परीक्षण। योग्यता आधारित परीक्षण का मुख्य उद्देश्य अत्यधिक पसंदीदा अवस्था में व्यक्तिगत प्रदर्शन एक निर्धारित क्षेत्र में कितना होता है और व्यक्तित्व परीक्षण में ठीक इसी प्रकार से आदतीय प्रभावों का व्यक्तिगत दृश्य में अच्छा हल निकालने के लिये किया जाता है। उदाहरणत: अत्यधिक प्रदर्शन के लिये Rorschach's Ink Blot Test, Thematic Apperception Test (TAT), and Children Apperception Test (CAT) प्रयोग करते हैं।
2. **व्यक्तिगत और समूह परीक्षण -** परीक्षण का प्रबन्धन करने से पहले यह जानने की आवश्यकता होती है कि इसकी आवश्यकता व्यक्ति विशेष को है या समूह को। भाटिया और स्टैनफोड बीने के अनुसार इस परीक्षण का प्रयोग बुद्धिमता के प्रयोग के लिये काले चमकदार निरन्तर स्तरीय के लिये और चटर्जी व्यक्तिगत एवं समूह दोनों की प्रमुखता रुचि के आधार पर प्रयोग कर सकते हैं। व्यक्तिगत प्रयोग विषय कार्य विधि, उसके सामाजिक संवेग प्रतिक्रिया प्रभाव आदि का आंकलन करना परीक्षक के लिये योग्य होता है। यह परीक्षण परीक्षक के द्वारा बढिया अवसर स्थापित रिपोर्ट का, समन्वय का होना और विषय के लिए रुचि बनाने में भी परीक्षक को परिणाम देता है। व्यक्तिगत परीक्षण सामान्यत: बहुत ज्यादा योग्य परीक्षक के लिये उपयोगी होता है।
3. **पेपर-पेन्सिल परीक्षण और प्रदर्शन परीक्षण -** पेपर पेन्सिल परीक्षण में किताबों, उसके प्रकरण के प्रत्येक पदों में से विषय का परीक्षण उपलब्ध कराता है। विषयी द्वारा इसका उत्तर विशेष उत्तरपुस्तिका में बुकलेट में से देना होता है।

   प्रदर्शन परीक्षण की कुछ सीमायें हैं - यह छोटे समूह या व्यक्ति विशेष के लियें प्रयोग किया जाता है। इसमें समय का अभाव होता है यह पूर्णत: सांस्कृतिक से मुक्त नहीं है।

   मनुष्य निर्मित्त परीक्षण, साईकिल परीक्षण, यह सब उदाहरण प्रदर्शन परीक्षण के है।
4. **भाषा शैली और अ-भाषा शैली परीक्षण -** भाषा शैली परीक्षण में भाषा का प्रयोग होता है। अ-भाषाशैली परीक्षण में भाषा का प्रयोग न तो लिखने में न ही बोलने में और न ही अनुदेशन में न ही परीक्षण पद की आवश्यकता होती है। अ-भाषीय परीक्षण विशेष कर उनके लिये बनाया जाता है जो अनपढ होते हैं, जो जन्मजात प्रवृत्ति से परीचित नहीं होते या अन्य कुछ कारण से

उन्हें लेने में असमर्थ होते हैं। इसलिये यह परीक्षण या तो प्रदर्शन या एक पेपर पेन्सिल परीक्षण होता है। पेपर पेन्सिल भाषीय परीक्षण में यह प्रकरण सामान्यत: चित्र, रूपरेखा और अभाषीय प्रतीक होता है और विषयी को आवश्यक होता है। इसके लिये बच्चों के चार्ट पर आधारित और प्रदर्शन प्रारूप चित्र और प्रारूप के साथ अनुदेशित होता है।

आर्मी बीटा परीक्षण प्रथम अ-भाषीय परीक्षण विधि है। प्रग्या मेहता सामान्य बुद्धिमता के लिये भाषीय परीक्षण का उदाहरण है।

5. **शाब्दिक या अशाब्दिक परीक्षण -** यह पढने और ना पढ़ने की योग्यता को अंकित करता है। शाब्दिक में पढ़ने और लिखने की आवश्यकता होती है। अशाब्दिक में ना तो पढ़ना, ना लिखना जरूरी है लेकिन इसमें परीक्षक की ओर से मौखिक अनुदेशन और सम्प्रेषण का प्रयोग बनता है। इसलिये इसमें प्रत्येक परीक्षण का मापन धारा प्रवाह शाब्दिक अवतरण के मापन के लिये होता है। इसलिये यह प्रत्येक पद के लिये मौखिक अनुदेशन होता है।

6. **मापदण्ड उल्लेख और सामान्य उल्लेख परीक्षण -** मापदण्ड उल्लेख परीक्षण वर्णन करता है परीक्षार्थी के विशिष्ट पदों को जिसे वह प्रदर्शित कर सकता है। (उदाहरण वह 60 शब्द बिना किसी गलती के टाईप कर सकता है।)

यह अनुदेशन के प्रभाव को मापता है। सामान्य उल्लेख परीक्षण के जानने वाले समूह में जो सम्बन्धित स्थान वह पदों में रखता है उस प्रदर्शन का वर्णन करता है। उदाहरणार्थ - वह अपने सहपाठियों से 80 प्रतिशत बढ़िया टाईप कर सकता है।

यह ज्यादा उपलब्धि करने वालों एवं कम उपलब्धि करने वालों में अन्तर स्थापित करता है।

7. **मानकीकृत परीक्षण और अनौपचारिक परीक्षण -** अनौपचारिक परीक्षण कक्षा-अध्यापक के द्वारा निर्मित्त होता है। मानकीकृत परीक्षण विशेषज्ञों के द्वारा प्रारूपित होता है और इसे मानकीकृत स्थिति में अंकन एवं लागू किया जाता है।

8. **गति और सामर्थय / शक्ति परीक्षण** - व्यक्तिगत गति परीक्षण प्रदर्शन की गति के आधार पर विभिन्नता प्रदान करता है। यह गति प्रति उत्तर का मापन करता है। क्लेरिकल (ब्समतपबंस) गति परीक्षण का उदाहरण है। जबकि कितने अधिक प्रश्नों के सही उत्तर दिये गये यह शक्ति परीक्षण का उदाहरण है।

एक शक्ति परीक्षण में समय सीमा अधिक या पर्याप्त होती है। इस परीक्षण के माध्यम से प्रदर्शन के स्तर को मापते हैं। जबकि गति परीक्षण में समय सीमा निश्चित की जाती है।

उदाहरणत: - एक गणितज्ञ जो कठिन गणितिय समस्या को हल कर सकता है और एक व्यक्ति जो दो स्थानीय अंकों को जोड़ सकता है सही और लगातार कि◌ल्कयल निपुणता से किन्तु वह गणितज्ञ हो यह आवश्यक नहीं है।

इसलिये गति और शक्ति परीक्षण दोनों पूर्ण अंक उपलब्धि के लिये निवारण योग्य प्रारूप होते हैं। ज्यादातर मनोवैज्ञानिक परीक्षण गति और शक्ति पर आधारित होते हैं।

9. **सांस्कृतिक प्रदर्शनी परीक्षण -** यह परीक्षण भाषा मुक्त होता है। ये उन गुणों, निपुणता और संवेगों में भी प्रयुक्त होता है जो किसी एक संस्कृति या किसी अन्य से मिलते हैं। इस परीक्षण का उचित उदाहरण एक व्यक्ति द्वारा निर्मित अच्छा पर्याप्त परीक्षण जो केवल मानव शरीर की जानकारी देता है।

10. **विभिन्न क्षेत्र में गुणों का मूल्यांकित परीक्षण -** मनोवैज्ञानिक परीक्षण की रचना गुणों के विभिन्न क्षेत्रों के लिये किया जाता है जैसे - बुद्धि, अभिरुचि, रुचि, अभिवृत्ति, व्यक्तित्व आदि। इसके आधार पर परीक्षण को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

    (i) सामान्य बुद्धिमता परीक्षण

    (ii) विशेष अभिरुचि परीक्षण

    (iii) व्यक्तित्व का मापन परीक्षण

    ज्यादातर परीक्षण ऊपर के तीन भागों में विभक्त होते हैं। उदाहरणत: कुछ सामान्य बुद्धिमता, कुछ व्यक्तिगत परीक्षण और अन्य समूह परीक्षण, कुछ शाब्दिक परीक्षण और अन्य अशाब्दिक परीक्षण। यह अन्तर विशेष अभिरुचि और व्यक्तित्व परीक्षण में विद्यमान होते हैं।

11. **विशेष व्यक्ति प्रयोग के लिये परीक्षण -** मनोवैज्ञानिक परीक्षण प्रयोग के आधार पर भी वर्गीकृत होते हैं। इस प्रकार हम इन परीक्षणों का प्रयोग मानसिक विकास में बाधा वालों पर व्यापक मूल्यांकन के लिये कर सकते हैं। इस परीक्षण का प्रयोग मानसिक रोगी और मानसिक विकलांगों पर कर सकते है।

## 15.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपयोगिता

मनोवैज्ञानिक परीक्षण विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगी निर्णय लेने हेतु सहायक सिद्ध होते हैं और व्यक्ति के विभिन्न क्षेत्रों में समायोजन में सहायता प्रदान करते हैं।

1- विद्यार्थी को उपयुक्त चयन एवं सही निर्णयों तक पहुँचने में मनोवैज्ञानिक परीक्षण अत्यन्त उपयोगी है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण नवीन जानकारी प्राप्त करने में एवं उस जानकारी के अलावा अपनी योग्यताओं व रुचियों के अनुरूप नये शैक्षिक विषयों, व्यावसायिक प्रशिक्षणों के निर्णय लेने में विद्यार्थीयों की मदद करते हैं। मात्रात्मक गणना, निरीक्षण, मापन और मूल्यांकन के पश्चात् सही निर्णय लिये जा सके। व्यावसायिक रुचि परीक्षण द्वारा आसानी से इस निर्णय पर पहुँचा जा सकता है कि किस क्षेत्र में अधिक रुचि के कारण विद्यार्थी अधिक गुणात्मक कार्य करने के लिये सक्षम है।

2- मनोवैज्ञानिक परीक्षण परामर्शदाता को परामर्शकर्ता के लिये विभिन्न अवसरों, उसकी योग्यताओं, रूचि, कौशलों आदि का पता करने में मदद करते हैं, और इस प्रकार की जानकारी परामर्शदाता को उचित निर्णय लेने में मदद करती है, ये निर्णय यदि इस जानकारी के अभाव में लिये जायेंगे तो शायद उतने सटीक न हो परन्तु मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा

प्राप्त जानकारी से लिये गये निर्णय व्यक्ति को अधिक सफल भविष्य की ओर अग्रसर करते हैं।

3- परामर्श प्राप्तकर्ता की निर्णयात्मक क्षमता बढ़ाने के लिये मनोवैज्ञानिक परीक्षण उपयोगी होते हैं - विद्यार्थी इन्हीं परीक्षणों की मदद से उपयुक्त विषय पाठ्यक्रम, पाठ्यसहगामी क्रियाओं और व्यवसाय सम्बन्धी उचित निर्णय लेने में सफल होता है। जिस-जिस पाठ्यक्रम को पढ़ने का मौका विद्यार्थीयों को मिल रहा है तथा वे विद्यार्थी उनमें किस प्रकार सफल हो। विद्यार्थी को यदि उसके अनुसार सही दिशा नहीं मिले तो उसे परेशानी होगी, इसलिये यह विद्यार्थी को सही दिशा-निर्देश देने में सहायक होता है।

इस प्रकार बहुत से निर्णयों, तथ्यों एवं स्थिति के आधार पर लिये जा सकते है। उदाहरण - कोई अध्यापक या पारिवारिक दबाव या शायद अपरीक्षणीय व्यक्तिगत कारक कई बार निर्णयों को प्रभावित करते है।

4- यह विद्यार्थियों के आवश्यकतानुसार शिक्षण देने में शिक्षक की मदद करता है - यदि शिक्षक मनोवैज्ञानिक परीक्षण की सहायता से विद्यार्थियों की रुचि और क्षमताओं का आंकलन कर सकें तो वह विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार शिक्षण दे सकेगा। वह उनकी आवश्यकतानुसार दोनों के मध्य अन्तर कर सकता है।

5- परामर्शदाता की मदद करता है - आधुनिक स्कूल छात्रों के शैक्षिक और व्यावसायिक नियोजन के लिये व्यक्तिगत परामर्शदाता उपलब्ध करते हैं। बहुत से विद्यालय कुसमायोजित छात्रों के लिये कुछ अतिसाधारण सेवायें भी उपलब्ध कराते हैं। मनोवैज्ञानिक परीक्षण परामर्श के माध्यम से एकीकृत एवं एकीकृत भाग का सत्य खोल लेते हैं। एक बुद्धिमान परामर्शदाता उपभोक्ता आधारित साक्षात्कार और अतिसाधारण न्याय के लिये परीक्षण में से आंशिक आधार पर अर्थपूर्ण और काम के आंकडों को ग्रहण करता है।

6- प्रजातांत्रिक समाज में छात्रों को जहां तक संभव हो बहुत ही उदारता से चुनाव करना चाहियें। पाठ्यक्रम चुनाव में भी परामर्शदाता की सहायता लेनी चाहिए। लेकिन इस समय बहुत ही कर्तव्यनिष्ठ छात्रों का चुनाव करना जो कि व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से अत्यन्त आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण पाठ्यक्रम अनुरूप बालकों के चयन में सहायक है।

7- स्वजातिय समूह के निर्धारण में सहायक - मनोवैज्ञानिक परीक्षण प्राथमिक, माध्यमिक स्कूल, कॉलेज में स्वजातिय समूह निर्धारण कर स्थापित करने में सहायक होता है और इस स्तर के विद्यार्थियों में साहस, क्षमता के विकास को बढ़ावा देने में सहायक होता है।

8- मनोवैज्ञानिक परीक्षण का प्रयोग विद्यालय और कॉलेजों में प्रवेश समिति द्वारा समान प्रकार के आवकों के समूह के लिये किया जाता है। इसका प्रयोग विद्यालय या कॉलेज द्वारा छात्रों के विभिन्न पाठ्यक्रम को वर्णित एवं बांटने हेतु भी किया जाता है। उसे पेशेवर कॉलेजों में सफलतापूर्वक कार्य करने की योग्यता से जोड़कर तब कॉलेज परीक्षण परिणाम के आधार

पर उसके भविष्य को इंगित करता है कि वह मेडिकल या नॉन मेडिकल (छवद डमकपबंसद्ध समूह में जा सकता है।

9- देश में जो विशिष्ट विद्यालय हैं जो मेरिट में आते है अर्थात् जहां छात्रवृत्ति के लिये आवासीय विद्यालय हैं उनमें परीक्षण की सहायता से विद्यार्थियों का चुनाव करना - बहुत सारे ऐसे विद्यालय जहां गरीब बच्चों का दाखिला होता है क्योंकि उनमें योग्यता ज्यादा होती है। इस प्रक्रिया में यह परीक्षण सहायक होता है।

10- विशेष संस्थाओं में विद्यार्थियों के प्रवेश में सहायक - यहाँ बहुत सारी विशेष संस्थायें हैं जैसे कि - नेशनल डिफेंस एकेडमी खडकवासला, इन्डियन मिलिट्री एकेडमी-देहरादून, एअरफोर्स एकेडमी-हैदराबाद, नेवी एकेडमी-कोचिन, आर्म फोर्स मेडिकल कॉलेज-पूना आदि जो इस देश में हैं। यहां और भी बहुत सारे पेशेवर कॉलेज और संस्थायें हैं। मनोवैज्ञानिक और मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण का प्रयोग इन संस्थाओं में प्रवेश के लिये किया जाता है।

11- विभिन्न शाखाओं की सेवाओं के व्यक्तिगत वितरण में सहायक - डिफेंस संस्थायें आर्म फोर्स के लिये उन्हीं व्यक्ति का चुनाव करती है जो सामान्य बुद्धिमता और संवेग स्थायित्व से ऊपर हों। जिनमें उच्च कोटि का मैकेनिकल और क्लेरिकल अभियोग्यता हो। जो शारीरिक रूप से स्वस्थ और ठीक हों। प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक स्तर से पूर्ण हो यह आसानी से नहीं जान सकते। इसलिये मिलिट्री के मनोवैज्ञानिक उन समस्याओं का सामना कर उन विशिष्ट गुणों को खोजते है जो आर्मी की नौकरी के लिये आवश्यक एवं निर्धारित हो। मनोवैज्ञानिक परीक्षण की आवश्यकता अंकों के आधार पर विशिष्ट गुणों को मापने में की जाती है। इन विशिष्ट नौकरियों में नये भर्ती हेतु किया जा सकता है। वह व्यक्ति जो मैकेनिकल रूचि परीक्षण में ज्यादा अंक प्राप्त करता है उसे मैकेनिकल कार्य पर रखते हैं। एक व्यक्ति जो गति और सावधानी से कार्य करता है उसे कार्यालय का काम देते है। इस तरह से मनोवैज्ञानिक परीक्षण सही स्थान पर सही व्यक्ति को रखने के लिये एक उपयोगी प्रयोग है।

12- विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक उपचार में सहायक - किसी भी विद्यालय / कॉलेज प्रणाली में बहुत सारे विद्यार्थी कठोर मंदगति के संवेगों से प्रभावित रहते हैं जिसका प्रभाव उनके सीखने की योग्यता पर पड़ता है। संवेग समस्या के मापन हेतु विद्यार्थी के या समालोचनात्मक अध्ययन का एक विद्यार्थी के सम्बन्ध में पर्यावरण के प्रभाव का अध्ययन आवश्यक है इसका ध्यानपूर्वक विश्लेषण होना चाहिए और विद्यार्थियों के पूर्व अनुभव की प्राथमिकता के आधार पर उसके सीखने की अयोग्यता को चिन्हित किया जाता है। इसके जरिये विद्यार्थी के लिये एक सही विधि मिल जाती है। जिससे उसके व्यक्तित्व परीक्षण के लिये, फिर उसके व्यक्तित्व को बनाने के लिये एक सही विधि का निर्माण करते हैं। उदाहरण - एक परीक्षक एक व्यक्तिगत परीक्षण का प्रयोग बुद्धिमता के लिये कर सकता है, एक

वाक्य पूर्ण परीक्षण, (रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण) इन परीक्षणों का परिणाम विद्यार्थियों के विषय में निर्णय लेने के लिये जरूरी होता हैं। यह माना जाता है कि विद्यार्थी की जो भी परेशानी है जैसे वह अपने विषय में सही फैसला नहीं ले सकता तब लम्बे समय के लिये उसके खुद के लिये नुकसानदायक होता है। विद्यार्थी को उपयुक्त दिशा में कार्य का अनुसरण करने के लिये परीक्षणों द्वारा परिणाम प्राप्त कर, प्रेरित किया जा सकता है तथा उसकी सांवेगात्मक कठिनाइयों एवं असामान्य व्यवहार में सुधार लाने हेतु मदद की जा सकती है। उदाहरण - इस प्रकार की व्यक्तिगत परीक्षण 'विशिष्ट वर्ग' या विशिष्ट प्रकार के उपचार के लिये इसके संबंधके आधार पर सूचना प्रदान कर सकता है।

13- शैक्षिक और व्यवहारात्मक समस्या के अतिरिक्त शिक्षक के व्यवहार में सुधार हेतु सहायक - परीक्षण छात्रों के निर्णय लेने में सहायक होते है जो छात्र शैक्षिक क्षेत्र में समस्या महसूस करते हैं, शैक्षिक क्षेत्र में, उनका उपलब्धि परीक्षण कर स्कूल रिकार्ड एवं मानकीकृत परीक्षण आदि के आधार पर निर्णय लेने में महत्वपूर्ण होते है।

14- विद्यार्थीयों की दूसरे विद्यार्थियों से व्यक्तित्व भिन्नताओं एवं उसके पहले के अनुभव एवं वर्तमान के वातावरण पर प्रभाव को पहचानने में परीक्षणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि विद्यार्थी को भावात्मक अशान्ति है तो उसे उस परिस्थिति में न छोड़ उसे मार्गदर्शन करना। मनोवैज्ञानिक परीक्षण आंकड़ें एकत्रित कर उसका उपचार करने में सहायक होते है।

15- मनोचिकित्सीय समस्या के समाधान में सहायक - यदि कोई मरीज मानसिक अस्पताल में आता है तो सबसे पहले यह समझना चाहिए कि वह किस प्रकार का व्यक्ति है और उसे किस प्रकार के उपचार दिये जाने चाहिये। मनोवैज्ञानिक परीक्षण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में सहायक हो सकते है। ध्यानपूर्वक रचित और बुद्धिमता से प्रबन्धकीय मनोवैज्ञानिक परीक्षण गुणों, अभिरुचि, रुचि, अभिवृत्ति और व्यक्तित्त्व गुणों का अच्छा मापन प्रदान कर सकते है। इसकी सहायता से हम किसी भी परिस्थिति में नौकरी का चुनाव कार्यों का वर्गीकरण कर आने वाली कठिनाइयों का निदान और भविष्यवाणी कर सकते हैं।

## 15.4 निर्देशन एवं परामर्श में मनोवैज्ञानिक परीक्षण का उपयोग

(i) सुरक्षित, निश्चित और विश्वसनीय जानकारी प्रत्येक विद्यार्थी की योग्यता, रुचि और समायोजन समस्या में उचित निर्देश और परामर्श से क्रम प्रदान करता है। उचित सन्दर्भ के प्रत्येक छात्र के गुणों और कमजोरी को परामर्शकर्ता की सहायता से परामर्शदाता उद्देश्यपूर्ण बनाता है।

(ii) इसकी सहायता से विद्यार्थी के शैक्षिक एवं व्यावसायिक नियोजन में निर्णय प्रदान करना।

(iii) विद्यार्थियों के समस्या का निदान करना - जैसे सामाजिक सामंजस्य वृद्धि और विकास या शैक्षिक अध्ययन के आवश्यक गुणों को पहचान और नियोजन के द्वारा उनकी उन्नति में आपसी समन्वयन लाया जा सकता है।

(iv) मनोवैज्ञानिक परीक्षण किसी भी जाति या सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को प्रतिविम्बित करता हैं, इसलिये परीक्षण योग्यताओं एवं उपलब्धि मापने के लिये वैध और विश्वसनीय तभी माने जाते है जब उचित सन्दर्भ में उनका उपयोग किया जावें।

(v) बहुत सारे मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि यह परीक्षण अवधारणा सीमित है इसमें विद्यार्थियों की योग्यता, या व्यक्तित्व को सीमित स्थिति में पाया जा सकता हैं।

(vi) पूर्णत: वैध और विश्वसनीय परीक्षणों की उपलब्धता उपयुक्त परीक्षण का चयन कर उसकी सहायता से विद्यार्थीयों का मूल्यांकन परिणाम के निर्देशन, परामर्श, नियोजन एवं प्रोत्साहन कार्यक्रम का प्रयोग कर उपचार करना चाहिये।

प्र-1 निर्देशन एवं परामर्श में मनोवैज्ञानिक परीक्षण क्यों महतवपूर्ण है ?

प्र-2 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के निर्देशन में उपयोग विषय पर एक टिप्पणी लिखिये ?

## 15.5 मनोवैज्ञानिक परीक्षण की सीमायें

(i) मानव व्यवहार को पहचानना आसान नहीं होता यह समस्यात्मक स्थिति है क्योंकि मनोवैज्ञानिक दबाव उसे प्रेरणा देता है उसे रोकते भी है इसलिये इनका मूल्यांकन करना कठिन है।

(ii) मात्रात्मक आंकड़ों को मापना आसान नहीं होता जबकि हम भौतिक आंकड़ों को माप सकते हैं। इसलिये भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा प्राप्त जानकारी का सही होना कठिन हो जाता है।

(iii) मनोवैज्ञानिक परीक्षण जन्मजात किसी गुणों या पदों को नहीं पकड़ सकता, जैसे कि अन्य चीजें स्थिर/समतल होती है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण में इनका सीधे मापन या तुलना नहीं की जा सकती।

(iv) वर्गीकरण द्वारा योग्यता मापना कठिन होता है - कभी-कभी वर्गीकरण का क्षेत्र सीमित होता है जैसे कि यह अच्छा है या कम अच्छा है यह मनोवैज्ञानिक परीक्षण पर आधारित होता है जिसके माध्यम से स्कूल, कॉलेज या व्यक्तिगत स्तर पर वर्गीकरण का कार्य कठिन होता है।

## 15.6 मनोवैज्ञानिक परीक्षण के उपयोग में सावधानियां

मनोवैज्ञानिक परीक्षण के उपयोग के संबंधमें निम्न ध्यान रखने योग्य बातें -

(i) योग्य परीक्षकों के लिये परीक्षण का विक्रय एवं वितरण सीमित होना चाहिए - आवश्यक योग्यता परीक्षण के प्रकार पर आश्रित रहेगा। इस प्रकार से बहुत से व्यक्तिगत, बुद्धिमता और व्यक्तित्व परीक्षण के लिए बहुत लम्बे और विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है और उपलब्धि और व्यापारिक परीक्षणके लिये एक छोटे कालांश एवं विशिष्ट मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण की उपयोगिता होती है।

(ii) परीक्षण प्राप्तांक केवल उन व्यक्तियों तक पहुंचनी चाहिये जो उसकी व्याख्या करने योग्य हो एवं अयोग्य छात्रों को उनके प्राप्तांक की जानकारी दे सके। उदाहरणत: एक कुसमायोजित छात्र

परेशान हो सकता है जब वह अपने व्यक्तित्व परीक्षण का परिणाम जानता है। इसी तरह एक विद्यार्थी जब बुद्धिमता में अपना उच्च प्राप्तांक जानता है तो वह ध्यान न देने वाला और असहयोगी स्वभाव का हो जाता है। जब वह जानता है कि वह अपने सहपाठियों से बहुत ही अच्छा है।

इस प्रकार से प्राप्तांक सही हो या गलत दोनों तरह से हानिकारक प्रभाव दे सकता है अर्थात् मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का सही चयन एवं उचित प्रयोग आवश्यक है इन्हें सही संदर्भ में उपयुक्त प्रशिक्षण उपरान्त प्रयोग करना चाहिये एवं प्राप्तांकों का विश्लेषण शुद्धता से करना आवश्यक है।

## 15.7 बोध प्रश्न

1 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के उपयोग में क्या सावधानियां रखनी चाहिये?

2 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से संबंधितसीमाओं की चर्चा कीजिये ?

3 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से आपका क्या तात्पर्य है?

4 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को वर्गीकृत कीजिये?

5 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के वर्गीकरण अनुरूप उपयुक्त उदाहरण दीजिये?

6 विभिन्न क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपयोगिता बताइये?

7 शिक्षण एवं अधिगम के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के उपयोग बताइये?

## 15.7 संदर्भ ग्रन्थ


1- सक्सैना, राधारानी (2009) गाइडेन्स एंड काउन्सिलंग इन एजुकेशन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रावत प्रिन्टर्स एंड स्टेशनर्स, जयपुर

2- शर्मा, एम.के. (2007), अधिगम का मनोसामाजिक आधार एवं शिक्षण, के.एस.के. पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

3- रॉव नारायणन (1981) काउंसिलिंगसाइकोलोजी, मैकग्रो हिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।

4- भार्गव महेश (2003) मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

**5-** मंगल एस.के. (2004), विद्यार्थी विकास एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, टंडन पब्लिकेशन, लुधियाना।

# इकाई - 16

# बुद्धि

**इकाई की रूपरेखा**

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 परिभाषाएं
16.3 बुद्धि के सिद्धान्त
16.4 बुद्धि परीक्षण के प्रकार
16.5 बुद्धि लब्धि **(IQ)**
16.6 बुद्धि का वर्गीकरण
16.7 बुद्धि के प्रकार
16.8 सांवेगिक बुद्धि
16.9 संवेगात्मक बुद्धि की आवश्यकता
16.10 बहुबुद्धि
16.11 सारांश
16.12 बोध प्रश्न
16.13 संदर्भग्रंथ

## 16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पाएगे -

- बुद्धि क्या होती है इसे अमूर्त चिन्तन, सीखने की क्षमता, समायोजक की क्षमता के आधार पर किस प्रकार समझा जा सकता है?
- बुद्धि परीक्षण कितने प्रकार के होते है उनकी विशेषताएं क्या है?
- बुद्धिलब्धि कैसे प्राप्त करते है तैथिक व मानसिक आयु क्या है?
- सावंगिक बुद्धि क्या है?
- सांवेगिक बुद्धि की आवश्यकता क्या है?
- सांवेगिक बुद्धि में उच्च व निम्न व्यक्तियों की पहचान किन लक्षणों के द्वारा की जा सकती है?
- गार्डनर का बहुबुद्धि सिद्धान्त क्या है बुद्धि कितने प्रकार की होती है?

- बुद्धि को जानने की एक अध्यापक व परामर्श को आवश्यकता क्यों है?

## 16.1 प्रस्तावना

बुद्धि एक ऐसा सामान्य शब्द है जिसका उपयोग हम कई रूपों में करते है अच्छी स्मरण शक्ति, जल्दी सीखने समझने की क्षमता, तार्किक चिन्तन इन सभी को बुद्धि के रूप में जानते है। बुद्धि वह प्राथमिक मानसिक क्षमता है जो प्रत्येक कार्य के लिए आवश्यक है बुद्वि ही वह क्षमता है जो हमें अन्य जीवों से अलग कर सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान करती है। बुद्धि अनेक गुणों का समूह है, बुद्धि को प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता परन्तु बुद्धि के प्रभावों को प्ररोक्ष रूप में प्रखर बुद्धि व मंद बुद्धि बालकों के मध्य अन्तर के रूप में स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि वंषानुक्रम द्वारा निर्धारित होती है परन्तु वंषानुक्रम केवल बुद्धि के प्रसार व उसकी सीमाओं को निर्धारित करता है। इस क्षमता का कितना विकास होगा इसका निर्धारण वातावरण द्वारा किया जाता है।

## 16.2 परिभाषाएं

अनके मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि को परिभाषित करने की कोशिश की पर कुछ चीजों को जैसे हवा, विद्युत महसुस तो किया जा सकता है पर परिभाषित करना कठिन होता है वैसे ही बुद्धि है। बुद्धि को कुछ मनोवैज्ञानिको ने सीखने की क्षमता के रूप में कुछ ने अमूते चिन्तन कुछ ने वातावरण के साथ समाभोजन की क्षमता के रूप में परिभाषित किया है।

(1) सीखने की क्षमता के रूप में - जो व्यक्ति जितनी जल्दी सीख लेता है जिसमें सीखने की क्षमता जितनी अधिक होगी वह उतना ही तीव्र बुद्धि वाला समझा जाता है।

(2) अमूर्त चिन्तन करने की क्षमता करने के रूप में - जिस व्यक्ति में अमूर्त चिन्तन की क्षमता अर्थात शब्दों, संकेतो, चिन्हों, गणितीय अंको के मध्य संबधों को समझने व उनकी व्याख्या करने की जीतनी क्षमता होती है वे उतने ही अधिक बुद्धिमान मानें जायेंगे।

(3) वातावरण के साथ समायोजन क्षमता के आधार पर - जो व्यक्ति जितनी जल्दी अपने आस-पास के वातावरण को आवश्यकताओं की समझ उन परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को जितनी जल्दी डाल देते है उतने ही बुद्धिमान समझे जाते है।

टरमैन के अनुसार - एक व्यक्ति उसी अनुपात में बुद्धिमान होता है जितना वह अमूर्त चिन्तन की क्षमता रखता है।

वुडरे - बुद्धि ग्रहण करने की क्षमता है

पिटनर बुद्धि नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की योग्यता हैं।

क्रूज - 'बुद्धि नयी व विभिन्न परिस्थितियों में अच्छी प्रकार से समायोजन की योग्यता है।'

बंकिधम - 'बुद्धि सीखने की योग्यता है।'

डियरबोर्न - 'बुद्धि सीखने या अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता है।'

इन परिस्थितियों से स्पष्ट है कि ये बुद्धि सभी बुद्धि की सीमीत व्याख्या करती है बुद्धि मात्र एक तरह की क्षमता ना होकर अनेक तरह की क्षमताओं का समूह है इसलिये बाद में मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि की अनेक उन्नत परिभाषाएं दी जो निम्न है -

वैश्लर (Wechsler) - ने 1939 में बुद्धि की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा दी जो सर्वमान्य है – 'बुद्धि एक समुच्चय या सार्वजनिक क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रिया करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है।'

**बुद्धि की विशेषताएं -**

(1) बुद्धि विभिन्न क्षमताओं का योग है अर्थात बुद्धि एक क्षमता न होकर अनेक क्षमताओं का योग है इसी अनेक क्षमताओं के योग को बुद्धि कहते है।

(2) बुद्धि के सहारे ही व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रियाएं करता है जो व्यक्ति जितनी अधिक उद्देश्यपूर्ण व सार्थक क्रियाएं करता है वह उतना ही बुद्धिमान होता है।

(3) बुद्धि के सहारे ही व्यक्ति वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है।

(4) बुद्धि के सहारे व्यक्ति विवेकशील चिन्तन अर्थात तर्कपूर्ण व युक्ति संगत चिन्तन कर पाता है।

(5) बुद्धि के कारण ही व्यक्ति गत अनुभूतियों द्वारा अर्जित अनुभव का लाभ उठा पाता है।

(6) बुद्धि के द्वारा ही व्यक्ति जटिलतम समस्याओं को समझ उनका तर्कपूर्ण, युक्तिसंगत, मौखिक समाधान कर पाता है।

**बुद्धि के निर्धारक -:**

**(1) आनुवंशिकता (Heridity)** - से तात्पर्य जीन के माध्यम से बच्चों को माता-पिता से मिलन वाली सभी गुणों से है। बुद्धि भी आनुवंशिकता से प्राप्त गुण है अनेक शोध ये प्रमाणित करते है कि आनुवंशिकता, बुद्धि को प्रभावित करते है।

**(2) वातावरण -:** हमारी बुद्धि की सीमाएं आनुवंशिकता निर्धारित करती है परन्तु आनुवंशिकता से प्राप्त बुद्धि का विकास वातावरण द्वारा निर्धारित होता है आनुवंशिकता बीज है जिसमें पौधा बनने की क्षमता है पर उस बीज से पौध निकलन के बाद उसका अधिकतम विकास वातावरण द्वारा निर्धारित होता है वातावरण आनुवंशिकता से प्राप्त सीमाओं के पार नहीं जा सकता पर अच्छा वातावरण का प्राप्त होना क्षमताओं का पूर्ण विकास सुनिश्चत कर सकता है। कितना भी अच्छा गुणवता वाला बीज हो, पर्याप्त पोषण के अभाव में अच्छे से विकसित नहीं हो पाएगा पर अच्छी गुणवता के बीज को अच्छा वातावरण भी मिलें तो अधिकतम बुद्धि विकास सुनिश्चित है।

**(3) जन्म कर्म व बुद्धिमता -** अध्ययन बताते है कि प्रथम जन्म कर्म वाले बालक में बुद्धिमता का स्तर बाद में जन्में बालको की अपेक्षा अधिक होता है।

**(4) परिवार का आकार व बुद्धिमता -** अध्ययन प्रमाणित करते है कि परिवार का आकार बढने के साथ में बुद्धिमता का स्तर कम होता है इसके संभावित कारण यह है कि बडे परिवारों में

बालकों पूर्ण सुविधाऐं नही मिल पाती है छोटे परिवारों की तुलना मे, माता-पिता का ध्यान बालकों पर से कम हो जाता है व अधिक बच्चे होने पर, बच्चों के मध्य जन्म समय में अन्तर कम होने पर माता का कमजोर स्वास्थ्य, बच्चों की बुद्धिमता के स्तर को प्रभावित करता है।

**(5) सामाजिक आर्थिक स्तर व बुद्धिमता -** बेले का अध्ययन प्रमाणित करता है कि उच्च सामाजिक आथिक स्तर वाले परिवारों मे जन्मे बालको का बुद्धि स्तर निम्न सामाजिक आर्थिक परिवारों में जन्में बालकों से अधिक होता है। रामे व कैम्पबैल (1979) ने अपने अध्ययन में पाया कि जिन बालको का पालन पोषण प्रेरणात्मक व धनाढ्य परिवारों में होता है उनकी बुद्धि में अप्रेरणात्मक व गरीब परिवारों में पले बच्चों की तुलना में सार्थक अन्तर देखने को मिलता है। अध्ययनो से प्रमाणित है कि गरीबी के कारण परिवारों में अव्यवस्था, शौर-गुल, साधनों का अभाव, सीखने के लिए कम प्रेरणात्मक वातावरण होता है जो बुद्धि विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

**(6) अभिभावकों की आयु व बुद्धिमता -** अभिभावकों की आयु, उनके स्वास्थ्य का बच्चों के बुद्धि विकास पर प्रभाव पडता है अधिक आयु में बालक का जन्म, माता-पिता का कमजोर स्वास्थ्य, बच्चे का समय से पूर्व जन्म, बच्चे का कमजोर स्वास्थ्य ये सभी कारक भी बुद्धिमता के विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वातावरण बुद्धि के विकास का महत्वपूर्ण निर्धारक है अच्छा खान-पान, अच्छा स्वास्थ्य, सीखने के लिए अच्छा प्रेरणात्मक वातावरण, सीखने प्रोत्साहन व पुरस्कार, सीखने के अवसर युक्त विविधतापूर्ण वातावरण आनुवंशिकता के साथ बुद्धि के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

## 16.3 बुद्धि के सिद्धान्त

बुद्धि के सिद्धान्त द्वारा हमे बुद्धि की संरचना का ज्ञान होता है जिससे हम जान पाते है कि बुद्धि किन-किन तत्वों या घटकों से मिलकर बनी है वह किस प्रकार कार्य करती है प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन निम्नानुसार हे।

(1) **बुद्धि का एककारकीय सिद्धान्त -** इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्तक बिने थे इस सिद्धान्त के अनुसार मानव मस्तिष्क में अनेक शक्तियां ना होकर एक ही शक्ति होती है और यही एक शक्ति व्यक्ति के समस्त मानसिक कार्यो को प्रभावित करती है यह शक्ति ही बुद्धि है। बुद्धि विभिन्न खण्ड ना होकर एक अविभाज्य इकाई है एक पूर्ण खण्ड।

इस प्रकार इस सिद्धान्त से स्पष्ट हैकि अगर कोई व्यक्ति एक क्षेत्र में निपुर्ण है तो वह अन्य क्षेत्रों मे भी निपुर्ण होगा। बुद्धि का व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार पर एक छत्रीय राज है अर्थात बुद्धि ही वह सर्वशक्ति है जो मानव के सम्पूर्ण व्यवहार को नियंत्रित करती है। इस कारण इस सिद्धांत को बुद्धि का राजकीय सिद्धान्त (Monarchic theory of intelligency) भी कहा जाता है।

**(2) बुद्धि का द्विकारकीय सिद्धान्त (Two factor theory)** - स्पीयरमैन ने 1904 में बुद्धि के एककारकीय सिद्धान्त के विरोध में, बुद्धि द्विकारकीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार बुद्धि का निर्माण दों कारकों से मिलकर हुआ है - (i) सामान्य कारक (General factor या 'G' कारक) ((ii) विशिष्ट कारक (Specific factor or 'f' कारक)

जिसे स्पीयरमैन ने सांकेतिक रूप से क्रमशः' कारक' तथा 'S कारक' के रूप में व्यक्त किया।

स्पीयरमैन के अनुसार G कारक अर्थात सामान्य कार्य करने की योग्यता व्यक्ति को जन्म से प्राप्त होती है इसकी मात्रा भिन्न-2 व्यक्तियों में भिन्न-2 होती हैं जिस व्यक्ति में यह योग्यता जितनी अधिक होगी वह उतने ही अधिक मानसिक कार्यों मे प्रवीण होगा। इस सामान्य कार्य करने की योग्यता को अनुभूति, प्रशिक्षण शिक्षण द्वारा बढाया नही जा सकता है।

प्रत्येक मानसिक कार्य एक दुसरे से कुछ ना कुछ भिन्नता रखते है स्पीयरमैन ने इस भिन्न कारक को विशिष्ट कारक (S कारक) कहा। वह विभिन्न विशिष्ट योग्यताओं का समूह है (S1S2S3.....Sn) यह विशिष्ट योग्यताएं अर्जित होती है तथा विभिन्न विशिष्ट कार्यो को करने के लिए उतरदायी होती है विशिष्ट कारक की मात्रा भिन्न-2 कार्यो के लिए अलग होती है व भिन्न-2 कार्यो के लिए एक विशेष प्रकार की विशिष्ट कारक की आवश्यकता होती है। विशिष्ट कारक को अनुभूति, प्रशिक्षण, शिक्षण द्वारा बढाया जा सकता हे।

ये सामान्य कारक व विशिष्ट कारक स्वतंत्र नहीं होते है। सभी प्रकार की विशिष्ट योग्यता कारकों में सामान्य योग्यता कारकों की कम या अधिक मात्रा अवश्य विद्यमान होती है।

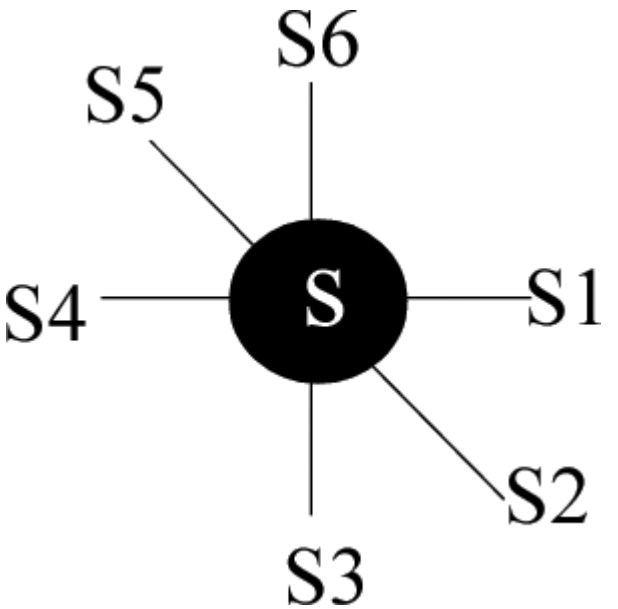

इस प्रकार संक्षेप कहा जा सकता है कि बुद्धि में G कारक तथा S कारक दोनो विद्यमान होते है ये दोनो कारक मिलकर किसी मानसिक कार्य करने की योग्यता प्रदान करते है परन्तु इनमे G कारक अधिक महत्वपूर्ण है इसलिए इस सिद्धान्त को G कारक सिद्धान्त भी कहते हैं।

**(3) बुद्धि का समूह कारक सिद्धान्त -** यह सिद्धान्त एल. एल. थस्टन ने 1937 में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार बुद्धि न तो मुख्य रूप से सामान्य कारक (G कारक) द्वारा निर्धारित होती है। और न ही विशिष्ट योग्यता कारको (S कारक) के द्वारा। उनके अनुसार मानसिक प्रक्रियाओं का एक सामान्य प्राथमिक कारक होता है जो सभी मानसिक प्रक्रियाओं को एक सूत्र मे बांधे रखता है तथा एक प्रकार की मानसिक क्रियाओं को अन्य मानसिक प्रक्रियाओं से अलग रखता हैं। ऐसी सभी मानसिक क्रियाएं जिनका एक सामान्य प्राथमिक कारक होता है आपस में सहसंबधित होती है तथा मिलकर एक समूह का निर्माण करती है इस समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले कारक को प्राथमिक कारक कहते है। उन्होने अपने समूह कारक सिद्धान्त में 7 प्राथमिक कारकों का वर्णन किया व साथ ही इन सात प्राथमिक कारकों को मापने के लिए एक परीक्षण माला तैयार की जिसे ßप्राथमिक मानसिक परीक्षण् कहा जाता है

ये 7 प्राथमिक मानसिक कारक निम्नलिखित है -

(1) शाब्दिक योग्यता (verbel ability) - शब्दों, वाक्यो का अर्थ समझने की योग्यता

(2) आंकिक योग्यता (Numerical ability) - तीव्रता व परिशु(ता के साथ आंकिक गणना करने की योग्यता

(3) शब्द प्रवाह योग्यता (word flow ability) - शब्दो का तीव्रता से उपयोग करने की क्षमता

(4) स्थानिक योग्यता (spatial ability) - स्थान में वस्तुओं का परिचालन करने की योग्यता

(5) तर्क क्षमता (reasoning ability) - छिपे हुए अर्थो को समझने की योग्यता

(6) स्मृति क्षमता (memory ability) - दी गई सामग्री को शीघ्र ही याद करने की योग्यता

(7) प्रत्यक्षीकरण योग्यता (perceptual ability) - किसी वस्तु का तेजी से छोटे से छोटे गुणों के साथ प्रत्यक्षीयकरण करने की क्षमता।

थस्टन के अनुसार ये सभी योग्यताएं एक-दुसरे से स्वतंत्र होती है। इस प्रकार उन्होने 'G कारक' के महत्व को अस्वीकार कर दिया पर ये पूर्णत: स्वतंत्र नहीं होती है बल्कि ये बहुत हद तक सहंसबधित होती है आलोचनाओं के बावजूद र्थस्टन का सिद्धान्त काफी लोकप्रिय हुआ।

**(4) बुद्धि का बहुकारकीय सिद्धान्त (multi-factor theory of intelligence) -** इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रमुख अमेरिका मनोवैज्ञानिक प्रो. ई. एल. थॉर्नडाइक (E. L. Thorndike) ने किया।

उनके अनुसार बुद्धि में सामान्य योग्यता जैसा कोइ तत्व नही होता है बुद्धि कई विशेष मानसिक क्षमताओं को एक योग है। बुद्धि का निर्माण अनेक छोटे-2 कारकों के मिलने से हुआ है प्रत्येक

कारक एक विशिष्ट मानसिक क्षमता का धोतक हेव एक दुसरें से स्वतंत्र है ये सभी कारक मिलाकर बुद्धि का निर्माण करते हैं जैसे ईटें मिलकर भवन का निर्माण करती है।

उनके अनुसार भिन्न-2 मानसिक प्रक्रियाओं बीच सहसंबध 'G' कारक की वजह से नहीं वरन मानसिक प्रक्रियायों उपस्थित कई उभयनिष्ठ तत्वों के कारण होता है। अगर हम सैद्धान्तिक रूप से देखे तो स्पीयरमैन व थॉर्नडाइक का सिद्धान्त समान है, अब ये मान्य नहीं है।

**(5) कैटेल का सिद्धान्त** - प्रमुख अमेरीकी मनोवैज्ञानिक आर. बी. (R. B. Cattel) ने 1963 में बुद्धि के एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं। कैटेल ने बुद्धि को भागों में बांटा -

(1) तरल बुद्धि (fluid intelligence)

(2) ठोस बुद्धि (crystallized intelligence)

तरल बुद्धि से तात्पर्य प्रत्यक्षीकरण की योग्यता से है जिससे व्यक्ति दो वस्तुओं के बीच संबधो का प्रत्यक्षीकरण व पुर्नगठन करता है। तरल बुद्धि का निर्धारण आनुवांशिक कारकों से होता हैं। तरल बुद्धि नई परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलन करने में सहायता प्रदान करती है।

ठोस बुद्धि - से तात्पर्य अर्जित तथ्यात्मक ज्ञान से होता है जो व्यक्ति तरल बुद्धि का उपयोग कर अपनी जिंदगी के अनुभवों अनुभवों से अर्जित करता है इसका निर्धारण पर्यावरणीय एवं सामाजिक कारको के द्वारा होता है। ठोस बुद्धि का विकास निरन्तर चलता रहता है व व्यक्ति इसमें अपने अनुभव, प्रशिक्षण, अधिगम के परिणामस्वरूप परिमार्जन करता रहता है।

यह ठोस बुद्धि आनुवंशिकता की क्रिया के फलस्वरूप अगली पीढी मे हस्तांतरित हो जाती है जिससे पीढी दर पीढी बौद्धिक क्षमता का विकास होता रहता हैं।

परन्तु अधिकतर मनोवैज्ञानिक बुद्धि के इस वर्गीकरण व तरल बुद्धि को नहीं मानते है।

गिलफोर्ड का त्रिविमीय सिद्धान्त - इस सिद्धान्त का प्रतिपादन गिलफोर्ड ने 1967 में किया इसे त्रिविमीय सिद्धान्त या बुद्धि संरचना का सिद्धान्त भी कहते है। यह बहुकारक सिद्धान्त है उन्होने बुद्धि की व्याख्या तीन विमाओं के आधार पर की है -

(1) संक्रिया (Operation)

(2) पदार्थ या विषयवस्तु (Content)

(3) उत्पाद (product)

**(1) संक्रिया (operation) -** से तात्पर्य मानसिक प्रक्रिया के स्वरूप (nature) से है -

(i) मूल्यांकन (Evalution (E) )

(ii) अभिसारी चिन्तन (Convergent thinking or N)

(iii) अपसारी चिन्तन (Divergent thinking or D)

(iv) स्मृति धारण (memory relation)

(v) स्मृति अभिलेखन (memory recording)

(vi) संज्ञान (cognition)

**(2) पदार्थ या विषयवस्तु (conternt) -** से तात्पर्य उन एंकाशो या सूचनायों से है जिसके आधार पर मानसिक प्रक्रियाएं की जाती है ये पांच है -

(i) दृष्टि (visual)
(ii) श्रवण (auditing)
(iii) सांकेतिक (symbolic)
(iv) शाब्दिक (sementic)
(v) व्यावहारिक (behavioural)

**(3) उत्पाद (product) -** से तात्पर्य विशेष विषय वस्तु द्वारा की जा सकती है

(i) इकाई (unit)
(ii) वर्ग (class)
(iii) सम्बन्ध (relation)
(iv) पद्धति (system)
(v) रूपान्तरण (transformation)
(vi) आशय (implication)

इस प्रकार गिलफोर्ड ने तीन विमाओं के आधार पर बुद्धि की व्याख्या की है संक्रिया विमा के 6 कारक, विषय वस्तु विमा के 5 कारक, उत्पाद विमा के 6 कारक है। इस प्रकार 6x5x6 = 180 कारकों के आधार पर बुद्धि की व्याख्या की है अनेक मनोवैज्ञानिकों ने गिलफोर्ड के इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है उनका सिद्धान्त बुद्धि का वर्गीकरण लगता है सिद्धान्त कम।

पदानुक्रमिक सिद्धान्त (Hierarchiol theory) - बर्ट 1949 तथा वर्नन 1960 ने स्पीयरमैन के G-कारक सिद्धान्त, थस्टन के समूह कारक सिद्धान्त तथा बहुकारक सिद्धान्त को मिला कर पदानुक्रमित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसमें बुद्धि के भिन्न कारकों को एक पदानुक्रम में रखा गया है। पहले पदानुक्रम में सबसे ऊपर स्पीयरमैन के 'G कारक' को रखा गया है, दूसरे स्तर पर थस्टन के समूह कारकों जिनकों दो भागों में वर्गीकृत किया गया है एक शाब्दिक कारक तथा दूसरा व्यावाहारिक यान्त्रिक कारक फिर तीसरे स्तर पर समूह कारकों को गिलफोर्ड के बहुकारक के समान छोटे छोटे समूह कारकों को बांट कर रखा गया हैं शाब्दिक शैक्षणिक कारक को शाब्दिक कारक तथा संख्या कारक में बांटा गया है तथा व्यावाहारिक यांत्रिक कारक को यांत्रिक कारक स्थानीक कारक तथा मैन्युअल कारक में बांटा गया है फिर इन कारकों भी अनेक छोटे-2 उपकारकों में बांटा गया है। पदानुक्रम मे सबसे नीचे स्पीयरमैन के 'S कारक' रखा गया है।

इस प्रकार यह सिद्धान्त तरह या वंश वृक्ष जैसा लगता है।

बर्ट तथा बनर्न का पदानुक्रम सिद्धान्त

सामान्य योग्यता कारक

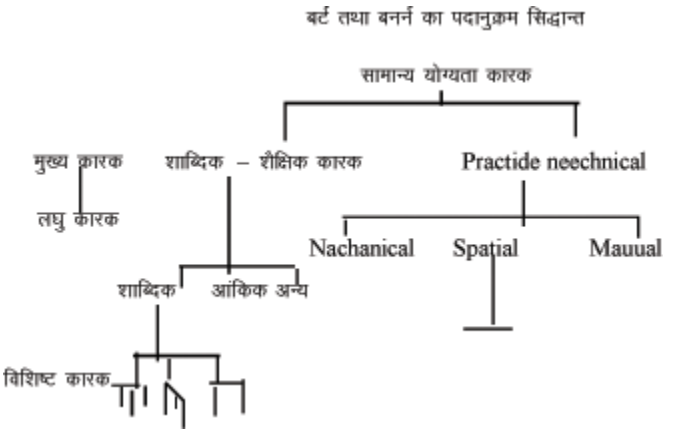


## 16.4 बुद्धि परीक्षण के प्रकार

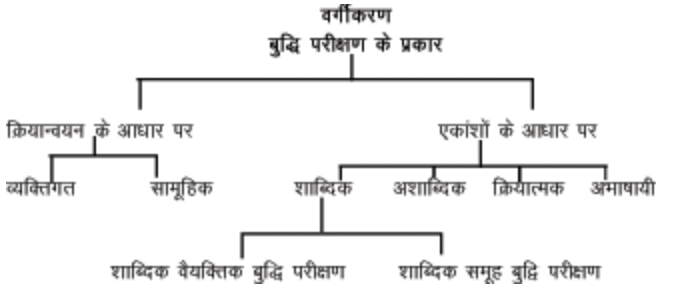


(1) **क्रियान्वयन के आधार पर** :बुद्धि परिक्षण दो प्रकार के होते है -

1. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण
2. समूह बुद्धि परीक्षण

**1. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण** :- ऐसे परीक्षण जिनका क्रियान्वयन एक समय में एक ही व्यक्ति पर किया जा सकता हे व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण कहलाते है इन्हें करने में समय अधिक लगता है क्योंकि एक-एक व्यक्ति पर अलग-2 करना पड़ता है प्रथम वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण की निर्माण 1905 में बिने तथा साइमन ने किया जिसे बिने-साइमन परीक्षण कहते है कोह ब्लॉक डिजाइन परीक्षण, धन रचना, पास अलाग परीक्षण वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण के उदाहरण है।

**2. सामूहिक बुद्धि परीक्षण** :- ऐसे परीक्षण जिनका क्रियान्वयन एक दो बार में एक से अधिक व्यक्तियों या समूहो में किया जा सकता है सामूहिक बुद्धि पक्षिण कहलाते है इन्हें करने में समय व धन की बचत होती है क्योंकि इन्हें एक साथ बहुत पहले सामूहिक बुद्धि परीक्षण विश्वयुद्ध ने दौरान अमेरिका में बनाए गए जो आर्मी अल्फा परीक्षण व आर्मी बांटा परीक्षण के नाम से जाने जाते है।

(2) **एंकाषो के आधार पर बुद्धि** परिक्षणों को एंकाषो (items) के आधार पर निम्न चार भागों में बांटा गया है।

1. शब्दिक बुद्धि परीक्षण

2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
3. क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण
4. अभाषाई बुद्धि परीक्षण

**1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण** :- उन परीक्षणों को कहते है जिसमें लिखित शब्दों अर्थात भाषा का उपयोग निर्देश देने तथा परीक्षण के एकांषो या प्रश्नों में किया जाता है। इस तरह के बुद्धि परीक्षण के क्रियान्वयन के लिए व्यक्ति का पढ़ा-लिखा होना आवश्यक है शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों को दो भागों में बांटा गया है -

(i) शाब्दिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण
(ii) शाब्दिक सामूहिक बुद्धि परीक्षण

(i) **शाब्दिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण** :- इस परीक्षण में लिखित शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग एंकाषो व निर्देषो में होता है साथ ही इन परीक्षणों का स्वरूप ऐसा होता है कि इन्हें एक समय पर सिर्फ एक ही व्यक्ति पर क्रियान्वियत किया जा सकता है बिने साइमन द्वारा 1905 में बनाया गया परीक्षण शाब्दिक वैयक्तिक बद्धि परीक्षण ही था। इस प्रकार के परीक्षण में क्रियान्वयन के लिये व्यक्ति का पढ़ा-लिखा होना आवश्यक है साथ ही इनको करने में समय अधिक लगता है कयोंकि एक बार में एक ही व्यक्ति पर क्रियान्वियत किये जा सकते है इसलिए अगर बहुत सारे लोगों ही बुद्धि का मापन करना हो तो इनका उपयोग कठिन हो जाता है।

(ii) **शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण** :- ऐसे परीक्षण को कहते है जिसमें शब्द, वाक्य, भाषा आदि का प्रयोग एंकाषो तथा निर्देशों में होता है तथा इन्हें एक समय पर एक से अधिक शक्तियों या समूह पर क्रियान्वियत किया जा सकता है। इन्हे करने में समय की बचत होती है।

शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों को पेपर-पेसिंल परीक्षण भी कहते हैं क्योकि इनमें एंकाषों का उतर देने में पेंसिल तथा पेपर का उपयोग होता है।

**2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण** :- ऐसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें भाषा का प्रयोग निर्देश देने में अवश्य होता है परन्तु एंकाषो में भाषा का उपयोग नहीं होता है। इसमें वस्तुओं का मानसिक परिचालन होता है वास्तविक नहीं। इसमें एंकाषो में भाषा का इस्तेमाल ना होने के कारण बच्चो, कम पढ़े लिखे व्यक्तियों पर भी इनका उपयोग किया जा सकता है रैवन प्रोगे्रसिव मेट्रिसीज।

**3. क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण :-**इसमें व्यक्ति के सामने कुछ वस्तुएं वास्तविक रूप में उपस्थित की जाती है जिनका परिचालन या जोड़ तोड़ कर परीक्षार्थी को सही करना होता है। इन परीक्षणों में निर्देश देने में भाषा का इस्तेमाल हो भी सकता है नहीं भी। निर्देशन चित्राभिनय हाव-भाव द्वारा भी दिये जा सकते है इन परीक्षणों की सबसे विशेष बात ये है कि इसमें एंकाषो में भाषा का प्रयोग बिल्कुल भी नहीं होता है।

सबसे पहले क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण का निर्माण 1866 में सेगुइन ने किया, जिसे सेगुइन  फोम बोर्ड परीक्षण कहते है। इसका प्रयोग मानसिक रूप से विमंदित बच्चों की बुद्धि मापन के लिए किया जाता है।

ये परीक्षण अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण से अलग होते है अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में व्यक्ति वस्तुओं का मानसिक परिचालन करता है क्योंकि वस्तुएं व्यक्ति के सामने वास्तविक रूप में नहीं चित्रों के माध्यम से उसके सामने प्रस्तुत की जाती है जबकि क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण में वस्तुओं को वास्तविक रूप से परीक्षार्थी के सामने प्रस्तुत किया जाता है जिनका को वास्तविक रूप से परिचालन या तोड़-फोड़ करता है।

कोह ब्लॉक डिजाइन परीक्षण, पास अलाग परिक्षण, धनरचना परीक्षण इसके उदाहरण है।  इस तरह के परीक्षणों में एक समय में केवल एक ही व्यक्ति की बुद्धि का मापन किया जा सकता है।

**4.** **अभाषाई बुद्धि परीक्षण :-** जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है ये परीक्षण भाषा के बंधन से पूर्णत होते है इसमें भाषा का  प्रयोग न एंकाषो में होता है ना ही निर्देशों में। निर्देश चित्रामिनय, हाव-भाव द्वारा दिये जाते है इन परीक्षणों को संस्कृति मुक्त परीक्षण भी कहते है क्योंकि भाषा का प्रयोग ना होने के कारण में संस्कृति के प्रभाव के बंधनो से पूर्णत मुक्त होने है गुडएन हॉफ ड्रा. ए. मैन परीक्षण, केटेल संस्कृति मुक्त बुद्धि परीक्षण इसके प्रमुख उदाहरण है।

**6** **बुद्धि लब्धि** (IQ):-

बुद्धि लब्धि के सप्रत्यय का जन्म 1916 में बिन साइमन परीक्षण में संषोधन के परिणामस्वरूप हुआ। इस संषोधन का श्रेय टरमेन को जाता है इससे पहले बुद्धि का मापन मानसिक आयु के रूप में किया जाता था पर अब मानसिक आयु की जगह पर बुद्धि लब्धि (IQ) का उपयोग होने लगा।

बुद्धि लब्धि (IQ) , मानसिक आयु (Ment al age) तथा तैथक आयु का ऐसा अनुपात जिसे 100 से गुणा कर प्राप्त किया जाता है इस अनुपात को ही बुद्धिलब्धि (IQ) कहते है।

$$\text{cf) yfC/k} = \frac{\text{ekufI d vk;}}{\text{rFkd vk;}} \times 100$$

बुद्धि लब्धि को समझने के लिए हमें पहले तैथिक आयु व मानसिक आयु के सप्रत्ययों को समझना होगा -

**मानसिक आयु :-** का प्रयोग मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि मापन के लिए किया है मानसिक आयु का सप्रत्यय बिने तथ साईमन द्वारा दिया गया हे टुकमेन (1975द्ध ने मानिसक आयु का परिभाषित करते हुए कहा है कि मानसिक आयु एक ऐसा प्राप्तांक है जिसका निर्धारण अपने ही उम्र या अपने से कम या अधिक उम्र के बच्चों के औसत निष्पादन के साथ कि तुलना करके किया जाता है। उदाहरणार्थ - एक बालक जिसकी तैथिक आयु या वास्तविक आयु 10 वर्ष है यदि वह 10 वर्ष के लिए बने बुद्धि परीक्षण पर इस उम्र के लिए निर्धारित समस्या के समाधान में सफल हो जाता है तो उसकी मानसिक आयु  भी 10 वर्ष होगी परन्तु यदि 10 वर्ष का बालक

12 वर्ष के बालको के लिए बने परीक्षण पर सफल होता है तो उसकी मानसिक आयु 12 वर्ष होगी जबकि तैथिक आयु 10 वर्ष है। इसी प्रकार यह भी संभव है कि एक 10 वर्ष का बालक 8 वर्ष की आयु के लिए बने परिक्षणों पर ही सफल हो तब तैथिक आयु 10 वर्ष होते हुए की बालक की मानसिक आयु 8 वर्ष होगी।

स्पष्ट है मानसिक आयु तैथिक आयु से कम या अधिक हो सकती है जब व्यक्ति को मानसिक आयु व तैथिक आयु समान होती है तो उसे सामान्य बुद्धि का समझा जाता है मानसिक आयु तैथिक से अधिक होने पर तीव्र बुद्धि व कम होने पर मंद बुद्धि समझा जाता है।

**तैथिक आयु :-** व्यक्ति की वास्तविक आयु होती है अर्थात जन्म से लेकर जिस समय गणना की जा सकती है तब तक के समय से होता है। जैसे यदि आज किसी व्यक्ति को तैथिक आयु 12 वर्ष 2 महिने है तो यह उसकी तैथिक आयु कहलाती है।

उदारहणर्थ यदि एक 15 साल के बालक की मानसिक आयु 14 वर्ष है तो उसकी बुद्धि लब्धि 93 होगी

$$\text{cf) yfC/k} = \frac{\text{ekufld vk;}}{\text{rfFkd vk;}} \times 100$$

$$IQ = \frac{14}{15} \times 100 = 93$$

## 16.6 बुद्धि का वर्गीकरण

टरमेंन ने स्टन द्वारा किये गये बुद्धिलब्धि के सूत्र का उपयोग करते हुए अपने बुद्धि परीक्षण के द्वारा विभिन्न आयु के लोगों का बुद्धि परिक्षण किया तथा उन्होंने पाया कि बुद्धि लब्धि में अत्यधिक विभिन्नता देखने को मिलती है तो उन्होंने बुद्धि लब्धि के अनुसार व्यक्तियों को विभिन्न बुद्धि समूहो में विभाजित किया। टरमैन द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण निम्न प्रकार है -

| बुद्धिलब्धि के मान | श्रेणी |
|---|---|
| 140 + | प्रतिभाशाली (Genius) |
| 120 - 140 | प्रखर बुद्धि (Very Superior) |
| 110 - 120 | औसत से अधिक बुद्धि (Superior) |
| 90 - 110 | औसत या सामान्य (Normal) |
| 75 - 90 | सीमान्त बुद्धि या अल्प बुद्धि (Border Line or Dull) |
| 50 - 75 | मूर्ख (Morons) |
| 25 - 50 | मूढ़ (Imbecile) |
| 25 से कम | महामूर्ख या जड़ बुद्धि (Idiot) |

## 16.7 बुद्धि के प्रकार

ई.एल. थार्नडाइक ने बुद्धि के तीन प्रकार बतलाएं है -

1. मूर्त बुद्धि (Concrete Intelligence)
2. अमूर्त बुद्धि (Absstract Intelligence)
3. सामजिक बुद्धि (Concrete Intelligence)

1. **मूर्त बुद्धि :-** मुर्त बुद्धि से तात्पर्य उस मानसिक क्षमता से है जिसके सहारे ठोस वस्तुओं के महत्व को समझ भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उनका परीचालन करना सीखता है ऐसी बुद्धि वाले व्यक्ति अच्छे व्यापारी बन सकते है।
2. **अमूर्त बुद्धि** :- ऐसी मानसिक क्षमता जिसके सहारे व्यक्ति शाब्दिक तथा गणितीय संकेतो एवं चिन्हों के संबधो को आसानी से समा उनकी उचित व्याख्या तथा उपयोग करता है। ऐसी बुद्धि जिन लोगों में अधिक होती है वे कलाकार, गणितज्ञ व अच्छे अभियंता बन सकते है।
3. **सामाजिक बुद्धि** :- ऐसी मानसिक क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को ठीक ढ़ंग से समझ उनके अनुरूप व्यवहार करता है ऐसे लोग अत्यधिक व्यवहार कुशल होते है इनके सामाजिक संबंधबहुत अच्छे है ये समाज ने काफी प्रतिष्ठा प्राप्त करते है। इस बुद्धि की प्रधानता युक्त व्यक्ति अच्छे नेता, सामाजिक कार्यकर्ता बन सकते है।

## 16.8 सांवेगिक बुद्धि

सेलोभी व मेयर ने सर्वप्रथम EQ का सप्रत्यय दिया परन्तु इसे प्रसिद्धी गोलमेन के प्रयासो से 2005 मे मिली। गोलमेन के अनुसार सामान्य बुद्धिलब्धि जिसे बुद्धिलब्धि कहते है के अलावा भी अन्य प्रकार की बुद्धि जो हमारी सफलता में सामान्य बुद्धिलब्धि से अधिक महत्वपूर्ण होते है उन्होने इस दुसरी तरह की बुद्धि को संवेगात्मक बुद्धि Emotional Intelligence or EQ कहा। उनके अनुसार इस संवेगात्मक बुद्धि के मुख्य रूप से पाँच भाग है।

1. स्वयं के संवेगों को जानना *(Knowing our own emotions)*
2. स्वयं के संवेगों को प्रबधंन *(Managing our emotions)*
3. स्वयं को अभिप्रेरित करना *(Motivating ourselves)*
4. दुसरे के संवेगों को जानना *(Recogniging the emotions of others )*
5. सम्बन्धों को बनाए रखना *(Handling relalionships)*

1. **स्वयं के संवेगों को जानना *(Knowing our own emotions)***:- कुछ लोग स्वयं के संवेगों की समझ अन्य लोगो की तुलना में ज्यादा रखते है इससे ऐसे व्यक्ति अपने भावों, इच्छाओं, आवश्यकताओं के अनुरूप अच्छे से निर्णय लेने की क्षमता भी रखते है जिससे इनका जीवन इनके अनुरूप व अच्छा होता है क्योंकि हमारा जीवन सर्वाधिक हमारे चुनावो, निर्णयों से ही प्रभावित होता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति स्वयं के भावों संवेगो, इच्छाओं, आवश्यकताओं

को भली प्रकार नहीं समझ पाते है उनकी निर्णय लेने की क्षमता भी प्रभावित होती है साथ ही ऐसे व्यक्ति क्योंकि स्वयं को अच्छे से समझ नहीं पाते है तो खुद के भावों को भली प्रकार प्रकट भी नहीं कर पाते है, जिनसे दूसरे भी उनको भली प्रकार नहीं समझ पाते हैं इससे ऐसे व्यक्तियों के सामाजिक संबंध प्रभावित होते है इस प्रकार सांवेगिक बुद्धि का यह प्रथम भाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

2. **स्वयं के संवेगों को प्रबधंन *(Managing our emotions)*:-** अपने संवेगो, मनोभावों पर नियंत्रण हमारे अपने मानसिक स्वास्थ्य तथा दूसरों के साथ प्रभावशाली ढंग से अंतक्रिया करने के लिए हमें अपने संवेगों की प्रकृति, तीव्रता व अभिव्यक्ति पर नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक है उदाहरणार्थ अगर हमें अपने बॉस पर किसी बात पर गुस्सा आए उसकी कोई बात बुरी लगे तो अगर हम वहीं खुद को नियंत्रित किये बीना बॉस पर अपना गुस्सा निकाल दें तो वह हमारी नौकरी, कार्यालय के माहौल, हमारी प्रगति व सम्मान पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है इसके विपरीत अगर हम उस समय अपने गुस्से के मनोभावों को नियंत्रित कर सही समय पर सही तरीके से अपनी बात बॉस के समक्ष रख अपनी सांवेगिक परिपक्वता का परिचय भी दे सकते है। ये हमारे स्वयं के सम्मान व प्रगति दोनों के लिए ज्यादा प्रभावशाली कदम है।

3. **स्वयं को अभिप्रेरित करना *(Motiroting ourselves)*:-** हमारी सफलताके लिए हमारा स्वयं को लम्बी अवधी तक बीमा थके, कठिन परीक्षण के लिए प्रेरित करना, अंतिम परीणाम के लिए, उत्साही व आशावादी रहना, दुरगामी लक्ष्यों व फायदो को ध्यान में रखते हुए अभीके छोटे-छोटे लालचव लाभ को त्यागना भी अत्यन्त आवश्यक है। एवं सांवेगिक बुद्धिमता मुक्त व्यक्ति हमेशाउत्साहित रहता है व मेहनत कर सफलता अर्जित करता है।

4. **दुसरे के संवेगों को जानना *(Recoqniging the emotions of others )*:-** गोलमेन के अनुसार सांवेगिक बुद्धि का महत्वपूर्ण भाग दूसरों के मनोभावों को भली प्रकार से समझना भी है, क्योंकि अगर हम दूसरो के मनोभावों को भली प्रकार जान ले तो उनसे अपना काम आसानी से करवा सकते है हम पहले सही जान लेते है कि अभी अमुक व्यक्ति से बात करनी है कि नहीं करनी है तो अगर करनी है तो कब व कैसे ताकी हमें उससे हमारे इच्छित परिणाम की प्राप्ति हो सके। दूसरे लोगों के संवेगों को जानने के साथ ही अगर कोई व्यक्ति दुसरे लोगों में तीव्र भाव उत्पन्न करने की क्षमता रखते है वे भी जीवन में अत्यधिक सफल हो सकते है विशेषकर व्यापार व राजनीति के क्षेत्र में।

5. **सम्बन्धों को बनाए रखना *(Handling relalionships)*:-** कुछ लोगों में दूसरे लोगों के साथ रहने की तीव्र इच्छा होती है ऐसे लोग सदा समुह में रहते है, इनके आस-पास के लोग इन्हे अत्यधिक पंसन्द करते है इसलिये इन लोगों के बहुत सारे मित्र होते है व ये अपने व्यवसाय या नौकरी में उच्च कोटी की सफलता प्राप्त करते है इसके विपरीत कुछ लोगों के पारिवारिक, व्यक्तिगत व व्यवसायिक रिश्ते कभी अच्छे नहीं होते है। गोलमेन के अनुसार - ये अन्तर संवेगात्मक बुद्धि में अंतर के कारण देखने का मिलता है।

उच्च संवेगात्मक बुद्धि से युक्त लोगों के रिश्ते अत्यन्त अच्छे होते है क्योंकि उनमें ये क्षमता होती है कि वे बहुत सारे लोगों को अपने साथ लेकर चल सके, जटिल समस्याओं का हल निकाल सके, लोगों को इस प्रकार जवाब दे सके कि उन्हे बुरा ना लगे आदि।

इस प्रकार ये क्षमताएं उन्हे एक अच्छा सामाजिक व्यक्ति बनाती है जो परीक्षा में अच्छे अंक लाने से भिन्न है। इस प्रकार संवेगात्मक क्षमता हमारी जिन्दगी में हमारी सफलता में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

## 16.9 संवेगात्मक बुद्धि की आवश्यकता

**संवेगात्मक बुद्धि की आवश्यकता निम्न कारणों से है -**

1. हमारी सफलता में IQ केवल 10 से20 प्रतिशत योगदान देती है शेष 80 से 90 प्रतिशत योगदान हमारी EQ (संवेगात्मक बुद्धिलब्धिद्ध का होता है।
2. सावंगिक बुद्धि कार्यस्थल पर सफल होने के लिये अत्यन्त आवश्यक है क्योकि अधिक IQ की वजह से हमें कार्य मिल सकता है पर उस कार्य में उन्नति हम सांवेगिक बुद्धि के द्वारा ही कर सकते है।
3. तनाव, अवसाद की समस्या आधुनिक समाज में बड़ती जा रही है EQ हमें इससे बचा सकता है।
4. सांवेगिक समस्याएँ जैसे- गुस्सा, चिन्ता, नषा, अकामक्रता आज बड़ते जा रही है सही सांवेगिक बुद्धि की क्षमता द्वारा इन संवेगों को नियंत्रित किया जा सकता है।
5. हम EQ के द्वारा हममें तनाव पैदा करने वाले कारणों को समझ इन्हे दुर कर सकते है।
6. EQ के द्वारा हम अपने रिश्तों को बेहतर बना सकते है।
7. EQ के द्वारा हम स्वयं को बेहतर तरीके से समझ अपने निर्णयों, अभिव्यक्ति को बेहतर बना सकते है।

**पहचान संकेत (Indicators of Identification)**

**अधिक संवेगात्मक बुद्धियुक्त व्यक्तियों के लक्षण**

- ☐ अपनी भावनाओं व संवेगो को स्पष्ट व सीधे अभिव्यक्त करते है।
- ☐ अपनी सोच व भावनाओं को मिलाते नहीं हैं।
- ☐ अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति से डरते नहीं है।
- ☐ नकारात्मक संवेगों से चालित नहीं होते है।
- ☐ अभाशिय संवाद समझ जाते है।
- ☐ अपनी भावनाओं को तर्क, व वास्तविकता द्वारा संतुलित कर लेते है।
- ☐ अपनी इच्छा से कार्य करते है ना कि मजबूरी या कर्तव्य के कारण आशावादी होते है।
- ☐ दुसरे लोगों की भावनाओं के प्रति संवेदनशील होते है।

- भावनाओं के बारे में बात करते समय सहज महसुस करते है।
- एक साथ बहुत सारी भावनाओ, संवेगो को समझ पाते है।
- स्वतंत्राप्रियता व नैतिक मूल्यों से युक्त होते है।

**कम संवेगात्मक बुद्धियुक्त व्यक्तियों के लक्षण**

- अपने संवेगो की स्वयं जिम्मेदारी नहीं लेते, दूसरो पर दोषरोपण करते है।
- दुसरो को बीच में टोकते है, उनकी गलतियां निकालते है।
- छोटी-2 बातों पर भी बहुत तीव्रता से प्रतिक्रिया करते है।
- इन्हें अपनी गलतियों को स्वीकारने में कठिनाई होते है।
- दुसरो की भावनाओं के बारे में असंवेदनशील होते है।
- सुनने की क्षमता कम होती है।
- दूसरो से बहुत षिकायते होती है।

**EQ को उन्नत करने के सुझाव**

1. अपनी भावनाओं के प्रति जागरूक हो।
2. अपनी सोच व भावनाओं में अन्तर समझ।
3. अपनी भावनाओं की सही पहचान कर उन्हें सही नाम देकर।
4. अपनी सोच, भावनाओं व कार्यो के मध्य सम्बन्ध को समझ।
5. अपने संवेगों को सामाजिक रूप से अनुमोदित व्यवहार द्वारा प्रदर्शित करना सीख कर।
6. सकारात्मक स्वार्तालाप द्वारा वार्तालाप।
7. अपने गुस्से, दु:ख को नियंत्रित करने की प्रविधियां सीख।
8. अपने संवेगो की जिम्मेदारियों स्वंय लेकर।
9. दूसरे व्यक्ति की भावनाओं, उसके संवेगो को समझ कर।
10. व्यक्तिगत भिन्नता का सम्मान करना सीखकर।
11. दूसरे लोगों सुनकर, समझकर, उनके संदर्भ प्रतिक्रिया करना समझकर।
12. दूसरों का सम्मान करना सीख, साथ ही इस बात की परवाह कर कि हमारा व्यवहार कार्य उनकों किस प्रकार प्रभावित करता है।
13. जब नकारात्मक महसूस करें उसका सकारात्मक पहलू देखे।

**विद्यालय में सांवेगिक बुद्धि का विकास करने के प्रयास**

* सृजनात्मक को बढावा देकर
* सामाजिक व सांवेगिक अधिगम को बढावा देकर
  - * **आत्म-विश्वास**
  - * उत्सुकता
  - * स्वं-अनुशासन

* सह-सम्बन्धता * सहयोग
* वार्तालाप * स्वजिम्मेदारियों को बल देकर
* भिन्नता का सम्मान कर

## 16.10 बहुबुद्धि

हावर्ड गार्डनर, प्रोफेसर हावर्ड विश्वविद्यालय ने बहु 1993 में **बहुबुद्धि** का सप्रत्य दिया। हम सामान्यत: जो बुद्धिमता परिक्षण उपयोग करते है वे भाशिक व गणितीय यही दो प्रकार की बुद्धिमता को मापते है। गार्डनर के अनुसार बुद्धि का स्वरूप एकाकी ना होकर बहुकारकीय होता है, उन्होने 8 प्रकार की बुद्धि बताई। हर व्यक्ति में कुछ मात्रा में ये आणें प्रकार की बुद्धि पायी जाती है पर कुछ अन्य की अपेक्षा अधिक होती है इस सिद्धान्त के अनुसार हर व्यक्ति बुद्धिमान है पर अलग-अलग प्रकार से ये बुद्धि है-

1. भाशिय बुद्धि *(Verbal/Linguistic)*
2. तार्किक गणितीय बुद्धि *(Mathematical/Logical)*
3. स्थानिक बुद्धि *(Visual/Spatial)*
4. संगीतीय बुद्धि *(Musical/Rhyihmatic)*
5. प्राकृतिक बुद्धि *(Naturalistic)*
6. शारीरिक गतिक बुद्धि *(Bodily/Kinesthetic)*
7. व्यक्तिगत अन्यबुद्धि *(Interpersonal)*
8. व्यक्तिगत आत्मनबुद्धि *(Intrapersonal)*

**1.** **भाशिय बुद्धि** :- से तात्पर्य वाक्यों या शब्दों की बोध क्षमता, "ाब्दावली, शब्दों के क्रमों के बीच के संबंधोको, शब्दों पहचानने की क्षमता से है। ऐसे बच्चे जो भाशिय बुद्धि में उच्च होते है उनका शब्दों का भाषा का अच्छा ज्ञान होता है वे सोचने में भी शब्दों का इस्तेमाल ज्यादा करते हे बजाय तस्वीरों के इन्हे कहानी सुनना, कविता लिखता अच्छा लगता है ये अच्छे कलाकार व अच्छे वक्ता बनते है। ये बच्चे शब्दों को सुनकर, देखकर, बोलकर अच्छा सीखते है। इस प्रकार की बुद्धि लगभग सभी मनुश्यो में पायी जाती है।

**2.** **अभाषायी बुद्धि** :- से तात्पर्य तर्क करने की क्षमता, गणितिय समस्याओं का समाधान, सादृश्यता, अंको के क्रम में व्याप्त संबंधोको पहचाने की क्षमता से है। उच्च अभाशीय बुद्धि से युक्त बालकों की गणितीय व तार्किक क्षमता अच्छी है इन बच्चो को ऐसी पजलस व खेल अच्छे लगते है जिसमें तर्कणा शक्ति की आवश्यकता होती है ये बच्चे लगातार अपने आस-पास के वातावरण के बारे में प्रश्न पुछते रहते है पजलस में प्रयोग करने में अच्छे होते है।

**3.** **स्थानिक बुद्धि** :- स्थानिक बुद्धि से तात्पर्य स्थानिक चित्रों को मानसिक रूप से परिवर्तित करने की क्षमता, स्थानिक कल्पना शक्ति करने की क्षमता से है, इस बुद्धि में उच्च बालक त्री-विमीय चित्रों के माध्यम से सोचते है ये अपने आस-पास के भौतिक वातावरण के प्रती बहुत संवेदनशील होते है इन्हे पता होता है कक्षा में कौनसी चीज कहां है। इनकी देखने, याद करने व

फिर से उस वस्तु को बनाने की क्षमता अच्छी होती है, इन्हे कुछ नया बनाना खोजना अच्छा लगता है इनकी कल्पनाषक्ति बहुत अच्छी होती है। इन्हे कलात्मक कार्य करना अच्छा लगता है इन्हे चित्र, व्यक्ति, रास्ते, नक्षे, आसानी से समझ आते है व याद रहते है।

4. **संगीतीय** बुद्धि :- इन बच्चो की लय, ताल, धुन, आवाज की विभिन्नता, तीव्रता की समझ बहुत अच्छी होती है इन्हीं एक बार में कविताएं गानों की धुन आसानी से याद हो जाते है। कार्य करते समय अक्सर अंगुलियां पैर या पेंसिल को थपथपा आवाजे नीकालते रहते है। संगीत बहुत पसंद होता है वातावरण से भी संगीत आसानी से सुन लेते है जैसे - पक्षीयों का गाना। ये अक्सर कोई वाद्य बनाते है या उसे बजाते है व गाने में बहुत रूचि होती है। इनमें शीघ्र ही संगीतिक सामथ्यर्स व निपुणता विकसित कर लेने की क्षमता होती है जैसे- लता मंगेषकर

5 **शरीर गतिक बुद्धि :-** ऐसी बुद्धि में उच्च बच्चों को शारीरिक क्रियाओं की अच्छी समझ होती है व जटिल शारीरिक मुद्राएं को भी आसानी से कर पाते है। अन्य लोगो की तुलना में शारीरिक क्रियाशीलता बहुत अधिक होती है अगर इस ऊर्जा का खपत का मौका ना मिले तो से बच्चे अत्यधिक क्रियाशील कहलाते है। ये अच्छे नृत्यकार एथलीट, कलाकार होते है। ये शारीरिक संवेदना के द्वारा ज्ञान प्राप्त करते है ये खेलों में बहुत अच्छे होते है हाथों से चीजें बनाना जैसे - लकड़ी का काम, क्ले से भी कार्य करने में अच्छे होते है साथ ही ये दूसरो की भावभगिमा की नकल करते है। इनका अपने शरीर की गति व मात्रा पर जबरजस्त नियत्रंण होता है।

6. **व्यक्तिगत - आत्मन् बुद्धि -** ऐसे बच्चे अपने भाव, सोच, स्वप्न, भावनाओं के बारे में विशेष रूप से संवेदनशील व सचेत होते है व इस जानकारी का उपयोग वे अपनी जिंदगी के लिये लक्ष्य निर्मित करने में इस्तेमाल करते है दृढ़ व्यक्तित्व के मालिक होते है खुद के साथ काम करना पंसद करते है भीड़ से थोड़ा दुर रहना पंसद करते हे। अपने लिए व दूसरों के लिये भी न्याय की भावना बहुत प्रबल होती है इनकी हर चीज पर अपनी दृढ़ व्यक्तिगत राय, सोच होती है। इनका अपना अलग कपड़े पहनने का तरीका होता है। इनमें अपने भावो, संवेगों को मोनीटर कर, उनमें विभेद कर, मानव व्यवहार के निर्देशन में उन सूचनाओं का उपयोग करने की जबरजस्त क्षमता होती है।

7. **व्यक्तिगत अन्य-बुद्धि :-** ये बच्चे दूसरो के बारे मे बहुत सचेत होते है ये लोगो के साथ समुह के साथ बहुत अच्छे होते है ये दूसरों के भावो, जरूरतो को शीघ्र की समझ जाते है। इसलिये इनके बहुत सारे दोस्त होते है। समूह में रहते है अक्सर कक्षा मॉनीटर या अपने समूह के नेता होते है। इनकी दूसरे व्यक्तियों की इच्छओं, प्रेरणाओं, आवश्यकताओं का समझ, उनकी मनोदशा की समझ, उसके अनुरूप व्यवहार करने, उनके व्यवहार के बारे में पूर्णकथन की क्षमता जबरदस्त होती है।

8. **प्राकृतिक बुद्धि :-** अपने प्राकृतिक वातावरण के प्रति बहुत सजग होते है इन्हे अपने आस-पास के प्राकृति संसार की विशेषताओं को जानना सीखना अच्छा लगता है पेड़-पौधों व जन्तुओ की अच्छी पहचान होती है इन्हे बाहर प्राकृतिक वातावरण में कार्य करना अच्छा

लगता है। प्रकृतिवाद, प्राणियों से जुड़े कार्यकर्ता इसी श्रेणी में आते है इनमे प्रकृति व प्राकृतिक जीवों के प्रती तीव्र संवेदना व प्रेम होता है।

गार्डनर के अनुसार प्रत्येक प्राणी में उपर्युक्त सभी प्रकार की बुद्धि होती है परन्तु कुछ कारणों जैसे आनुवांषिकता, वातावरण, प्रशिक्षण के कारण किसी व्यक्ति में कुछ बुद्धि अन्य की तुलना में अधिक विकसित हो जाती है ये सभी आठो प्रकार की बुद्धि आपस में अन्त: क्रिया करती है परन्तु फिर भी प्रत्येक बुद्धि एक अर्द्ध स्वायत तंत्र के रूप में कार्य करती है।

एक परामर्शदाता को इन आठों प्रकार की बुद्धि का ज्ञान, उसके मापन व विश्लेषण का ज्ञान आवश्यक है। क्योकि इनका ज्ञान होने पर परामर्शदाता, परामर्शग्राही को अच्छे से समझ उसे परामर्श प्रदान कर सकता है व अधिगम को बढ़ाने में, सही व्यावसाय व शैक्षिक विषय के चुनाव में सहायता प्रदान कर सकते है।

## 16.11 सारांश

बुद्धि एक समुच्चय या सार्वजनिक क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रियाएं करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है। यह बुद्धि की सम्पूर्ण जीवों में मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार है ये बुद्धि मूर्त, अमूर्त, सामाजिक अनेक प्रकार की होती है। बुद्धि के मापन के लिए अनेक बुद्धि परीक्षणों उपलब्ध है। जिनके आधार पर व्यक्ति की बुद्धिलब्धा को ज्ञान कर उसे वर्गीकृत किया जा सकता है। बुद्धि वातावरण, आनुवांषिकता दोनों की अंतक्रिया का परिणाम है। गोलमेन ने 2005 में शाब्दिक व अशाब्दिक बुद्धि से अलग प्रकार की बुद्धि के अस्तित्व को प्रमाणित किया, जो हमारी सफलता में बुद्धिलब्धि से अधिक योगदान करती है उन्होंने इसे ''संवेगात्मक बुद्धि'' कहा। संवेगात्मक बुद्धि के पांच तत्व है स्वयं के संवेगों को जानना, स्वयं के संवेगों को नियंत्रित करना, स्वयं को प्रेरित करना, दूसरों के संवेगों को समझना तथा संबंधोंको बनाए रखना। जिन भी व्यक्तियों में ये बुद्धि अधिक होती है उनकी खुद की समझ, दूसरों की समझ, रिश्ते, दूसरों से कार्य करवाने की क्षमता, निर्णयन क्षमता, भावात्मक नियंत्रण मजबूत होता है ऐसे लोग सबको साथ लेकर चलने की क्षमता से युक्त होते है व जीवन में अत्यधिक उन्नति प्राप्त करते है।

गार्डनर ने शाब्दिक, अशाब्दिक तथा संवेगात्मक बुद्धि के महत्व को स्वीकार करते हुए, आगे बढ़ते हुए नया सिद्धान्त दिया जिसमें इनके साथ उन्होंने और कई प्रकार की बुद्धि के अस्तित्व को स्वीकार किया। उन्होंने 8 प्रकार की बुद्धि के बारे में बताया। उनके अनुसार जो व्यक्ति खेलों में, कला में, संगीत व नृत्य में बेहतरीन प्रदर्शन करते है वे भी बुद्धिमान है। उनके अनुसार संसार का प्रत्येक प्राणी बुद्धिमान हे बस उनकी बुद्धिमता का क्षेत्र अलग अलग है। इनके द्वारा दी गयी 8 प्रकार की बुद्धि है स्थानीय बुद्धि, शारीरिक - गलित बुद्धि, व्यक्तिगत-आत्मबुद्धि व व्यक्तिगत अन्य बुद्धि है। अभी एक अन्य प्रकार की बुद्धि के अस्तित्व को भी स्वीकार किया गया है। जिसे आध्यात्मिक बुद्धि कहते है।

इस प्रकार बुद्धि के ये आधुनिक सिद्धान्त अत्यन्त विस्तृत है जो वैयक्तिता का सम्मान करते है व हर व्यक्ति की व्यक्तिगत क्षमता को पहचान उसके विकास का मार्ग प्रषस्त करते है।

## 16.12 बोध प्रश्न

1. बुद्धि से आप क्या समझते है? यह कितने प्रकार की होती है?
2 बुद्धि परीक्षण वर्गीकरण को एक आरेखीय चित्र के माध्यम से समझाइये।
3 बहुबुद्धि क्या है? कितने प्रकार की होती है। प्रत्येक प्रकार को विस्तार से समझाइए।
4 सांवेगगिक बुद्धि से आप क्या समझते है? समझाइऐ।
5 उच्च व निम्न सांवेगिक बुद्धि युक्त व्यक्तियों की पहचान के लक्षण स्पष्ट कीजिए।
6 सांवेगिक बुद्धि को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है।
7 अंतर स्पष्ट कीजिए -
    1 व्यक्तिगत व सामूहिक बुद्धि परीक्षण
    2 IQ व EQ
    3 मानसिक आयु व तैथिक आयु
    4 शाब्दिक व अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
8 समझाइये -
    1 बुद्धिलब्धि कैसे प्राप्त करते है सूत्र
    2 क्रियात्मक व अभाषाई बुद्धि परीक्षण
    3 EQ की आवश्यकता क्यों है।
    4 बहुबुद्धि की जानकारी का परामर्श में योगदान

## 16.13 संदर्भ ग्रंथ


1. Advanced Genreal psychology – Arun Kumar Singh
2. Essentials of psychology – Robert A. Baron
3. The emotionality Interlligence Work place – Cory cherniss and Daniel goleman
4. EQ+IQ = Best Leadership practices for coring and successful school – Maurice J. Elias, Arnold & Stegiger hussy
5 Multiple interlligence and positive life habits – Lynne Beachner and Anola pickett
7 Emotional interlligence – why it can matter more than IQ Daniel goleman.